भगवान श्री रजनीश

कस्तूरी कुंडल बसै

सकलन
स्वामी आनद बोधिधर्म

सम्पादन
स्वामी चैतन्य कीर्ति

आवरण-सज्जा
स्वामी आनद अर्हत

रजनीश फाउंडेशन प्रकाशन, पूना

कस्तूरी कुंडल बसै

श्री रजनीश आश्रम, पूना मे समाधि साधना शिविर, दिनाक ११ से २० मार्च, १९७५ तक भगवान श्री रजनीश द्वारा कबीर-वाणी पर दिये गये दस अमृत प्रवचनो का सकलन

अनुक्रम

अन्तर्यात्रा के मूल सूत्र

पहला प्रवचन

दिनांक ११ मार्च, १९७५, प्रात काल, श्री रजनीश आश्रम, पूना

तेरा जन एकाध है कोई ।
काम क्रोध अरु लोभ विवर्जित, हरिपद चीन्है सोई ।।

राजस तामस सातिग तीन्यू, ये सब तेरी माया ।
चौथे पद को जे जन चीन्है, तिनहि परमपद पाया ।।

अस्तुति निंदा आसा छाडै, तजै मान अभिमाना ।
लोहा कंचन सम करि देखै, ते मूरति भगवाना ।।

च्यतै तो माधो च्यतामणि, हरिपद रमै उदासा ।
त्रिस्ना अरु अभिमान रहित ह्वै, कहै कबीर सो दासा ।।

तिब्बत के एक आश्रम मे कोई हजार साल पहले एक छोटी-सी घटना घटी। उससे ही हम कबीर मे प्रवेश शुरू करे। बडा आश्रम था यह, और इस आश्रम ने एक छोटा नया आश्रम भी दूर तिब्बत के सीमान्त पर प्रारभ किया था।

आश्रम बन गया। खबर आयी कि सब तैयारी हो गई है, अब आप एक योग्य सन्यासी को पहुचा दे जो गुरु का पद सम्भाल ले।

प्रधान आश्रम के गुरु ने दस सन्यासी चुने और दसो को उस आश्रम की तरफ भेजा। पूरा आश्रम चकित हुआ। कोई हजार सन्यासी अन्त वासी थे। उन्होने कहा, बात समझ मे न आई--एक बुलाया था, दस भेजे। उत्सुकता बहुत तीव्र हो गई। जिज्ञासा सम्हाले न सम्हली। तो कुछ सन्यासी गये और गुरु को कहा, "हम समझ न पाये। एक का ही बुलावा आया था, आपने दस क्यो भेजे?"

गुरु ने कहा, "रुको। जब वे पहुच जाये, तब तुम्हे समझा दूगा।" यात्रा लबी थी--पहाडी थी, पैदल यात्रा थी। तीन सप्ताह बाद खबर पहुची कि आपने जो एक सन्यासी भेजा था, वह पहुच गया।

अब और भी मुसीबत हो गई। अब तो पूरा आश्रम एक ही चर्चा से भर गया कि यह तो रहस्य सुलझा न, और उलझ गया। दस भेजे थे, खबर आई, एक ही पहुचा। फिर उन्होने गुरु से पूछा। तो गुरु ने कहा, "दस भेजो तो एक पहुचता है।"

फिर पूरी कहानी बाद मे पता चली। दस यात्रा पर गये। पहले ही गाव मे प्रवेश किया और एक आदमी ने सुबह-ही-सुबह नगर के द्वार पर, पहला जो सन्यासी था, उसके पैर पकड लिये और कहा, "ज्योतिषी ने कहा है कि जो भी व्यक्ति कल सुबह पहला प्रवेश करे, उसी से मैं अपनी लडकी की शादी कर दू। लडकी यह है और इतना धन मेरे पास है, और कोई मालिक नही। एक ही लडकी है, कोई और मेरा बेटा नही। ज्योतिषी ने कहा, अगर पहला आदमी इनकार कर दे तो जो दूसरा आदमी हो, दूसरा इनकार करे तो तीसरा। तो तुम दस इकट्ठे ही हो, कोई-न-कोई स्वीकार कर ही लेगा।"

पहले ने ही स्वीकार कर लिया। लडकी बहुत सुदर थी। धन भी काफी था। उसने अपने मित्रो से कहा कि मेरा जाना न हो सकेगा आगे, परमात्मा की मर्जी यही दिखती है कि मैं इसी गाव मे रुक जाऊ।

दूसरे गाव मे जब वे पहुचे तो गाव के राजा का जो पुरोहित था, वह मर गया था, और वह एक नये पुरोहित की तलाश मे था। अच्छी नौकरी थी, शाही सम्मान था, काम कुछ भी न था। एक सन्यासी वहा रुक गया। और ऐसे ही ।

पहुचते-पहुचते, जब सिर्फ दस मील दूर रह गया था आश्रम, वे एक गाव मे एक साझ रुके। दो ही बचे थे। गाव के लोगो ने प्रवचन आयोजित किया था। उनमे से एक बोला। जब वह बोल रहा था तो एक नास्तिक बीच मे खडा हो गया और उसने कहा कि यह सब बकवास है, ये बुद्ध और बुद्ध-वचन, ये सब दो कौडी के हैं, कचरा हैं, इनमे कुछ सार नही। जो सन्यासी बोल रहा था, उसने अपने मित्र से कहा, "अब तुम जाओ। मैं यही रुकूगा। जब तक इस नास्तिक को बदलकर आस्तिक न कर दिया, तब तक मैं इस गाव से निकलनेवाला नही हू।"

ऐसे एक पहुचा।

दस चलते हैं तब एक पहुचता है।

इस घटना के आधार पर तिब्बत मे यह कहावत बन गयी कि "दस चलते है तब एक पहुचता है।"

मार्ग कटकाकीर्ण है, और बहुत प्रलोभन हैं माग मे। जगह-जगह रुकने की सभावना है। और प्रलोभन प्रबल हैं। और मार्ग कठिन है, चढाई का है। एक-एक कदम उठाना श्रम मागता है, निष्ठा मागता है। नीचे उतरनेवाला मार्ग नही है, जहा सुविधा से कोई ढलक सकता है, चढाव है, भारी चढाव है। गिरने की सब तरह की सभावनाये है। गिरने के सब तरह के सूक्ष्म कारण मौजूद है। इसलिए दस चले और एक भी पहुच जाये तो काफी है।

इजिप्त मे वे कहते हैं कि हजार बुलाये जाते हैं और एक चुना जाता है। और मुझ लगता है, तिब्बत से उनकी कहावत ज्यादा सही है। दस चले और एक पहुच जाये, यह भी सम्भव नही मालूम होता। हजार बुलाये जाते है और एक चुना जाता है।

जीसस से किसी ने पूछा कि तुम्हारे प्रभु का राज्य कैसा है, तो जीसस ने कहा, मछुए के जाल की तरह।

मछुआ जाल फेंकता है, सैकडो मछलिया फस जाती है। जो योग्य हैं, खाने के योग्य हैं, चुन ली जाती है, बाकी वापस पानी मे फेक दी जाती है।

तो जीसस ने कहा, प्रभु का राज्य भी मछुए के जाल की तरह है। परमात्मा

जाल फेंकता है, लाखो फसते हैं, पर इने-गिने चुने जाते हैं, जो तैयार हैं। बाकी वापस पानी मे फेंक दिये जाते हैं। पानी यानी संसार।

इसी तरह तो तुम बार-बार फेंके गये हो। ऐसा नहीं है कि जाल में नही फसे, कई बार फसे हो, पर तुम योग्य नही थे कि चुने जा सको। जाल मे फस जाना काफी नही है, मछुए की आख में जचना भी जरूरी है। जाल मे तो तुम फस जाते हो—जाल के कारण, लेकिन मछुआ तो तुम्हे चुनेगा—तुम्हारे कारण। हजार बार तुम फस गये हो—न मालूम कितनी बार सन्यास लिया होगा, न मालूम कितनी बार भिक्षु बने होओगे, न मालूम कितनी बार घर-द्वार छोडा होगा, आश्रम मे वास कर लिया होगा, कितनी बार प्रार्थना की है, कितनी बार सकल्प किये, कितने व्रत, कितने उपवास! तुम्हारे अनन्त जन्मो की अनन्त कथा है। लेकिन एक बात पक्की है कि तुम जाल मे कितनी ही बार फसे होओ, बार-बार वापस जल मे फेंक दिये गये हो, चुने तुम नही जा सके।

चुने जाने के लिए पात्रता चाहिए। चुने जा सको, इसके लिए भीतरी बल चाहिए, ऊर्जा चाहिए। चुने जा सको, इसके लिए पात्रता चाहिए।

और उस पात्रता को उपलब्ध करना दुर्गम है, अति दुर्गम है। इस ससार मे सभी कुछ पा लेना आसान है। तुम जैसे हो वैसे ही रहते हुए इस ससार की सब चीजे पायी जा सकती है। परमात्मा को पा लेना कठिन है, क्योंकि तुम जैसे हो वैसे ही रहते हुए परमात्मा को नही पाया जा सकता, तुम्हे बदलना होगा। और बदलाहट ऐसी है कि तुम्हे कुछ-न-कुछ परमात्मा जैसे होना होगा, तभी तुम परमात्मा को पा सकोगे। क्योकि, जो परमात्मा जैसा नही है, वह कैसे परमात्मा को पा सकेगा? कोई समानता चाहिए जहा से सेतु बन सके। कुछ एक किरण तो चाहिए तुममे सूरज की, जिसके सहारे तुम सूरज तक यात्रा कर सको।

हम दूध से दही बनाते हैं तो थोडा-सा दही उसमे डाल देते हैं, फिर सारा दूध दही हो जाता है। तो तुममे थोडा-सा तो परमात्मा होना ही चाहिए—तभी तुम्हारा पूरा दूध दही हो सकेगा। उतना भी न हो तो यात्रा नही हो सकती। और वहीं कठिनाई है, क्योकि थोडा-सा भी परमात्मा जैसा होना तुम्हारे सारे जीवन की व्यवस्था को बदलने के अतिरिक्त न हो सकेगा, तुम्हारी पूरी जीवन की शैली और पद्धति रूपान्तरित करनी होगी।

इसलिए कबीर कहते हैं, 'तेरा जन एकाध है कोई।'

ऐसे करोड-करोड लोग हैं। मदिर हैं, मस्जिद हैं, गुरुद्वारे हैं। लोग प्रार्थनाये कर रहे हैं, पूजा कर रहे हैं, अर्चना कर रहे हैं। पर, तेरा जन कोई एकाध ही है।

बडी पृथ्वी है। करोडो-अरबो लोग हैं। मदिरो की भी कोई कमी नही है, प्रार्थना-पूजा भी खूब चल रही है। अर्चना की धूप जल रही है, दीये जल रहे हैं, लेकिन अर्चना की आत्मा नही है। पूजा हो रही है बाहर के मदिर मे, भीतर के मदिर मे पूजा का कोई स्वर नही है। बडी सजावट है मदिर मे बाहर, भीतर का मदिर बिलकुल खाली है। तो जाओ तुम कितना ही मदिरो मे, पहुच न पाओगे, क्योकि उसका मदिर कोई पत्थर-मिट्टी का मदिर नही है। उसका मदिर तो परम चैतन्य का मदिर है। उसका मदिर कोई आदमी के बनाये नही बनता। बात तो बिलकुल उलटी है—उसके बनाये आदमी बना। आदमी उसके मदिर बनाकर किसको धोखा दे रहा है?

तुम्हारे बनाये मदिरो से तुम कही भी न पहुच सकोगे। तुम्हारे बनाये मदिर तुमसे छोटे होगे। उचित भी है, गणित साफ है। तुम जो बनाओगे वह तुमसे बडा कैसे हो सकता है? बनानेवाले से बनाई गई चीज बडी नही हो सकती। कविता कितनी ही सुदर हो, कवि से बडी थोडे ही हो पायेगी। और सगीत कितना ही मधुर हो, सगीतज्ञ से तो बडा न हो पाएगा। मूर्ति कितनी हो सुदर हो, मूर्तिकार से तो सुदर न हो पायेगी। बनानेवाला तो ऊपर ही रहेगा, क्योकि बनानेवाले की सभावनाए अभी शेष हैं, सब चुक नही गया, वह इससे भी श्रेष्ठ बना सकता है। जिसने एक सुदर गीत गाया, वह इससे भी हजार सुदर गीत गा सकता है। और वह कितने ही गीत गाए, हर गीत के ऊपर ही वह रहेगा।

तुम्हारे बनाये मदिर तुमसे बडे नही हो सकते। तुम्हारी बनाई हुई परमात्मा की प्रतिमाए तुमसे छोटी होगी। तुम्ही उनके स्रष्टा हो। तुम्हारा काम, तुम्हारा क्रोध, तुम्हारा लोभ, माया-मोह, सब तुम्हारी मूर्तियो मे समाविष्ट हो जाएगा। तुम्हारे हाथ ही तो छुएगे और निर्माण करेगे। तुम्हारे हाथ का जहर तुम्हारी मूर्तियो मे भी उतर जाएगा। तुम्हारे बनाये हुए मदिर तुमसे बेहतर नही हो सकते। और अगर तुम्हारा मन वेश्यालय मे लगा है तो तुम्हारे मदिर वेश्यालयो से बेहतर नही हो सकते। तुम जहा हो, तुम जैसे हो, तुम्हारी ही अनुकृति तो गूजेगी। तुम्हारी ही धुन तो छूट जायेगी वहा। इसीलिए तो परमात्मा के मदिर है, नामभर परमात्मा के है, बनाये आदमी के हैं।

और शायद इसीलिए जितना मदिरो से नुकसान हुआ जगत का, किसी और चीज से नही हुआ। मदिरो और मस्जिदो ने लोगो को लडाया है, क्योकि जिन्होने बनाया था, उनकी हिंसा उनमे उतर गई। मदिर और मस्जिद ने आदमी को जोडा नही, तोडा है। उनके कारण पृथ्वी पर स्वर्ग नही उतरा, यद्यपि नर्क की झलके

कई बार मिली है ।

ठीक भी लगता है, साफ है बात—क्योंकि जिन्होने बनाया है उनकी घृणा, उनकी हिंसा, उनकी आक्रमण की वृत्ति, उनकी दुष्टता, उनकी क्रूरता, सभी मदिरो और मस्जिदो मे प्रवेश कर गई है ।

तुम्हारे मदिर मे तुम किसकी पूजा कर रहे हो ?—अपनी ही पूजा कर रहे हो । तुम्हारे मदिर तुम्हारे ही दर्पण है, जिनमे तुम्हारी छवि ही दिखाई पड रही है । इसलिए तो मदिर और मस्जिद मे तुम कितने ही भटको, तुम पहुच न पाओगे । तुम्हे अगर परमात्मा को खोजना है तो तुम्हे वह मदिर खोजना होगा जो उसने ही बनाया है । वह मदिर तुम्हीं हो । इसलिए कबीर कहते हैं, 'कस्तूरी कुडल बसै' ।

तुम्हे पता होगा कस्तूरी-मृग का । कस्तूरी तो पैदा होती है मृग की नाभि मे । कस्तूरी का नाफा नाभि मे पैदा होता है । और कस्तूरी की जो सुगध है, वह मादा मृग को आकर्षित करने के लिए है । जब नर मृग कामातुर होता है, जब कामातुरता बढती है तो उसके शरीर से एक सुगध फैलनी शुरू हो जाती है । वह सुगध बडी मादक है । कस्तूरी जैसी कोई गध नही, बडी आकर्षक है, चुम्बक जैसा उसमे आकर्षण है । मस्ती से भर देती है वह गध मादा को । मादा पागल हो जाती है, वह अपना होश खो देती है ।

यह तो ठीक है । यह तो प्रकृति की व्यवस्था हुई । प्रकृति ने वैसी व्यवस्था की है कि मादा और नर एक-दूसरे से चुम्बकीय आकर्षण से बधे रहे ।

मोर नाचता है । उसके पख, उसके रग, कामातुर करते है । उसका नृत्य, उसके नृत्य की भनक मादा को आकर्षित करती है । कोयल गाती है । उसकी ध्वनि पुकार है, उसकी ध्वनि मे बधी मादा चली आती है । वैसे ही कस्तूरी-मृग है । उसकी नाभि मे कस्तूरी पैदा होती है और उसकी गध शराब जैसी है । उस गध मे मादा अपना होश खो देती है और समर्पण कर देती है । यहा तक तो ठीक है, लेकिन कस्तूरी-मृग की एक तकलीफ है कि उसको खुद भी बास आती है ।

मोर नाचता है तो खुद तो अपने पखो को नही देख सकता । पपीहा पुकारता है या कोयल गीत गाती है, तो भी कोयल का पता है कि गीत मेरा है । लेकिन कस्तूरी-मृग को गध आनी शुरू होती है और उसकी समझ मे नही आती कि गध कहा से आ रही है । मादा तो पागल होती है, नर भी पागल हो जाता है, और वह भागता है मदहोशी मे कि कही से आ रही होगी—आ तो रही है—तो वह स्रोत की तलाश करता है । वह भागा फिरता है । वह जहा भी जाता है, वही गध को पाता है । वह करीब-करीब पागल हो जाता है, सिर लहूलुहान हो जाता है, भागते—

वृक्षो मे, जगल मे, खोजते कि कहा से गध आती है ? और गध उसके भीतर से आती है--'कस्तूरी कुडल बसै ।'

कबीर ने बडा प्यारा प्रतीक चुना है । जिस मदिर की तुम खोज कर रहे हो, वह तुम्हारे कुडल मे बसा है, वह तुम्हारे भीतर है, तुम ही हो । और जिस परमात्मा की तुम मूर्ति गढ रहे हो, उसकी मूर्ति गढने की कोई जरूरत ही नही, तुम ही उसकी मूर्ति हो । तुम्हारे अन्तरआकाश मे जलता हुआ उसका दीया, तुम्हारे भीतर उसकी ज्योतिर्मयी छवि मौजूद है । तुम मिट्टी के दीये भला हो ऊपर से, भीतर तो चिन्मय की ज्योति है । मृण्मय होगी तुम्हारी देह, चिन्मय है तुम्हारा स्वरूप । मिट्टी के दीये तुम बाहर से हो, ज्योति थोडे ही मिट्टी की है । दीया पृथ्वी का है, ज्योति आकाश की है । दीया ससार का है, ज्योति परमात्मा की है ।

लेकिन तुम्हारी स्थिति वही है जो कस्तूरी-मृग की है भागते फिरते हो, जन्मो-जन्मो से तलाश कर रहे हो--जिसे तुमने कभी खोया नही । खोजने के कारण ही तुम वचित हो । यह कस्तूरी-मृग पागल ही हो जाएगा । यह जितना खोजेगा उतनी मुश्किल मे पडेगा, जहा जायेगा, कही भी जाये, सारे ससार मे भटके तो भी पा न सकेगा । क्योकि बात ही शुरू से गलत हो गई--जो भीतर था उसे उसने बाहर सोच लिया, क्योकि गध बाहर से आ रही थी, गध उसे बाहर से आती मालूम पडी थी ।

तुम्हे भी आनन्द की गध पागल बनाये दे रही है । तुम भी आनन्द की गध को बाहर से आता हुआ अनुभव करते हो, कभी किसी स्त्री के सग तुम्हे लगता है, आनन्द मिला, कभी बासुरी की ध्वनि मे लगता है, आनद मिला, कभी भोजन के स्वाद मे लगता है कि आनद मिला, कभी धन की खनकार मे लगता है कि आनद मिला, कभी पद की शक्ति मे, अहकार मे लगता है कि आनद मिला । बडा जगल है ! हर वृक्ष से तुम सिर तोड चुके हो, लहूलुहान हो--कभी यहां, कभी वहा, कभी इधर, कभी उधर, खोजते हो और झलक मिलती है । झलक इसलिए मिलती है कि 'कस्तूरी कुडल बसै'। जहा भी जाओगे वहीं झलक मिल जाएगी ।

अब यह जरा कठिन है । जब तुम किसी स्त्री मे पाते हो कि आनद मिला, तब ठीक वही दशा है जो कस्तूरी-मृग की है । आनद तुम्हे अपने ही कारण मिल रहा है--क्योकि कल तुम्हारा ही मन बदल जाएगा और इसी स्त्री मे आनद न मिलेगा, कल इसी स्त्री से तुम बचना चाहोगे । आज सब न्योछावर करने को राजी थे, कल इसकी शक्ल देखना मुश्किल हो जाएगी । अगर आनद स्त्री से ही मिला था तो सदा मिलता, शाश्वत मिलता । तुम्हारे भीतर से कोई गध उठी थी और स्त्री मे प्रतिफलन हुआ था । तुम्हारे ही भीतर से उठी थी गध और तुमने उसे स्त्री से

आते हुए अनुभव किया था। स्त्री ने शायद तुम्हारे भीतर जो था उसकी ही प्रतिध्वनि की थी। कभी धन के सग्रह मे, कभी अहकार की तृप्ति मे, पद-प्रतिष्ठा में तुम्हे गध आती अनुभव हुई।

मैंने सुना है, एक जगल मे ऐसा हुआ, एक लोमडी ने एक खरगोश को पकड लिया। वह उसे खाने ही जा रही थी, सुबह का नाश्ता ही करने की तैयारी थी कि खरगोश ने कहा, "रुको ! तुम लोमडी हो हो, इसका सबूत क्या ?" ऐसा कभी किसी खरगोश ने इतिहास मे पूछा ही नही था। लोमडी भी सकते मे आ गयी। उसे भी पहली दफे विचार उठा कि बात तो ठीक है, सबूत क्या है ? उस खरगोश ने पूछा, "प्रमाण-पत्र कहा है, सर्टिफिकेट कहा है ?" उसने खरगोश से कहा, "तू रुक, मैं अभी आती हू।"

वह गई जगल के राजा के पास, सिह के पास, और उसने कहा, "एक खरगोश ने मुझे मुश्किल मे डाल दिया। मैं उसे खाने ही जा रही थी तो उसने कहा, रुक, सर्टिफिकेट कहा है ?"

सिह ने अपने सिर पर हाथ मार लिया और कहा कि आदमियो की बीमारी जगल मे भी आ गई। कल मैंने एक गधे का पकडा, वह गधा बोला कि पहले सबूत, प्रमाण-पत्र क्या ? पहले तो मैं भी सकते मे आ गया कि आज तक किसी गधे ने पूछा ही नहीं। इस गधे का क्या हो गया है ? वह आदमी के सत्सग मे रह चुका था।

सिह ने कहा, मैं लिखे देता हू। उसने लिख के दिया, सही कि यह लोमडी ही है।

लोमडी गई, बडी प्रसन्न, लेकर सर्टिफिकेट। खरगोश बैठा था। लोमडी को तो शक था कि भाग जायेगा, कि सब धोखा है। लेकिन नही, खरगोश बैठा था। खरगोश ने सर्टिफिकेट पढा, लोमडी के हाथ में सर्टिफिकेट दिया और भाग खडा हुआ। पास के ही बिल मे, जमीन मे अतर्धान हो गया। लोमडी सर्टिफिकेट के लेने-देने मे लग गई और उस बीच वह खिसक गया। वह बडी हैरान हुई। वह वापस सिह के पास आई कि यह तो बहुत मुश्किल की बात हो गई। सर्टिफिकेट तो मिल गया, लेकिन वह खरगोश निकल गया। तुमने गधे के साथ क्या किया था ? सिह ने कहा कि देख, जब मुझे भूख लगी होती है, तब मैं सर्टिफिकेट की चिता नही करता, पहले मैं भोजन करता हू। वही काफी सर्टिफिकेट है कि मैं सिह हू। और जब मैं भूखा नहीं होता तो मैं सर्टिफिकेट की बिलकुल चिता नही करता। मैं सुनता ही नही। मगर यह बीमारी जोर से फैल रही है।

आदमी मे यह बीमारी बडी पुरानी है, जानवरो मे शायद अभी पहुची होगी।

बीमारी यह है कि तुम दूसरो से पूछते हो कि मैं कौन हू। जब हजारों लोग जय-जयकार करते हैं, तब तुम्हे सर्टिफिकेट मिलता है कि तुम कुछ हो। जब कोई तुम्हे उठाकर सिहासन पर बिठाल देता है, तब तुम्हे प्रमाण-पत्र मिलता है कि तुम कुछ हो। दूसरो से प्रमाण-पत्र लेने की जरूरत है? दूसरो से पूछना आवश्यक है कि तुम कौन हो?

लेकिन तुम सदा दूसरो से पूछ रहे हो। स्कूल से सर्टिफिकेट ले आये हो कि तुम मैट्रिकुलेट हो, कि बी ए हो, कि पी एच डी हो। सब तरफ से तुमने सर्टिफिकेट इकट्ठे किये हैं कि तुम कौन हो। कोई प्रमाण-पत्र तुम्हे खबर न दे सकेगा कि तुम कौन हो। क्योंकि, दूसरे तुम्हे कैसे पहचानेंगे?

सिह भी कैसे प्रमाण-पत्र दे सकता है लोमडी को कि तू लोमडी ही है। अगर कोई प्रमाण है तो भीतर है। तुम कौन हो, इसकी अगर कोई भी खबर मिल सकती है तो भीतर से मिल सकती है। तुम दूसरो के दरवाजे पर मत खटखटाओ, तुम अपना ही दरवाजा खोल लो। और तुम्हे दूसरो के दरवाजे पर जो भनक भी मिलेगी, वह भी तुम्हारे भीतर की ही गध की है। दूसरे के दरवाजे से टकराकर तुम्हारी ही गध तुम्हारे नासापुटो मे आ जायेगी, और तुम समझोगे कि दूसरे ने कुछ दिया है।

इस जगत मे कोई किसी को कुछ नही देता, दे नही सकता। स्त्री सुख नही दे सकती पुरुष का, पुरुष सुख नही दे सकता स्त्री का, लेकिन एक-दूसरे के आसपास खडे होकर अपनी ही गध की प्रतिध्वनि सुनने मे सुविधा हो जाती है। अकेले मे तुम्हे बडी बेचैनी होती है। अगर तुम्हे एक शून्य घर मे छोड दिया जाये तो तुम बडी मुश्किल मे पड जाते हो, क्योंकि वहा कोई दूसरा व्यक्ति नही जिसके माध्यम से तुम अपनी गध को वापस पा सको। इसलिए आदमी भीड की तरफ जाता है—क्लब, समाज, समुदाय, मित्र, परिवार।

तुम सदा दूसरे को खोजते हो, क्योंकि दूसरे के बिना प्रतिध्वनि कैसे पता चलेगी? तुम भागे फिरते हो। बहुत जगह तुम्हे झलक मिलती है। वह सब झलक झूठी है—झूठी स्रोत की दृष्टि से। तुम्हे लगता है, वह बाहर से आ रही है। तब तुम बाहर पर निर्भर होते जाते हो। और जितना तुम बाहर पर निर्भर होते हो, उतनी ही भीतर की सुधि खो जाती है।

पहचानो, जब स्त्री के सभोग मे कभी तुम्हे सुख का कोई क्षण मिला है तो होता क्या है? होता इतना ही है कि स्त्री के सभोग के क्षण मे विचार बद हो जाते है, विचार बद हो जाते है, भीतर के ध्यान की धुन बजने लगती है, मार्ग खुल जाता है—कस्तूरी बाहर तक आ जाती है। क्षणभर को तुम्हे सुख अनुभव होता है,

क्षणभर को झरोखा खुलता है, फिर बद हो जाता है।

जहा कही भी कोई सितार बजाता हो, और तुम बैठ जाते हो, लीन हो जाते हो—जैसे ही तुम लीन होते हो वैसे ही सुगध आनी शुरू हो जाती है। वह सुगध सितार से नही आ रही है, वह तुम्हारी लीनता से आ रही है। तल्लीनता ही तो ध्यान है।

तुम भोजन करते हो, स्वादिष्ट भोजन है, तुम बडे रस से भोजन लेते हो, तुम इतने तल्लीन होकर भोजन करते हो कि भोजन ही ध्यान हो जाता है। उसी क्षण मे तो उपनिषद् के ऋषिओ ने कहा है कि अन्न ब्रह्म है। अन्न से भी इतनी ध्वनि उठी होगी कि ब्रह्म जैसा प्रतीत हुआ।

होता क्या है ?

समझ लो कि तुम भोजन कर रहे हो—बडा स्वादिष्ट है, तुम बडे तल्लीन हो, बडा सुख आ रहा है, स्वाद रोए-रोए मे डूबा जा रहा है—तभी कोई खबर लेकर आता है कि बाहर पुलिस खडी है और मीसा के अन्तर्गत तुम गिरफ्तार किये जाते हो—तत्क्षण स्वाद खो गया। भोजन अब भी वही है, लेकिन लीनता टूट गई। भोजन वही है, जीभ वही है, शरीर मे अब भी वही रस काम कर रहे है, लेकिन लीनता टूट गयी। अब भोजन मे कोई स्वाद नही है, भोजन बेस्वाद हो गया। अब भोजन मे नमक है या नही, तुम्हे पता न चलेगा।

अचानक क्या बदल गया ? सब तो वही है। और फिर एक आदमी भीतर आता है, वह कहता है, घबडाओ मत, सिर्फ मजाक की थी, कोई पुलिस नही आई है, कोई मीसा के अन्तर्गत गिरफ्तार नही किये गये हो—फिर लीनता आ गई ! जो भोजन बेस्वाद हो गया था, बडा फासला हो गया था—वह फिर स्वादिष्ट हो गया, फिर तुम मग्न हो !

तुम्ही दान देते हो, तुम्ही भोग करते हो। तुम्ही पहले भोजन मे रस डाल देते हो लीनता के द्वारा, फिर तुम्ही स्वाद लेते हो। तुम्ही स्त्री या पुरुष मे अपनी कामना के द्वारा ध्यान को केन्द्रित कर देते हो, फिर अपनी ही धुन सुनते हो।

'कस्तूरी कुडल बसै।'

जहा भी तुमने कही आनद पाया हो, स्मरण रखना कि वह तुमने ही डाला होगा, क्योकि दूसरा कोई उपाय नही है। धन मे डाल दो तो धन मे आनद मिलने लगेगा, पद मे डाल दो तो पद मे आनद मिलने लगेगा—जिस बात मे भी डाल दो वही से आनद मिलने लगेगा। आनद तुम्हारा स्वभाव है, वह तुम्हारी नाभि मे ही छिपा है और तुम मदमाते भाग रहे हो, और वहा खोज रहे हो जहा वह नही है, और

वहा से तुम्हारी आख बिलकुल चूक गई है जहा वह है।

'तेरा जन एकाध है कोई।'

कोई एकाध करोडो मे भीतर की तरफ मुडता है। कोई एकाध करोडो मे इस राज को समझ पाता है कि जिसे मैं बाहर पा रहा हू वह मेरे भीतर है। इस राज की कुजी हाथ मे आते ही, जीवन मे क्राति घटित हो जाती है, तुम्हारे हाथ में स्वर्ग का द्वार आ गया पहली दफा। अब कही खोजने की कोई जरूरत न रही। अब तो जब भी चाहा सुगध भीतर है, स्वर्ग भीतर है। 'जब जरा गर्दन झुकाई देख ली। दिल के आइने मे है तस्वीरे यार।' अब बस गर्दन झुकाने की बात रही। धीरे धीरे तो गर्दन झुकाने की भी बात नही रह जाती। तुम्ही हो, गर्दन भी क्या झुकानी है! जहा रहे, जैसे रहे, वही आनद फैलता रहेगा। जहा रहे जैसे रहे, सुविधा मे रहे, असुविधा मे रहे, स्वस्थ थे कि बीमार थे, गरीब थे कि अमीर थे, जवान थे कि वृद्ध थे, जन्म रहे थे कि मर रहे थे—कोई फर्क नही पडता।

तुम्ही हो वह परम स्वर्ग। अब कुछ भी बाहर होता रहे, वह सब बाहर है और भीतर अनाहत सगीत गूज रहा है, और भीतर उस भीतर के महा सुख मे जरा भी दरार नही पडती, कोई विघ्न नही आता। क्योकि जो बाहर है वह बाहर है, और उसके भीतर पहुचने का काई उपाय नही। एक बार तुम्हे अपने भीतर का मदिर मिल गया और एक बार तुमने राह पहचान ली, फिर तुम्हे भटकाने का कोई उपाय नही। क्योकि, कोई भटका भी नही रहा था, तुम खुद ही भटक रहे थे—क्योकि, तुम्हे लगता था, गध आती है बाहर से, और गध छिपी थी तुम्हारी नाभि मे।

'तेरा जन एकाध है कोई।'

करोडो मे कोई एक भीतर की इस बात को पहचान पाता है। अडचन क्या है? खोजते तो सभी हैं, पाना भी सभी चाहते हैं, फिर पा क्यो नही पाते? कहा अवरोध है? कहा मार्ग मे दीवाल आ जाती है?

'काम क्रोध अरु लोभ विवर्जित, हरिपद चीन्हे सोई।'

कबीर कहते हैं काम, क्रोध और लोभ—इन तीनो की विवर्जना है इनका अवरोध है। इनके कारण ही पहचान मुश्किल हो जाती है। इनके कारण ही हरिपद को चीन्हना मुश्किल, करीब-करीब असभव हो जाता है। इन तीन को हम समझने की कोशिश करे।

काम, क्रोध, लोभ—

काम है जो हमारे पास है, उससे ज्यादा पाने की आकाक्षा। जो मिला है उससे तृप्त न होना काम है। जो है, उससे असतोष काम है। इसलिए मोक्ष की कामना

भी कामना ही है। परमात्मा को पाने की इच्छा भी काम है। धन पाने की इच्छा तो काम है ही, स्त्री पाने की, पुरुष पाने की इच्छा तो काम है ही, परमात्मा को पाने की इच्छा, मोक्ष को पाने की इच्छा भी काम है।

काम का अर्थ इतना ही है कि जो है, उतना काफी नही। और अकाम का अर्थ है, जो है वह काफी से ज्यादा है, जो है वह परम तृप्ति दे रहा है, जो है वह परितोष दे रहा है। उतने से हम राजी ही नही है, हम प्रफुल्लित भी हैं, जो मिला है उससे हम अनुगृहीत हैं। फिर काम विसर्जित हो जाता है।

इसलिए ध्यान रखना, दो तरह के कामी हैं सासारिक और धार्मिक। सासारिक कामी बाजार मे बैठा है—वह धन इकट्ठा कर रहा है, पद-प्रतिष्ठा इकट्ठा कर रहा है, मकान बड़े-से-बडा किये चले जा रहा है। और एक धार्मिक कामी है—वह सन्यासी हो गया है, मुनि हो गया है, मदिर मे बैठा है, आश्रम मे बैठा है, लेकिन वह भी कामी है। उसकी कामना का विषय बदल गया है, लेकिन कामना नही बदली। कल वह धन चाहता था, अब वह ब्रह्म चाहता है—चाह बाकी है।

और चाह है काम। क्या तुम चाहते हो, इससे कोई फर्क नही पडता। जब तक तुम चाहते हो तब तक तनाव रहेगा, और जब तक तनाव रहेगा तब तक अवरोध रहेगा। जब तक तुम मागते रहोगे तब तक तुम्हारी आख बाहर लगी रहेगी। जब तक तुम चाहना से भरे रहोगे तब तक तुम भविष्य से भरे रहोगे, तुम्हारा मन दौडता रहेगा कल की तरफ। भीतर कैसे जाओगे? भीतर जाना तो आज और अभी होगा। बाहर जानेवाला मन हमेशा कल आनेवाले भविष्य मे डोलता रहेगा, डावाडोल रहेगा।

काम भविष्य को पैदा करता है। कामना से भविष्य पैदा होता है। और जो आदमी निष्काम है, वह अभी और यही जीता है, उसके लिए कोई भविष्य नही है। यह क्षण काफी है। क्या कमी है इस क्षण मे? सब पूरा है। तुम पूरे-के-पूरे हो, रत्तीभर कमी नही है। लेकिन अगर कामना हुई तो कामना से कमी पैदा होती है।

यह गणित ठीक से समझ लो।

जितनी बडी कामना, उतनी बडी कमी। जितना मागोगे, उतने बड़े भिखारी रहोगे।

मैं एक घर मे मेहमान था कलकते मे। एयरपोर्ट से मेरे मेजवान मुझे लेकर चले तो बड़े उदास थे। मैंने पूछा, क्या हुआ? कहा कि बहुत नुकसान हो गया। उनकी पत्नी, जो पीछे बैठी थी, उसने कहा, "इनकी बातो मे मत पडना। आप तो जानते ही है, नुकसान बिलकुल नही हुआ है, लाभ हुआ है।" तो मैं थोडा परे-

ज्ञान हुआ कि मामला क्या है। मैंने कहा, विस्तार से कहो। तो उसने कहा, "इनको किसी धंधे मे दस लाख मिलने की आशा थी, पाच ही लाख मिले। ये कहते हैं, पाच लाख का नुकसान हो गया और उससे बडे परेशान हैं। ये रात सो नही सकते। और मैं इनको समझा-समझाकर मरी जा रही हू। और इसीलिए मैंने चाहा कि आप आये और इनको थोडी याद दिलाये कि पाच लाख का लाभ हुआ है।"

कामना दस की हो और पाच ही मिले तो पाच का तो नुकसान हो गया। अगर कामना पचास की होती तो और बडा नुकसान होता। अगर कामना करोड की होती तो भिखारी ही हो गये थे, दिवाला ही निकल गया था। जितनी बडी कामना होती चली जाती है, उतना बडा भिखारीपन बढता चला जाता है। इसलिए सम्राटो से बडे भिखारी तुम कही न पा सकोगे, और धनियो से बडे दरिद्र खोजना मुश्किल है। उनके पास क्या है, उसकी गिनती मत करना, क्योकि उसकी गिनती वे खुद ही नही कर रहे है, तुम क्यो करो? उनके पास जो नही है उसका हिसाब करना, तब तुम्हे पता चलेगा। यही भूल हो रही है। तुम देखते हो धनी तो तुम उसका हिसाब लगाते हो जो-जो उसके पास है—कितना बडा मकान, कितनी बडी कार, कितनी बडी जमीन। तुम इसका हिसाब लगा रहे हो, तुम कह रहे हो, आदमी के पास कितना है! वह आदमी इसका हिसाब ही नही लगा रहा है। वह हिसाब लगा रहा है उसका जो होना चाहिए और जो नही है।

तुम ईर्ष्या से मरे जा रहे हो कि काश, इतना हमारे पास होता! और वह आदमी अपनी तृष्णा से मरा जा रहा है, क्योकि यह तो कुछ भी नही है।

सपने कभी पूरे नही होते, क्योकि अगर पूरे भी हो जायें तो सपने बडे लोचपूर्ण हैं। जब तक वे पूरे होते हैं तब तक वे फैलकर और बडे हो जाते हैं। सपने तो, बच्चे रबड के गुब्बारो से खेलते है, वैसे है—तुम फूकते जाते हो, वे बडे होते जाते है। कुछ और नही करना पडता, सिर्फ फूकना पडता है, सिर्फ थोडी हवा और डाल दी कि फुग्गा बडा हो जाता है, और बडा होता चला जाता है। कामना फूकने से ज्यादा नही है। कोई कामना के लिए कुछ करना नही पडता, आराम कुर्सी मे बैठकर तुम जितना दिवास्वप्न देखना चाहो उतना देख सकते हो। और बच्चो के फुग्गे तो फूट भी जाते है, अगर ज्यादा फूके जाये, कामना के फुग्गे कभी नही फूटते, क्योकि वे हो तो फूटे। फुग्गा कम-से-कम कुछ तो है—माना कि बहुत पतली रबड है और भीतर सिर्फ गर्म हवा है, लेकिन सपने के फुग्गे मे उतनी पतली रबड भी नही, वह हवा-ही-हवा है। उसको तुम फैलाते चले जाते हो। यह आकाश भी छोटा है तुम्हारे सपने से। उसकी कोई सीमा नही।

दुनिया मे दो चीजे असीम है एक सपना और एक ब्रह्म । बस दो चीजे असीम हैं । उनमे से एक है और एक बिलकुल नही है ।

फिर सपना जितना बडा होता है, उससे तुम तुलना करते हो जो तुम्हारे पास है—बडी अतृप्ति पैदा होती है, उतना असतोष जगता है । कोई तुम्हे गरीब नही बना रहा है, तुम्ही अपने को गरीब बनाये चले जा रहे हो । जिस दिन यह समझ मे आया बुद्ध और महावीर को, वे तत्क्षण राजमहल छोड सडक पर खडे हो गये । राजमहल नही छोडा, वह जो सपना था, जिसके कारण गरीब-से-गरीब हुए जा रहे थे, वह सपना छोड दिया ।

इसलिए दुनिया मे बडी अनूठी घटना घटती है सम्राट दीन रह जाते हैं, और कभी-कभी राह के भिखारी ने ऐसी गरिमा पायी है कि उसकी महिमा का बखान नही किया जा सकता ।

राज कहा है ? कुजी कहा है ?

जो तुम्हारे पास है उससे जो तृप्त है, जिसकी वासना रत्तीभर भी भविष्य की तरफ नही जाती, जिसने वर्तमान को काफी पाया—और काफी शब्द ठीक नही है, काफी से ज्यादा पाया, क्योकि काफी मे थोडी कमी मालूम पडती है, बस काफी, ऐसा लगता है कि कुछ और बाकी है—जिसने काफी ही नही, जो है उसमे पर्याप्त से ज्यादा पाया, परितृप्ति पायी, परितोष पाया, और इतना ही नही कि वह राजी है, वह अनुगृहीत है, वह अहोभागी है, जो मिला है उसके लिए उसके हृदय मे बडा गहन धन्यवाद है—तो कामना टूट जाती है । सतोष कामना को मिटा देता है । असतोष कामना की अग्नि मे घी की तरह बढता चला जाता है ।

सतुष्ट होना सीखो, तो काम की पहली बाधा गिर जायेगी । अगर कामना बनी रही तो भविष्य का जाल बना रहता है । और वह जाल बडा है । और वर्तमान का क्षण बडा छोटा है । वह उस जाल मे कहा खो जाएगा, तुम्हें पता ही न चलेगा ।

वर्तमान का क्षण तो ऐसे है जैसे रेत का एक कण, और भविष्य का जाल ऐसे है जैसे सारे सागरो के किनारे की रेत । वर्तमान का कण कहा तुम खो दोगे उस रेत मे, पता ही न चलेगा । और वही द्वार है । और उसके अतिरिक्त कोई द्वार नही है । वही से कोई मदिर मे प्रवेश करता है । क्योकि वही तुम हो वही वृक्ष है, वही आकाश है, वही चाद-तारे है, वही परमात्मा है ।

वर्तमान का क्षण एकमात्र अस्तित्व है । भविष्य तो कल्पना का जाल है, वह तो आखे खुली रखकर सपने देखने का ढग है—दिवास्वप्न ।

अगर तुम्हारी कामना भविष्य की तरफ बढती जाती है तो एक अवरोध दूसरे

अवरोध को सहायता देता है। जिस आदमी की कामना भविष्य मे होगी उसका लोभ अतीत मे होगा। लोभ अतीत है, और कामना, काम भविष्य है। लोभ का मतलब है, जो है उसे जोर से पकडे रहो। काम का अर्थ है, जो नही है उसको मागे जाओ। और लाभ का अर्थ है, जो तुम्हारे पास है उसे जोर से पकडे रहो, वह कही खो न जाये, उसमे से रतीभर कम न हो जाये।

अब यह बडे मजे की बात है कि उससे तुम्हे कोई सुख नही मिल रहा है, उससे तुम सतुष्ट नही हो, सतोष की तो तुम कामना कर रहे हो, कभी भविष्य मे कोई स्वर्ग मिलेगा, लेकिन तुम उसे पकडे जोर से हो।

आदमी अतीत को पकडे रखता है, और जो-जो उसने अतीत मे कमाया है—धन, पद, ज्ञान, त्याग, जो भी, उसको सभाले रखता है कि कही यह खो न जाये। आखे लगी रहती हैं भविष्य पर और पैर अडे रहते हैं अतीत मे। दोनो हाथो से अतीत को पकडे रहते हो और दोनो आखो से सपना देखते रहते हो भविष्य का। और इन दोनो के बीच मे क्षण है एक, जहा अस्तित्व समाधि मे सदा ही लीन है, जहा अस्तित्व क्षणभर को भी कपा नही है, जहा निष्कम्प चैतन्य की ज्योति जल रही है, जहा मदिर का द्वार खुला है।

सकीर्ण है वह द्वार।

जीसस ने अपने शिष्यो से कहा है, "नैरो इज माइ गेट। सकीर्ण है मेरा द्वार। स्ट्रेट इज दि वे, बट नैरो इज माइ गेट।" मार्ग तो सीधा-साफ है, लेकिन द्वार बहुत सकीर्ण है। वही तो कबीर कहते है, "प्रेम गली अति साकरी, तामे दो न समाय।" बडी सकीर्ण है गली, वहा दो भी साथ न जा सकेगे।

जीसस ने कहा है, "सुई के छेद से ऊट निकल जाये, लेकिन धनी स्वर्ग के द्वार से न निकल पाएगा। आखिर धनी पर ऐसी क्या नाराजगी है? धनी से प्रयोजन है, जिसने पकड रखा है अतीत को, लोभ को।

लोभ और काम एक ही सिक्के के दो पहलू है। एक अतीत की तरफ देख रहा है कि जो है वह खो न जाये—दमडी-दमडी को पकडे हुए है। और काम भविष्य की तरफ देख रहा है कि जो है उससे ज्यादा होना चाहिए। इन दोनो के भीतर, इन दोनो के बीच, खिचे हुए तुम हो। अगर तुम्हारा जीवन बिलकुल सकट मे पडा है तो कुछ आश्चर्य नही। अगर तुम इस तरह खिचे जा रहे हो दो अभावो के बीच तो आश्चर्य नही है। अतीत जा चुका, उससे तुमने जो भी इकट्ठा कर लिया है, कचरा है। भविष्य आया नही, तुम जो भी सोच रहे हो, सिर्फ सपना है। उन दोनो के बीच तुम खिचे जा रहे हो, तुम्हारी दुर्गति हुई जा रही है। फिर

तुम कहते हो, बडी चिन्ता है, बडा सताप है। होगा ही। आश्चर्य है कि तुम जिन्दा कैसे हो !

मनस्विद् जितना अध्ययन करते हैं उतना ही वे हैरान होते हैं। पहले तो, पचास साल पहले मनस्विद् लिखते थे कि इतने ज्यादा लोग पागल होते हैं, क्यो ? अब वे लिखते हैं कि इतने लोग पागल नही होते–थोडे ही पागल होते हैं, बाकी तो नही पागल होते–क्यो ? क्योकि स्थिति तो ऐसी है कि सभी को पागल होना चाहिए। पागल हैं ही, कमोबेश मात्रा का फर्क है। थोडा अपने को कोई ज्यादा सम्हाले हुए है, कम पागल दिखाई पडता है, लेकिन भीतर सारा पागलपन उबल रहा है। कब बिस्फोट होगा, कोई भी नही जानता, किसी भी क्षण हो सकता है। वह तो अच्छा है कि मौत जल्दी आ जाती है। थोडा सोचो कि जिन्दगी अगर दो सौ साल की हो, तो तुम एक आदमी न पाओगे जो बिना पागल हुए मर जाये। जिन्दगी कम है, इसलिए यह नही होता।

अगर जिन्दगी हजार साल की हो तो जमीन बिलकुल पागलों से भर जाएगी। पागलखाने बनाने की जरूरत न होगी, बुद्धखाने बनाने पडेगे। कुछ लोग जो ठीक हालत मे है, उनको बचाना पडेगा कि इनको एक दीवाल बनाकर अदर बिठा दो, नही तो ये पागल मार डालेगे। दीवाल के बाहर पागलखाना, दीवाल के भीतर बुद्धखाना बनाना पडेगा। उम्र कम है, जल्दी चुक जाती है, अन्यथा अगर तुम जैसे हो वैसे ही बढते जाओ, तो तुम सोच सकते हो कि अत क्या होगा। इसके पहले कि तुम पागल हो जाओ, मौत आ जाती है, विश्राम दे देती है। मौत की बडी अनुकपा है।

काम और लोभ–काम तो सतोष से चला जाता है, लोभ कैसे जाएगा ? सिर्फ सतोष काफी नही है। लोभ का अर्थ है, तुम पकडते हो, तुम्हारी देने की क्षमता खो गई है, तुम बाट नही सकते। और जो आदमी बांट नही सकता, वह अपनी चीजो का मालिक नही है, गुलाम है। जब तुम देते हो, तभी तुम पहली दफा मालिक होते हो। तुमने जो चीजें दे दी, उन्ही के तुम मालिक हो। देने से पहली दफा मालकियत पता चलती है। वही दे सकता है जो मालिक है। जो मालिक ही नही है वह कैसे दे सकता है ? इसलिए कृपण से ज्यादा कुरूप इस जगत मे कोई दूसरा व्यक्तित्व नही है। कृपणता सबसे बडी कुरूपता है–जीवन का सारा सौंदर्य खो जाता है।

कजूस की शकल देखो। उसके जीवन का ढाचा देखो। उसमे तुम्हे कही प्रेम की गध न मिलेगी। क्योकि कजूस प्रेम नही कर सकता, क्योकि प्रेम मे खतरा है–

बाटना पडे, देना पडे। प्रेम मे यह खतरा है कि दूसरा पास आएगा, तो कुछ-न-कुछ ले जाएगा।

मैं एक घर मे रहता था। घर के जो मालिक थे, उनको मैंने कभी नही देखा कि वे अपने बच्चो से बात करते हो या अपनी पत्नी के पास बैठते हो। वे घर मे आ जाते थे तो बच्चे कपते, पत्नी डरती। और पत्नी डरे तो समझो, कोई खास मामला है, क्योकि आमतौर से पत्निया डरती नही हैं। कभी-कभार ऐसा होता है, सौ मे एकाध मौके पर कि पत्नी डरे। पत्नी डरती, नौकर कपते, और उनको मैंने कभी नही देखा कि वे राह से निकलते, तो इधर-उधर देखते हो, बिल्कुल सीधा वे चलते रहते, एकदम चले जाते, तीर की तरह।

मैंने उनसे पूछा कि मामला क्या है? तो उन्होने कहा कि अगर जरा ही हसकर पत्नी से बोलो, कहती है, फलाना गहना ले आओ, यह करो। हसकर बोले कि फसे, तो चेहरा सख्त रखना पडता है। अगर बच्चे की जरा ही पीठ थपथपाओ, वह खीसे मे हाथ डालता है। अगर नौकर की तरफ देख भी लो तो तैयार खडा है कि तनख्वाह बढाओ।

मगर इस आदमी की जिन्दगी सोचो। पैसा तो यह बचा लेगा, और सब खो जाएगा। इसकी जिन्दगी मे कोई सुख का क्षण नही हो सकता। क्योकि जो अपने बच्चे की पीठ थपथपाने मे भी भयभीत होता हो, जो पत्नी के पास बैठकर मुस्कराने से डरता हो, यह आदमी न हुआ, एक तरह का पत्थर हो गया। इसका हृदय धीरे-धीरे धडकना बद हो जाएगा, सिर्फ फेफडा हवा फेंकता रहेगा, हृदय की धडकन खो जाएगी। इसके जीवन मे जो भी सवेदनशील है, वह सब नष्ट हो जाएगा। क्योकि यह डरा हुआ है, यह कजूस है, यह भयभीत है। इसने सपत्ति को सब कुछ मान लिया है। यह सपत्ति की रक्षा करेगा, लेकिन मालिक नहीं है, पहरेदार हो सकता है। मालकियत तो तभी होती है जब तुम बाट पाते हो। और देने की कला सीख लेना इस जगत मे सबसे बडी कला है, क्योकि उसी द्वार से सब कुछ आता है। जो देता है उसे मिलता है, जो लुटाता है उस पर बरसता है।

कबीर ने कहा है, "जैसे कि नाव मे पानी भर जाये, तो तुम क्या करते हो?—दोनो हाथ उलीचिये। ऐसे ही जीवन मे जो तुम्हे मिल जाये, तुम दोनो हाथ उलीचना।"

जीसस ने कहा है, "जो बचाएगा वह खो देगा, और जो खोने को राजी है, उससे कोई भी नही छीन सकता।" ये बडी उलटी बातें हैं। क्योकि, हमे तो लगता है, जितना बचाओगे उतना बचेगा, बांटोगे तो खो जाएगा। लेकिन तब तुम्हे जीवन

के रहस्य की कोई झलक भी तुम्हारे जीवन मे नही पडी। तुम दो और देखो।

दान लोभ के अवरोध को गिराता है, संतोष काम के अवरोध को गिराता है। दान का मतलब इतना ही नहीं कि तुम पैसा किसी को दे दो, दान का मतलब है देने का भाव। एक मुस्कराहट भी दी जा सकती है। कुछ खर्च नही पडता। लेकिन कृपण उससे भी डरता है। क्या खर्च पडता है किसी कि तरफ मुस्कराकर देखने मे? जरा भी खर्च नही है, लेकिन खर्च की सभावना शुरू हो जाती है। डर है, भय है। कृपण ऐसे जीता है जैसे दुश्मनो के बीच मे जी रहा है—सब तरफ दुश्मन हैं, और हर चीज से डरा हुआ है। कृपण भय से कपता रहता है—सब तरफ चोर हैं, डकैत हैं, लुटेरे हैं, सब तरफ बेईमान हैं और सबकी नजर उस पर ही लगी है कि उसकी चीजो को झटक ले, छीन ले।

सिर्फ दानी अभय हो पाता है। और दान का मतलब बहु-आयामी है। राह पर कोई गिर पडा है, तुम हाथ पकडकर उसे उठा लेते हो, तुम अपनी राह चले जाते हो, वह अपने राह चला जाता है लेकिन तुमने थोडी-सी जीवन-ऊर्जा बाटी। तुम एक कुम्हलाये हुए पौधे को देखते हो और एक लोटा पानी लाकर डाल देते हो—तुमने दिया, तुमने जीवन-ऊर्जा बाटी। तुम एक बीमार आदमी के पास जाते हो, एक फूल उसके बिस्तर पर रख आते हो—तुमने जीवन-ऊर्जा बाटी, तुमने जीवन दिया। और बहुत बार ऐसा होता है कि दवा जो काम नही करती, वह किसी मित्र का लाया हुआ एक छोटा-सा फूल कर जाता है। कोई अब भी प्रेम करता है, यह बात जितनी बडी बचानेवाली हो जाती है, कोई दवा नही बचा सकती। और कोई अब भी उत्सुक है। जब कोई मरण के मुह के पास पडा हो, तब किसी का आकर कुशल-क्षेम भी पूछ जाना बडे काम का हो जाता है। फिर शक्ति जग जाती है, आत्म-विश्वास उभर आता है। वह आदमी मौत के खिलाफ पैर टिकाकर खडा हो जाता है कि सबध सब टूट नही गए हैं, अभी भी कुछ खूटिया जीवन मे गडी हैं, कोई प्रतीक्षा करता है, कोई प्रेम करता है।

एक छोटा-सा फूल, एक प्रेम से भरा हुआ शब्द किसी के जीवन की दिशा को क्रान्ति दे देता है, किसी के जीवन को गिरने से बचा लेता है। एक शुभ आशीष प्राणो मे नयी ज्योति भर देता है।

कोई धन ही बाटने की बात नही है। धन तो निकृष्टतम है बाटने मे। जिसके पास कुछ न हो वह धन बाटे।

एक करोडपति एक बार मुझे मिलने आया। बहुत-से रुपये लाकर उसने मेरे पैर पर रख दिये। वह बहुत अनूठा आदमी था। फिर मुझे वैसा दूसरा अनूठा आदमी

पूरे मुल्क मे घूमकर भी नहीं मिला। और बडी हैरानी की बात, वह एक सटोरिया था, जिनको लोग बुरा समझते हैं। जिन्दगी बहुत अनूठी है! यहा कभी-कभी बुरी स्थितियो मे छिपे हुए साधू मिल जाते हैं, और कभी-कभी साधु के वेश मे सिवाय शैतान के और कोई भी नही होता। जिन्दगी बहुत रहस्यपूर्ण है। इसलिए तुम ऊपर से पहचानना मत। जब तक भीतर न पहुचो, तब तक निर्णय मत लेना। उस सटोरिये ने बहुत रुपये लाकर मेरे पैरो पर रख दिये। मैंने कहा कि अभी मुझे जरूरत नही है, जरूरत होगी तब मैं आपसे ले लूगा। सटोरिये की आख से आसू गिरने लगे। उसने कहा, "आप ऐसा कहते हैं, लेकिन तब मेरे पास होगे कि नही! मैं सटोरिया हू—आज है, कल नही है। इसलिए कल का मैं कोई वचन नही दे सकता। मैं सटोरिया हू, मैं तो आज ही जीता हू।' और फिर उसने कहा कि अगर आप इनको इनकार करेंगे, तो आप मुझे बडी पीडा देंगे। मैंने कहा, "क्या मतलब?" उसने कहा कि मैं बहुत गरीब आदमी हू, सिवाय रुपये के मेरे पास कुछ भी नही।

मुझे इससे कीमती शब्द कहनेवाला कोई आदमी फिर नही मिला। उस आदमी ने कहा कि मैं बहुत गरीब आदमी हू! मेरे पास सिवाय रुपये के और कुछ भी नही। और जब आप मेरा रुपया इनकार कर दें तो मुझे इनकार कर दिया, क्योंकि मेरे पास और कुछ भी नही है जो भेंट कर सकू।

तो रुपया तो सबसे गरीब आदमी बाटता है, वह तो आखिरी है, उसकी कोई बहुत कीमत नही है।

कैसे नापोगे एक मुस्कराहट को कि कितने रुपये की है? एक प्रेम का भरा शब्द, कहा तौलोगे कि कितने कैरेट का है?

अमूल्य है तुम्हारे पास देने को। और राज यह है कि तुम जितना देते हो, उतना तुम्हारे पास बढता है। जितना तुम बाटते हो उतना बढता है। जितना तुम बाटते हो उतना नया तुम्हारे भीतर उभरता है। क्योंकि, तुम्हारे भीतर परमात्मा छिपा है। तुम उसे बाट-बाटकर भी बाट न पाओगे। तुम अपने ही हाथ से कृपण हो गये हो। तुम देते जाओगे और तुम पाओगे, ताजा निकलता आता है। तुम जितना दोगे उतना बढेगा।

और जो व्यक्ति देने की कला सीख लेता है, उस व्यक्ति की लोभ की दीवाल जो है, वह गिर जाती है।

लोभ और काम के बीच मे क्रोध है।

क्रोध बडा महत्वपूर्ण है, समझ लेने जैसा है, क्योंकि इन दोनो से ज्यादा जटिल है।

क्रोध क्या है ?

अगर तुम्हारी कामना मे कोई बाधा डाले तो क्रोध आता है, या तुम्हारे लोभ मे कोई बाधा डाले तो क्रोध आता है। कबीर ने ठीक कहा, 'काम, क्रोध और लोभ।' ठीक व्यवस्था से उन्होने शब्द रखे हैं। क्रोध बीच मे है, सेतु है।

कब आता है तुम्हे क्रोध ?

तुम एक स्त्री के प्रेम मे पड गये हो और पत्नी बाधा डालती है—क्रोध आता है। तुम शराबखाने जा रहे हो और बीच मे एक सन्यासी मिल जाता है और शराब के खिलाफ बोलने लगता है और रुकावट डालता है—क्रोध आता है। तुम कृपण हो और एक भिखारी हाथ फैलाकर खडा हो जाता है और चार आदमियो के सामने बडी फजीहत मे डाल देता है—क्रोध आता है। तुमने अक्सर भिखारियो को पैसे क्रोध मे दिये होगे निन्यानवे मौकों पर, तुमने सिर्फ इसलिए दिये होगे कि झझट छूटे, तुमने सिर्फ इसलिए दिये होगे कि चार आदमियो के सामने, लोग क्या सोचेगे, दे दू। इसलिए भिखारी भी बडे कुशल हैं। वे तभी हाथ फैलाते है, जब देखते हैं कि भीड भाड है। अकेले मे अगर तुम मिल गये सडक पर, तो वे अपना जेब बचाकर निकल जाते है। तुमसे पाने की तो आशा नही—तुम और निकाल न लो। अकेले मे भिखारी तुमसे सावधान रहता है कि एकान्त मे ठीक नही, झझट मे पडना उचित नही।

वह हमेशा तुम्हे भीड-बाजार मे, सडक पर पकडता है पैर पकड लेता है, चार आदमियो के साथ जा रहे थे, और फजीहत हुई जाती है। अभी यह इज्जत का सवाल है। भिखारी इज्जत का सवाल खडा कर रहा है। वह यह कह रहा है कि अब दे दो एक पैसा, एक पैसे के पीछे मत बदनामी करवाओ, लोग क्या कहेगे ? तुम देते हो क्रोध मे, और जो क्रोध मे दिया गया वह दिया ही नही गया। क्योकि, दान सिर्फ प्रेम मे है।

अगर तुम्हारे लोभ मे कोई बाधा डालता है तो उस पर क्रोध आता है। अगर तुम्हारे काम मे कोई बाधा डालता है तो उस पर क्रोध आता है। इसलिए तो पुरानी कहावत है जर, जोरू, जमीन। ये उपद्रव के तीन कारण बडे प्राचीन समय से लोग समझते रहे हैं। जर, जोरू, जमीन का मतलब यह है कि या तो धन और या काम, ये दो ही उपद्रव मे उतार देते है, दोनो ही क्रोध का कारण बनते हैं। क्रोध दोनो के बीच मे है। जैसे नदी क्रोध की बहती है और दो किनारे हैं—एक काम का और एक लोभ का। अगर काम और लोभ विसर्जित हो जाये, क्रोध तत्क्षण विलीन हो जाता है।

अब यह बड़े मजे की बात है कि मेरे पास लोग आते है, जो पूछते हैं, क्रोध कैसे मिटे ? मेरे पास कोई आदमी नही आया जिसने पूछा हो कि लोभ कैसे मिटे ? कोई आदमी नही आया अब तक जिसने पूछा हो, काम कैसे मिटे ? रोज आदमी आते हैं जो पूछते है, क्रोध कैसे मिटे ?

क्रोध मिट नही सकता। क्रोध पर सीधा हमला करने का उपाय ही नही है। क्योकि क्रोध बाइप्रॉडक्ट है। वह तो काम और लोभ के बीच मे जीता है।

लोग जब पूछते हैं, क्रोध कैसे मिटे, तो मैं बडी मुश्किल मे पड जाता हू। उनको क्या कहो ? उनको निराश करना भी उचित नही है। कम-से-कम इतना भी पूछने आये हैं, यह भी क्या कम है। लेकिन मैं उनको कहू क्या ? क्योकि अगर उनको कहो कि लोभ मिटाओ, वे नदारद हो जायेंगे, दुबारा कभी वे आएगे ही नही। क्रोध मिटाना चाहते हैं। और क्रोध भी क्यो मिटाना चाहते हैं, ताकि लोभ सुबिधा से कर सके और काम का भोग शान्ति से हो। और कोई कारण नही है क्रोध मिटाने का। कोई परमात्मा को पाने के लिए क्रोध मिटाना चाहते है ऐसा भी नही है। क्रोध से अडचन आती है। कभी-कभी ग्राहक पर क्रोध आ जाता है, पीछे पछतावा होता है। कभी पत्नी पर क्रोध आ जाता है, फिर पीछे पछतावा होता है, क्योकि इससे काम मे और लोभ मे बाधा पडती है। तुम दिन मे पत्नी पर क्रोध कर लो, रात मे वह बदला लेगी—वह तुम्हारे काम मे बाधा डालेगी।

क्रोध से अडचन आती है काम और लोभ मे। इसलिए लाग क्रोध को मिटाना चाहते हैं। लेकिन क्रोध मिटता है तभी जब काम और लोभ विसर्जित होते है, और मिटने का कोई भी उपाय नही है, हो भी नही सकता, क्योकि वह दोनो के मध्य मे जीता है। और जब तक वे दोनो मौजूद है तब तक क्रोध रहेगा ही। यह सोचा भी नही जा सकता कि लोभी क्रोध को कैसे छोड पाएगा। क्योकि जब उसके लोभ मे कोई बाधा डालेगा तो वह क्या करेगा ? क्रोध रक्षा है। और जब उसके काम में कोई बाधा डालेगा तब वह क्या करेगा ?

क्रोध सब अवरोधो को तोडकर काम के विषय तक पहुचने की चेष्टा है। क्रोध तुम्हारे भीतर की आक्रमक हिंसा है, जो रक्षा करती है लोभ की और काम की। लेकिन जब काम और लोभ ही न रहे, रक्षा को कोई न बचा, रक्षक अपने-आप विदा हो जाता है, वह व्यर्थ हो जाता है। उसका कोई प्रयोजन नही रह जाता।

कबीर कहते हैं, 'काम क्रोध अरु लोभ विवर्जित, हरिपद चीन्है साई।' जो व्यक्ति इन तीनो की विवर्जना कर देता है, इन तीन के पार हो जाता है, वही केवल हरिपद को पहचान पाता है। (हरिपद तो तुम्हारे भीतर है। अगर ये तीन न हो तो

तुम कहां होओगे ? अगर लोभ न हो, तो जो तुम्हारे पास है, तुम उसमे न रहोगे । अगर काम न हो, तो जो तुम्हारे पास नही है, उसमे तुम न रहोगे । तब तुम रहोगे कहा ? तब तुम्हारी चेतना कहां आवास करेगी ? कहा होगा तुम्हारा डेरा ? अचानक तुम अपने भीतर खडे हो जाओगे—और कोई जगह न रही जाने की । न पीछे जाने की कोई जगह रही, न आगे जाने की काई जगह रही । यही और अभी, तुम अपने भीतर खडे हो जाओगे । तुम अपने स्वरूप मे लीन हो जाओगे । वही स्वरूप हरिपद है । वही परमात्मा के चरण हैं ।

यह 'हरिपद' शब्द बडा महत्वपूर्ण है । तुम हरि को न पा लोगे इतने जल्दी, लेकिन हरिपद को पा लोगे । तुम्हारे भीतर, तुम्हारे हृदय के अन्तरतम मे परमात्मा के चरण हैं । लेकिन जब चरण पा लिये तो परमात्मा ज्यादा दूर नही । जब चरण पर हाथ पड गये, तब परमात्मा ज्यादा दूर नही । तुम्हारे भीतर उसके पद हैं । उसका पूरा शरीर तो ब्रह्माड है । उसका पूरा शरीर तो यह सारा अस्तित्व है । लेकिन हर हृदय मे उसके पैर हैं । हर हृदय से उसकी तरफ जानेवाला मार्ग है । उसके पैर को पकड लेना ही उसके मार्ग पर चल पडना है ।

पैर पकडने का अर्थ है समर्पण । परमात्मा के पैर तुम्हारे हृदय मे है । उसका अर्थ है कि अगर तुम हृदय मे समर्पित हो जाओ, तो तुमने किरण को पकड लिया—अब सूरज ज्यादा दूर नही, कितने ही दूर हो तो भी ज्यादा दूर नही । जिसने किरण पकड ली उसने सूरज का पैर पकड लिया ।

'काम क्रोध अरु लोभ विवर्जित, हरिपद चीन्है सोई ।'

'राजस तामस सातिग तीन्यू, ये सब तेरी माया । चौथे पद को जे जन चीन्हैं तिनहि परमपद पाया ।।'

सत्व, रज, तम—इन तीन गुणो मे साख्य ने सारे जगत को बाटा है । यह तीन की सख्या महत्वपूर्ण है, क्योकि जिन्होने भी जाना है, नाम उनके अलग-अलग हो, कोई और नाम दे, कोई और, लेकिन उन सभी ने अस्तित्व को तीन हिस्सो में बाटा है । सत्व, रज, तम–ये साख्य के शब्द है । त्रिमूर्ति—ब्रह्मा, विष्णु, महेश—हिंदुओ की सामान्य धारणा है । ट्रिनिटी ईसाइयो का विचार है । और अब वैज्ञानिक कहते हैं कि पदार्थ की आखिरी खोज मे उन्होने तीन को पाया । विश्लेषण के अतिम क्षण मे उन्होने पाया कि इलेक्ट्रॉन, न्यूट्रॉन और पाजिट्रॉन, तीन से सारा अस्तित्व बना है । ऐसा लगता है कि तीन सचाई की खबर है । कही से भी कोई खोजे, एक तक पहुचने के पहले उसने तीन को पाया है । इस आश्रम के लिए जो प्रतीक चुना है—फाउडेशन के लिए—वह इसकी तरफ इशारा है । एक तीन हो जाता है—

ससार शुरू हुआ, मूल गुण शुरू हो गये। तीन नौ हो जाते हैं--ससार भरपूर हो गया, बाजार पूरा भर गया। फिर नौ से वापस एक हो जाता है। ससार को जी लिया, देख लिया, स्रोत की ओर वापस पहुच गये, स्रोत उपलब्ध हो गया। एक से तीन, तीन से नौ, नौ से पुन एक। नौ का मतलब है अनन्त--यह सारा वस्तुओ का जगत। तीन का अर्थ है इस अनन्तता का आधार। और एक, जहा सब माया खो गयी, जहा सब दृश्य विलीन हो गये, जहा केवल द्रष्टा रह गया। वह द्रष्टा एक है। वह चौथा है।

इसलिए कबीर कहते है, 'राजस तामस सातिग तीन्यू'--इन तीनो को ही-- यह सब तेरी माया।'

माया का अर्थ होता है जो दिखाई पडती है और है नही।

पूरब मे हमने तीन विभाजन किये हैं। एक, जो दिखाई नही पडता और है--उसको हम ब्रह्म कहते है। दो, जो दिखाई पडता है और नही है--उसको हम माया कहते है। वह सपने जैसो है। और तीन, वह जो उसे भी देखता है जो माया है, और उसे भी देखता है जो माया नही है--वह द्रष्टा है।

'चौथे पद को जे जन चीन्हैं, तिनहि परमपद पाया।' वही परम अवस्था को उपलब्ध हो जाता है जिसने चौथे का पहचान लिया। तीन को देखते देखते धीरे-धीरे चौथे की पहचान आ जाती है।

ऐसा समझो कि तुम एक नाटक देखने गये हो जब तुम नाटक देखने हो तो तुम बिलकुल ही भूल जाते हो कि तुम भी हो, नाटक ही रह जाता है। सिनेमा-गृह मे बैठे बैठे तुम्हे खयाल ही नही रह जाता कि तुम हो। और अगर तुम्हे बार-बार खयाल आये कि तुम हो, तो तुप समझते हो कि नाटक ढग का नही है--दिल ही न लगा, लीनता ही न बनी, करवटे बदलते रहे कुर्सी पर बैठकर, बार-बार मन होता रहा कि कब खत्म हो, तुम्हे अपनी याद आती रही, बेचैन रहे। नाटक की कुशलता ही यही है कि तुम अपने को बिलकुल भूल जाओ, देखनेवाले को याद भी न रहे कि मैं हू, जो दिखाई पडता है, वही रह जाये। कुशल अभिनेता वही है जो द्रष्टा को बिलकुल ही विस्मृत कर दे, याद ही न रह जाये।

ऐसा कई बार होता है। फिलम तुम देखते हो, वहा कुछ भी नही है परदे पर, सिर्फ धूप-छाया का खेल है, लेकिन कोई घडी आ जाती है कि तुम सिसक-सिसक कर रोने लगते हो। वहा सिर्फ धूप-छाया है। पीछे भी कुछ नही है। एक प्रोजेक्टर लगा है, वह सिर्फ रोशनी फेक रहा है फिलम के माध्यम से। परदे पर भी कुछ नही है, वह तुम भलीभाति जानते हो, क्योकि जब तुम आये थे तो परदा खाली

था। अब सब खेल रच गया है। अब कोई ऐसी घडी आ गई है जहां तुम बिलकुल जार-जार हो जाते हो, रोने लगते हो। तो अच्छा है कि अधेरा रहता है हाल मे। सब अपने अपने रूमाल निकालकर आसू पोछते रहते हैं। अधेरे की वजह से सुविधा होती है, अन्यथा अडचन हो। अधेरा होना जरूरी है, अन्यथा द्रष्टा का खोना मुश्किल हो जाये। अधेरे के कारण द्रष्टा खो जाता है। अधेरे के कारण दृश्य उभरकर दिखाई पडता है।

कभी तुम हसते हो, कभी तुम रोते हो, कभी तुम उदास हो जाते हो, कभी तुम प्रसन्न हो जाते हो—और तुम कभी सोच भी नही रहे कि वहा परदे पर कुछ भी नही है।

तीन का—सत्व, रज तम, या कहो इलेक्ट्रॉन, न्यूट्रॉन प्रोट्रान—यह जो सारा खेल है, जाननेवालो ने जाना है कि यह एक बडा रगमच है, बडा गहन नाटक चल रहा है। तुम देखनवाले हो, पर तुम बिलकुल खो गये हो, क्योकि उसका लिखनेवाला भी परमात्मा है और उसको चलानेवाला भी परमात्मा है। सारा खेल बडी कुशलता से चल रहा है। कुशलता ऐसी है कि तुम्हे बिलकुल भी याद नही रही कि तुम हो। और नाटक साधारण ढग का नही है।

जापान मे एक नाटक होता है, या अभी अमरीका मे एक नया नाटक शुरू हुआ है, वे उसको 'ना-ड्रामा' कहते हैं। उसका नाम ही है 'अ-नाटक।' और वह बढ रहा है जोर से, अमरीका मे फैलेगा, क्योकि उसमे बडा रस है। और उस नाटक की खूबी यह है कि उसका ससार से कुछ सबध है गहरा। नाटक ऐसा है कि उसमे मच नही होता, और दर्शक और अभिनेता अलग अलग नही होते। अभिनेता दर्शको के साथ ही बैठते हैं। फिर नाटक शुरू हो जाता है। उसमे दर्शक भी भाग लेते हैं। तुम्हे बीच मे दिल आ गया, तुम बीच मे पहुच गये, और तुमने कुछ-कुछ कहना शुरू किया। उसकी कहानी पहले से लिखी नही होती, डॉयलॉग बटे नही होते, कोई नही जानता कि क्या होगा। पर उसमे बडा रस है, क्योकि अन-अपेक्षित हो सकता है। उसमे देखनेवाले और नाटक करनेवाले अलग-अलग नही होते। सब उसमे सहभागी होते हैं। और जो लोग उसमे भाग लेते हैं, उनको ज्यादा रस आता है, नाटक देखने के बजाय, क्योकि तुम भी भागीदार हो जाते हो। तुमको अगर रोना ही है तो आखे छिपाकर रोने की जरूरत नही। तुम उठकर बीच मे पहुच जाते हो, दिल खोलकर रोते हो। और तुम पूरे नाटक की धारा बदल देते हो, क्योकि तुम्हारे रोने को भी सभालना पडता है कि अब इनका क्या करो। इनको कुछ कहना पडता है—इनके कहने की वजह से पूरी कथा बदल जाती है, पूरी वार्ता

बदल जाती है कहा अत होगा, कुछ पता नहीं, कहा प्रारभ होगा, कुछ पता नही।

यह नाटक ससार का ठीक प्रतीक है। यहा तुम देखनेवाले अलग नही बैठे हो कुर्सियो पर, और मच पर नाटक नही चल रहा है। मच पर चलता है नाटक, तुम कुर्सी पर बैठे रहते हो। वहा तुम भूल जाते हो, तो यहा तो तुम भूल ही जाओगे। यहा मच ही मच है, यहा कोई अलग नही है। यहा सब ही अभिनेता हैं और सभी देखनेवाले हैं।

भूलना बिलकुल स्वाभाविक है। कुछ बुरा भी नही है कि भूल गये। लेकिन अगर याद आ जाये, अगर याद आ जाये तो जिन दुखो से तुम पीडित हो, चिंताओ से परेशान हो, तनावो से ग्रस्त हो—वे विलीन हो जाते हैं। अगर यह याद आ जाये कि तुम देखनेवाले हो, करनेवाले नही, तब नाटक चलता रहेगा, तुम एक कोने मे बैठ जाओगे और मुस्कराओगे। तुम्हारी दशा वही होगी जो कबीर कहते है, 'गूगे केरी सरकरा, खाये और मुस्काय।' तुम एक कोने मे बैठकर स्वाद लोगे अपना, क्योकि वही मधुरतम है। और तुम हसोगे लोगो पर कि नाहक परेशान हो रहे है, बहुत परेशान हो रहे है। तुम बैठोगे एक कोने मे। यह बैठना ही सन्यास है। इस बैठने का कुल इतना ही मतलब है कि मुझे समझ आना शुरू हो गया कि कर्त्ता होने की कोई जरूरत नही है, मेरा स्वभाव द्रष्टा का है, मैंने तीन के पार चौथे को पहचान लिया है।

चौथा है तुम्हारे भीतर देखनेवाला। इसलिए समस्त ध्यान-पद्धतिया चौथे को जगाने की पद्धतिया है कैसे तुम जागरूक बनो, कैसे तुम ज्यादा-से-ज्यादा होश से भर जाओ, कैसे तुम्हारी मूर्च्छा और तन्द्रा टूटे, कैसे तुम दृश्य से हटो और द्रष्टा मे थिर हो जाओ।

'चौथे पद को जे जन चीन्हैं, तिनहि परमपद पाया।'

'अस्तुति निन्दा आसा छाडै, तजै मान अभिमाना।' फिर न तो कोई प्रशसा का सवाल है, न कोई निन्दा का, न कोई आशा का, न कोई अपेक्षा का। जैसे ही तुम्हे द्रष्टा का बोध होना शुरू हुआ, स्तुति और निन्दा व्यर्थ हो गई। क्योकि स्तुति और निन्दा तो अभिनेता की अपेक्षा है। अभिनेता चाहता है कि तुम ताली बजाओ, स्तुति करो। अभिनेता चाहता है कि लोग निन्दा न करे, क्योकि अभिनेता का सारा रस इसमे है कि लोग क्या कहते हैं।

अभिनेता का अर्थ है कि कर्त्ता मे इतना ज्यादा तादात्म्य कर लिया है उसने कि उसके द्रष्टा का उसे कुछ पता ही नही है। वह चाहता है कि लोग क्या कहते हैं। गध उसके भीतर है—'कस्तूरी कुडल बसै', लेकिन उसकी भनक दूसरो की आखो

मे देखना चाहता है। लोग प्रशसा करे तो वह प्रसन्न है, लोग निन्दा करे तो वह दुखी है। लेकिन जिसने द्रष्टा को पा लिया, उसके लिए न तो कोई अब स्तुति है, न कोई निन्दा है। तुम उसकी निन्दा करो तो वह दुखी नही, तुम स्तुति करो तो वह प्रसन्न नही। तुम फूल-मालाये चढाओ तो तुम उसके सुख को बढाते नही, तुम उस पर गालियो की बौछार करो, तो तुम उसके सुख को घटाते नही। तुम क्या करते हो, इससे अब उसको कोई सबध न रहा। जब तक वह खुद कर्त्ता था तब तक तुम्हारे करने से सबध था, अब वह द्रष्टा हो गया है, अब तो तुम्हारे द्रष्टा से ही सबध हो सकता है, तुम्हारे कर्त्ता से कोई सबध नहीं हो सकता। क्योकि हम जैसे होते हैं, वैसा ही हमारा सबध होता है। वह तुम्हारे कर्तृत्व के जगत से हट गया, पार हो गया। और ऐसे व्यक्ति की अब कोई आशा-अपेक्षा नही है, कोई भविष्य नही है। वह परमात्मा से भी कुछ नहीं मागता, उसकी माग ही जाती रही। और वह अब कोई आशा भी नही करता कि कल कुछ बडा होनेवाला है। सब बडा जो हो सकता था, वह अभी हो रहा है, जो भी हो सकता है, वह हो ही रहा है। ऐसा नही है कि ऐसा आदमी निराश हो जाता है, निराश तो वे ही लोग होते है जिनकी आशा है।

इस फर्क को ठीक से समझ लेना, क्योकि पश्चिम मे ऐसी बहुत-सी धारणाए हैं कि पूरब के लोग इस तरह के ज्ञान की बातो मे उलझकर निराश हो गये, पैसिमिस्ट हो गये। नही, निराश तो वही हो सकता है जिसकी आशा है। जिसकी कोई आशा ही नही, उसको तुम निराश कैसे करोगे? उसकी प्रफुल्लता अक्षुण्ण रहेगी। उसकी प्रफुल्लता भिन्न होगी उस आदमी से जो आशा मे जीता है। और उसके आनद मे एक तरह की उदासीनता होगी, लेकिन हताशा नही।

थोडा बारीक भेद है।

एक आदमी उदास बैठा है, क्योकि जुए मे हार गया है--बडी आशा लगाई थी, कि लॉटरी हार गया--बडी आशा बाधी थी--उदास बैठा है। और एक व्यक्ति द्रष्टा को उपलब्ध हो गया है, वह भी उसी के पास बैठा है, वह भी एक तरह से उदास दिखाई पडगा, उसका भी कोई रस ससार मे नही दिखाई पडेगा। लेकिन दोनो की उदासी मे बडा फर्क है। पहले की उदासी कामना की उदासी है। दूसरे की उदासी निष्काम भाव की शान्ति है। उसमे उत्तेजना नही है, इसलिए उदासी मालूम होती है। वह कही भाग नही रहा है, इसलिए शाति से बैठा है।

बुद्ध बैठे हैं, महावीर बैठे हैं--उनके बैठने मे भी तुम्हे उदासी दिखाई पड सकती है, क्योकि वे कही जा नही रहे हैं, सब जाना बद हो गया। अब वे इतने शात हैं

कि तुम उनकी शान्ति को भी न पहचान सकोगे। उनकी शान्ति बडी गहन है। उस गहनता के कारण उदास मालूम पडती हैं।

तुमने कभी गहरा जल देखा है नदी का? जब नदी का जल बहुत गहरा होता है तो उदास मालूम पडता है। जब नदी छिछली होती है और ककड-पत्थरो पर से और चट्टानो पर से नदी की धार दौडती है, तो बडी प्रफुल्ल मालूम होती है, बडा शोरगुल मचाती है, लेकिन शोरगुल हमेशा ही उथलेपन का सबूत है। जहा नदी सच मे गहरी होती है, वहा जल नीला हो जाता है, लहर का भी पता नही चलता। नदी इतनी मन्थर गति से चलती है कि तुम्हे पता भी नही चलता कि कोई गति है। वहा नदी उदास मालूम पडेगी, लगेगा कि कोई गति नही, कोई नाच नही। जब भी कोई चीज बहुत गहन हो जाती है तो गीत भी बाधा मालूम पडता है। जब कोई चीज बहुत गहन हो जाती है तो शोरगुल क्या?

ज्ञानियो ने कहा है कि घडा जब अधभरा होता है तब आवाज होती है, जब पूरा भर जाता है तो सब आवाज खो जाती है। आधा भरा घडा आवाज करता है। छिछलापन आवाज करता है।

इसलिए ज्ञानी मे एक तरह की उदासी तुम्हे दिखाई पडेगी, जो उदासी नही है, जो उसकी बडी गहन अनुभूति के कारण सघन हो गई शाति है। वह इतना गहरा चला गया है कि सतह पर तुम्हे वह उदास मालूम पडेगा। उसका होना अब केन्द्र पर है, परिधि पर नही।

'अस्तुति निन्दा आसा छाडै, तजै मान अभिमाना।

ऐसी दशा में मान-अभिमान सब छूट जाते हैं।

मान और अभिमान मे क्या फर्क है?

अभिमान को पहचान लेना बहुत आसान है, मान जरा सूक्ष्म बात है। अभिमान फूल जैसा है, मान सुगध जैसा। मान को पकडने के लिए बडी गहरी आख चाहिए। अभिमान बहुत साधारण है, जड है, स्थूल है, मान बहुत सूक्ष्म है।

ऐसा हुआ, एक रास्ते पर तीन ईसाई फकीर मिले—अलग-अलग आश्रमो मे रहनेवाले। एक ने अपने आश्रम की प्रशसा मे कहा कि इस बात को तो तुम्हे भी स्वीकार करना पडेगा कि जैसे पडित हमारे आश्रम मे पैदा हुए हैं, वैसे पडित तुम्हारे आश्रमो मे पैदा नही हुए और जैसे शास्त्र हमारे आश्रम के सन्यासियो ने लिखे है और जैसी महान टीकाए की है, वैसा तुम्हारे आश्रम मे कुछ भी नही हुआ। उन दोनो ने कहा, "यह बात सच है। इसे तो तुम्हारे दुश्मन भी स्वीकार करेगे। हम भी स्वीकार करते है।" दूसरे ने कहा, "लेकिन इस बात को तुम्हे भी स्वीकार करना पडेगा

कि जैसे त्यागी, जैसे महान तपस्वी, हमने पैदा किये, वैसे तुम्हारे आश्रम में पैदा नहीं हुए, पडित जरूर हुए हैं, लेकिन त्यागी नहीं।"

बाकी दो ने स्वीकार किया कि यह बात सच है और इनकार नहीं की जा सकती। फिर दोनो ने तीसरे से पूछा कि तुम्हारे सबध मे क्या कहना है, क्योकि तुम्हारे सबध मे कुछ भी नही सुना गया—तुम्हारे आश्रम के न पडितो की कोई वहा से खबर आई, न कभी बडे महात्यागियो की खबर आई।

उस तीसरे ने कहा कि अगर तुम हमारी ही पूछते हो तो हमने ऐसे विनम्र आदमी पैदा किये हैं कि जिनको न पाडित्य का अभिमान है, और न जिन्हे त्याग का अभिमान है। वी आर टॉप इन ह्यूमिलिटी—हमारा कोई मुकाबला नही विनम्रता मे। वहा हम शिखर पर हैं।

यह मान है। बाकी दो अभिमानी हैं। यह बडा सूक्ष्म है।

अहकारी आदमी अभिमानी है। निरहकार का जो दावा कर रहा है, वह मानी है। जिसके पास धन है, वह अकड से चल रहा है सडक पर, समझ मे आता है—यह अभिमान है। फिर यही आदमी कल लात मार देता है धन को, त्यागी हो जाता है, फिर अकड से चलता है सडक पर, क्योकि यह कहता है कि याद है, लाखो पर लात मार दी! अब यह मान है। यह सूक्ष्म है।

ससारी अभिमानी होता है, साधू, संन्यासी, त्यागी, मुनि मानी हो जाते हैं। उनकी चाल मे तुम्हे मान दिखाई पडेगा। यह बडा सूक्ष्म है।

देखते हो सन्यासी को चलते हुए! उसके पास कुछ नही है, इसकी अकड है—सब छोड दिया, सब लात मार दिया! उसकी आखो मे एक झलक है कि 'तुम क्षुद्र मे उलझे हो, हम परमात्मा के खोजी हैं! तुम लोभी, कामी, क्रोधी, हम ध्यानी हैं!'

यह मान है। और अगर मान है तो अभिमान छिपा है, कही गया नही, थोडा भीतर सरक गया है, और गहरे मे चला गया है, जहर सूक्ष्म हो गया है। और जहर जितना सूक्ष्म हो जाता है उतना खतरनाक हो जाता है। इसलिए मैं अक्सर पाता हू कि सासारिक व्यक्ति को तो उसके अहकार के प्रति जगाना आसान है, तुम्हारे तथाकथित धार्मिको को उनके अहकार के प्रति जगाना बहुत कठिन है। वह इतना सूक्ष्म है कि उनको खुद भी पकड मे नही आता। उनको खयाल मे नही है कि विनम्रता भी अहकार हो सकती है।

जहा दावा है वहां अहकार है।

कबीर कहते हैं, जिसने द्रष्टा को जाना, वह—'तजै मान अभिमाना।'

'लोहा कचन सम करि देखै'—अब उसे लोहा और सोना समान ही दिखाई पडते

हैं। 'ते मूरति भगवाना'—और ऐसा व्यक्ति स्वय भगवान की मूर्ति हो जाता है। उसका द्वैत मिट गया, अच्छे-बुरे मे फासला न रहा, सपत्ति-विपत्ति मे भेद न रहा, मिट्टी-सोना बराबर हो गए। 'ते मूरति भगवाना।'

'च्यतै तो माधो च्यतामणि'—अगर वह सोचता है कभी, विचार करता है, तो परमात्मा का।

परमात्मा का कैसे विचार करोगे? न तो उसका कोई नाम है, न उसका कोई रूप है—इसलिए परमात्मा के विचार का अर्थ ही निर्विचार हो जाना होता है। क्योंकि परमात्मा का कैसे विचार करोगे? परमात्मा का विचार करते-करते ही अचानक आदमी को समझ मे आता है कि विचार हो ही नही सकता, यहा तो सिर्फ निर्विचार होने का उपाय है। निर्विचार है परमात्मा का विचार।

'च्यतै तो माधो च्यतामणि'—अगर वह सोचता है कभी तो सोचने के जगत मे जो चिंतामणि है, जो आखिरी बात है, वह माधव की, परमात्मा की याद करता है।

'हरिपद रमै उदासा' और अगर रमता है कही तो परमात्मा के चरणो मे रमता है, लेकिन उसके रमण मे उदासी है। इसी उदासी की मैं बात कर रहा था। ससार को लगेगा, यह आदमी उदासीन हो गया, और वह रम रहा है परमात्मा के चरणो मे।

'हरिपद रमै उदासा'—ऐसे भीतर उतर जाता है कि बाहर से लगता है कि मौजूद ही न रहा, वह अनुपस्थित हो गया—उदास लगने लगता है।

वह उदासी भ्राति है। लेकिन उस उदासी के कारण पूरा उपद्रव पैदा हुआ। कई लोगो ने समझा कि उदास होने से हरिपद मिल जाएगा। वे उदास बैठ गए। इस-लिए उदासियो के सप्रदाय हैं। उदासी सप्रदाय है। वे उदास होना सिखाते हैं। बैठे हैं बिना नहाये-धोये, मक्खिया उड रही हैं उनके पास। मक्खियो को भी नही उडा रहे हैं, क्योंकि उदास आदमी हैं, क्या करे! हारे, थके-हारे, हताश बैठे है। यह तो मरना हो गया। यह कोई जिन्दगी न हुई। और इसमे कोई हरिपद मिलेगा, इस भ्राति मे मत पडना। लेकिन अक्सर धर्म के मार्ग पर यह कठिनाई होती है, क्योंकि लोग बाहर से पकडते है।

जिन्होने हरिपद पाया, उनके जीवन मे एक उदासी आती है। उदासी गहराई से आती है। उनके चेहरे पर एक गहनता आ जाती है। वे गहरी नदी की भाति हो जाते हैं, चहल-पहल खो जाती है, गति विलीन हो जाती है। वे ज्यादा से ज्यादा अपने मे रमने लगते हैं। भीतर इतना आनद है कि सारी जीवन-धारा भीतर की तरफ मुड जाती है, बाहर कोई बचता ही नही।

तो ऐसा भी हो सकता है कभी कि ऐसा व्यक्ति, जो नहीं जानते, उनको उदास मालूम पड़े। लेकिन वह परम आनंद में लीन है, वह हरिपद मे रमा है।

तो फिर कठिनाई है, दूसरे लोग सोचकर कि उदास होने से हरिपद मिल गया इस आदमी को, हम भी बैठ जायें, उदास होकर। उदास बैठने से हरिपद नही मिलता, हरिपद मिलने से बाहर के जगत मे उदासी हो जाती है। हो ही जाएगी। जिसको हीरे मिल गए, वह ककड-पत्थर के प्रति उदास हो जाता है। वह ककड-पत्थरो को किसलिए सम्हाले फिरेगा, किसलिए ध्यान देगा? कल तक सम्हालता था, क्योंकि हीरो का उसे पता न था। अब हीरे मिल गये, ककड-पत्थर के प्रति उदासी हो गई। अब रस परमात्मा मे लग गया तो ससार से विरस हो गया। यह स्वाभाविक है।

लेकिन इससे उलटी बात नही होती कि तुम ससार मे विरस हो जाओ तो परमात्मा मे रस मिल जाये, कि तुम ककड-पत्थर छोड दो तो हीरे मिल जाये। हीरे मिल जायें तो ककड-पत्थर छूट जाते है। लेकिन ककड-पत्थर छोडने से कैसे हीरे मिल जाएगे? ककड-पत्थर छोडने से हीरे मिलने का क्या सबध है? हीरे मिल जाये तो ककड-पत्थर की याद भूल जाती है।

'हरिपद रमै उदासा।'—बात खत्म हुई। ककड-पत्थर भूल गए।

छोटा बच्चा खेल रहा है अपने खिलौनो से। तुम और कीमती खिलौने ले आये, शानदार खिलौना ले आये—चलनेवाला गुड्डा ले आये कि दौडनेवाली रेलगाडी ले आये—वह फेक देता है अपने पुराने खिलौनो को बाहर। कल इन्ही पर लडता, झगडता, अब इनकी कोई फिक्र नही करता, चीर फाडकर अलग कर देता है, टाग तोडकर भीतर देख लेता है कि क्या है—निपटारा कर दिया, अब अपने नये खिलौने मे लग गया। लेकिन तुम अगर सोचते हो कि यह पुराने खिलौने छोड दे, फेक दे, तो इसको नये खिलौने मिल जाएगे—इसकी कोई आवश्यकता नही है, अनिवार्यता नही है।

ससार छोडने से नही परमात्मा मिलता, परमात्मा मिलनेसे ससार छूट जाता है। क्षुद्र छूट जाता है विराट की झलक आने से।

तो बहुत लोग हैं जो उदास बैठे हैं। ये सिर्फ बीमार तरह के लोग हैं-सुस्त, काहिल। बुद्ध के बैठने मे सुस्ती नही है, आलस्य नही है, काहिलता नही है। वासना चली गई, दौड चली गई; लेकिन ऊर्जा परिपूर्ण है। फिर अनेक बुद्धू है, वे बैठे हैं। वे सिर्फ सुस्त हैं। वे काहिल है, चलने तक की हिम्मत नही है, इच्छा नही है, उठने की भी नही—कोई भी नही।

उनकी हालत वैसी है कि मैंने सुना है, दो आदमी एक वृक्ष के नीचे लेटे हुए थे। जामुन का वृक्ष था और एक पक्की जामुन गिरी। तो एक आदमी ने कहा कि भाई बिलकुल मेरे पास पडी है, तू जरा इसे उठाकर मेरे मुह मे डाल दे। उसने कहा, "छोडो भी! तुम भी कोई साथी हो, कुत्ता मेरे कान मे मूतता रहा और तुमने उसे नही भगाया।"

ऐसे लोग उदासी हो जाते हैं, ऊर्जा नही है, मरे-मरे जी रहे हैं। अगर ये बैठ जाएगे तो क्या परमात्मा मिल जाएगा? परमात्मा मिलता है विराट ऊर्जा से। जब तुम्हारी वासना सब तरफ से छूट जाती है—काम से, लोभ से, क्रोध से—तुम्हारे पास विराट शक्ति होती है। क्योकि, इनमे ही तुम्हारी शक्ति व्यय हो रही है। उसी शक्ति के पखो पर चढकर तुम परमात्मा की यात्रा करते हो।

परमात्मा कोई सुस्ती से नही मिलता। वह कोई आलस्य और प्रमाद की घटना नही है। वह कोई बिस्तर मे पडे रहने से नही मिल जायेगा। अगर ऐसे वह मिलता होता तो काहिलो ने उसे कभी का पा लिया होता।

'ध्यावै तो माधो च्यतामणि, हरिपद रमै उदासा।'

वह रमण है, वह परमात्मा के साथ रमण है। वह उसके आनद-उत्सव मे लीन हो जाता है।

वह ऐसे ही है कि जैसे तुम खाना खाने बैठे थे, रूखी-सूखी रोटी थी और महल का निमत्रण आ गया—तुमने थाली फेंक दी, तुमने कहा, बस काफी हुआ। तुम भागे महल की तरफ!

परमात्मा का निमन्त्रण जब सुनाई पडता है, तुम्हारी ऊर्जा सारे ससार से हटकर भीतर की तरफ बहने लगती है—अन्तर्गमन शुरू होता है। इसलिए बाहर से तुम कभी-कभी उदास दिखाई पड सकते हो। वह उदासी नही है।

'त्रिस्ना अरु अभिमान रहित ह्वै, कहै कबीर सो दासा॥'

और ऐसे क्षण मे जब कोई परमात्मा मे लीन हो जाता है तो तृष्णा, अभिमान कैसे बच सकते हैं? जिसने परमात्मा की जरा-सी झलक पा ली, उसके मन मे कोई भी तृष्णा कैसे बच सकती है। जिसने सब पा लिया, पाने को ही कुछ न बचा. ।

परमात्मा से ज्यादा पाने को कुछ है भी नही।

इसे थोडा समझ ले, क्योकि कबीर पहले कहते हैं कि कामना छूटे, जब कामना छूट जाये तो परमात्मा की झलक मिलती है। जब परमात्मा की झलक मिलती है, तब तृष्णा छूटती है। आमतौर से शब्दकोश में लिखा है कि कामना और तृष्णा का एक ही अर्थ है। वह नही है, जीवन के अर्थकोश मे भिन्न है।

तृष्णा बहुत सूक्ष्म है, तुम्हारे कुछ करने से न मिटेगी। तुम तृष्णा को न मिटा पाओगे। तुम कामना को मिटा सकते हो, वह स्थूल है। लेकिन सूक्ष्म अन्तरतलों मे तृष्णा बाकी रहेगी। तृष्णा का मतलब यह है कि कामना मिट जाएगी, लेकिन कामना मिटाकर भी तुम इस कामना के मिटने से कुछ पाने की बाट जोहते रहोगे—मोक्ष मिल जाये, परमात्मा मिल जाये। कही सूक्ष्म-से-सूक्ष्म तुम्हारे प्राणो मे एक तरग उठती ही रहेगी कि देखो, अब कामना छोड दी, अब क्या मिलता है! और ज्ञानियो ने कहा है, कामना छोड दो, सब मिल जायेगा—अब जल्दी ही सब मिलने के करीब है! यह तृष्णा है।

कामना-रहित होकर भी जो बची रहती है कामना, उसका नाम तृष्णा है। सब चाह मिटकर भी भीतर एक चाह की छाया बनी रहती है, उसका नाम तृष्णा है।

लोग मुझसे पूछते हैं कि ठीक, आप कहते हैं सब चाह छोड दो, फिर क्या मिलेगा? या तो वे मुझे नहीं समझे कि मैं क्या कह रहा हू—सब चाह छोड दो, सब मे यह चाह भी आ गई। नही आई? वे समझ गये मेरी बात, लेकिन वे भी क्या करे, तृष्णा बहुत सूक्ष्म है। वह नही आई सब चाह मे। शब्द सुन लिया उन्होने। उनकी भी समझ मे आ रहा है कि मैं कह रहा हू कि सब चाह छोड दो। वे कहते है, सब चाह छोडकर क्या मिलेगा? ठीक है, आप कहते है कि वासना-रहित हो जाओ, फिर? वह जो 'फिर' है, वह तृष्णा है। वह आखिरी सूक्ष्मतम बीज है। वह निर्विचार की दशा तक, पतजलि कहते हैं, वह बना रहेगा। निर्विचार समाधि मे भी तृष्णा का बीज बना रहेगा। और जब तृष्णा का बीज जलेगा तभी निर्बीज समाधि, अतिम समाधि उपलब्ध होगी।

कामना छोडी जा सकती है—स्थूल है, बाहर की है। छोडो! जब तुम सब छोड दोगे, कुछ छोडने को न बचेगा, सिर्फ एक भाव का कम्पन रह जायेगा कि सब छोड दिया, अब? यह तृष्णा है।

कामना छोडने से परमात्मा की झलक मिलेगी, परमात्मा की झलक मिलने से तृष्णा छूटेगी।

और वैसा ही अभिमान छोड दोगे, लेकिन फिर भी 'मैं हू' यह भाव तो रहेगा। अभिमान छोड दोगे, मान छोड दोगे, 'मैं कौन हू,' यह भाव छोड दोगे, लेकिन 'मैं हू' यह भाव तो बना ही रहेगा। जब परमात्मा की झलक मिलेगी तो यह भाव भी मिटेगा। अहकार को तुम छोड दोगे, आत्मा का भाव बना रहेगा, और जब परमात्मा की झलक मिलेगी तो आत्मा का भाव भी मिट जाएगा। तब बूद पूरी तरह सागर में लीन हो गई।

'त्रिस्ना अरु अभिमान रहित ह्वै, कहै कबीर सो दासा ॥' कबीर कहते हैं, वही दास है; वही परमात्मा के चरणो को उपलब्ध हो गया ।

यात्रा कठिन है । दस चलते हैं, एक पहुंच पाता है । तुम उस एक बनने की कोशिश करना । नौ बनना बहुत आसान है । तुम एक बनने की कोशिश करना । और अगर स्मरणपूर्वक चलो तो कोई कारण नही है कि तुम क्यो न होओ वह एक जो पहुच जाता है । तुम भी वह एक हो सकते हो—पूरी सम्भावना है, होशपूर्वक चलने की बात है । पच्चीस निमन्त्रण मिलेगे बीच मे यहा-वहा जाने के, तुम इनकार कर देना । तुम अपना ध्यान एक ही बात पर रखना कि हरिपद तक पहुच जाना है ।

और आखिरी बात तुमसे आज के पद मे कहू—तुम्हे हरिपद तक पहुचना है, फिर तो हरि खुद ही तुम्हे छाती से लगा लेते हैं । उसके आगे तुम्हे नहीं पहुचना है—बात खत्म हो गई, तुम्हारी यात्रा पूरी हो गई । तुम जो कर सकते थे, कर दिया । इससे ज्यादा तुमसे अपेक्षा भी नहीं हो सकती ।

इसलिए कबीर कहते हैं कि हरि का दास हो जाने तक ही यात्रा है—'कहै कबीर सो दासा ।' इसके बाद तुम्हे फिर फिक्र करने की बात नही है, अब जिम्मा उसका है । और जिसने उसके चरणो तक पहुचने की यात्रा की, वह निश्चित ही उठा-कर आलिंगन कर लिया जाएगा । वह परमात्मा के हृदय मे लीन हो जाएगा ।

पद तक तुम पहुचो, हृदय तक परमात्मा तुम्हे उठा लेगा । आधी यात्रा तुम करो, आधी वह करेगा ।

और स्मरण रखना कि परमात्मा कोई निष्क्रिय तत्त्व नही है । तुम अगर उसकी तरफ चलते हो, तो वह भी तुम्हारी तरफ चलता है—कही बीच मे मिलन हो जाता है । तुम नही चलते, वह भी नही चलता है । तुम जब पुकारते हो तो पुकार सुनी जाती है । जब तुम प्रार्थना से भरते हो तो प्रार्थना भी सुनी जाती है । तुम जब सचमुच ही अभीप्सा से भर जाते हो तो परमात्मा भी तुम्हारे प्रति इतनी ही अभीप्सा से भर जाता है ।

परमात्मा कोई निष्क्रिय तत्त्व नही है कि तुम्हीं को ही यात्रा करनी है । अगर ऐसा होता तो जिन्दगी बडी आखिरी अर्थों मे उदास होती ।

परमात्मा प्रेमी है । जब तुम प्रेम से भरकर उसकी तरफ चलते हो, वह तुम्हारी तरफ चलना शुरू कर देता है । बहुत पुरानी कहावत है चीन मे कि 'तुम एक कदम चलो, वह हजार कदम चलता है ।'

बस, हरि के पद तक तुम पहुच जाओ । और तुम पहुच सकते हो, क्योंकि दूर नही है पद, तुम्हारे हृदय मे विराजमान है । और कई बार तुम्हे उसकी झलक

भी पड़ी है, लेकिन सदा तुमने बाहर समझा कि कहीं बाहर से आवाज आ रही है। आवाज भीतर से आ रही है। आनन्द का झरना भीतर से बह रहा है।

'कस्तूरी कुंडल बसै।'

★ ★ ★

धर्म कला है—मृत्यु की, अमृत की

दूसरा प्रवचन

दिनांक १२ मार्च, १९७५, प्रातःकाल, श्री रजनीश आश्रम, पूना

जग सू प्रीत न कीजिए, समझि मन मेरा ।
स्वाद हेत लपटाइए, को निकसै सूरा ॥

एक कनक अरु कामिनी जग में दोइ फंदा ।
इन पै जो न बंधावई ताका मैं बंदा ॥

देह धरैं इन मांहि बास कहु कैसे छूटै ।
सीव भए ते ऊबरे जीवत ते लूटै ॥

एक एक सू मिलि रह्या तिनही सचु पाया ।
प्रेम मगन लौलीन मन सो बहुरि न आया ॥

कहै कबीर निहचल भया, निरभै पद पाया ।
ससा ता दिन का गया, सतगुरु समझाया ॥

कबीर के वचनो के पूर्व कुछ बात समझ ले।

पहली बात ससार, जिसे छोडने को सारे सन कहते रहे हैं, बाहर नही है, जिसे छाडकर कोई भाग जा सके। ससार मन का ही खेल है, और भीतर है। और बाहर तुम कितने ही भागो, कोई फर्क न पडेगा, क्योकि ससार तुम अपना अपने भीतर ही लिये फिरते हो।

ससार जीवन को देखने का तुम्हारा ढग है। ज्ञानी यही पत्थरो मे छिपे परमात्मा को देख लेता है, तुम चारो तरफ मौजूद परमात्मा मे केवल पत्थर को देख पाते हो। देखने की बात है। दृष्टि की ही सारी बात है। तुम वही देखते हो, जो तुम्हारे मन की धारणाये हैं। तुम वही नही देखते, जो है।

पूर्णिमा की रात हो और तुम उदास हो, तो नाचता-गाता चांद भी उदास मालूम पडता है। अमावस की रात हो, आकाश मे बादल घिरे हो, सब उदास और खिन्न मालूम पडता हो, लेकिन तुम प्रसन्न हो, तुम आनदमग्न हो, तो अमावस भी पूर्णिमा मालूम पडती है, अधेरा भी ज्योतिर्मय हो जाता है, आकाश मे बादलो की गडगडाहट सुमधुर नाद मालूम होती है।

तुम जो हो, उसे ही तुम फैलाकर बाहर देखते हो!

धन में कुछ भी नही है, तुम्हारे मन मे ही सब छिपा है। तुम्हारा मन जब लोभ से भरा हो, तो ससार मे सब जगह तुम्हे धन-ही-धन दिखाई पडता है—ऐसे ही जैसे उपवास किया हो तुमने किसी दिन और तुम बाजार गए, तो कपडे की दुकाने, जूते की दुकानें उस दिन दिखाई नही पडती, उस दिन सिर्फ मिठाई-मिष्ठान्न के भडार दिखाई पडते हैं, सब तरफ से भोजन की ही गध मालूम पडती है, सब ओर भोजन का ही निमत्रण दिखाई पडता है। तुम भरे पेट हो, तब यही बाजार बदल जाता है।

तुम जैसे हो, वैसा ही तुम अपने चारो तरफ एक ससार निर्मित करते हो। इसलिए ससार एक नही है, ससार उतने ही है, जितने मन हैं। हर व्यक्ति का अपना

ससार है, जो अपने चारो तरफ लपेटे हुए घूमता है। और जब तक तुम यह न समझोगे, तब तक तुम कभी भी सन्यासी न हो सकोगे। क्योकि तुम उस ससार को छोडोगे, जो बाहर है, और तुम उस ससार को पकडे ही रहोगे, जो भीतर है। और बाहर ससार है ही नही, बस भीतर है। तो तुम सन्यासी का ससार बना लोगे, कोई भेद न पडेगा। हिमालय की गुफा मे भी बैठ जाओगे, तो तुम तुम ही रहोगे। और तुम अगर तुम ही हो, तो गुफा क्या करेगी, पहाड पर्वत क्या करेगे? तुम वहा भी धीरे-धीरे अपनी दुनिया फिर से सजा लोगे। तुम्हारे भीतर ब्लू-प्रिन्ट है, नक्शा छिपा है कि कैसे ससार बनाना है। उस ससार को बनाने के लिए अगर कोई भी सामग्री न हो, तो भी तुम बना लोगे।

मनस्विद् कहते हैं कि अगर एक व्यक्ति को सारी ससार की दौडधूप से अलग कर लिया जाये, और एक ऐसी कालकोठरी मे रख दिया जाये, जहा सब तरह की सुविधाए हैं, कोई असुविधा नही है, भोजन करने के लिए भी उसे कुछ न करना पडे, नलिया जुडी हुई हैं, जिनसे उसके रक्त मे सीधा भोजन पहुच जाये—इस तरह के प्रयोग किये गये हैं—और जितनी सुविधापूर्ण हो सके, उतनी सुविधापूर्ण शय्या पर वह विश्राम करता रहे, तो वे कहते हैं कि तीन दिन के बाद वह अपना ससार बनाना शुरू कर देता है। अब कल्पना मे बनाता है, क्योकि बाहर तो कुछ भी नही है, सिर्फ अध-कार से भरी हुई कोठरी है। धीरे-धीरे उसके ओठ चलने लगते है। वह बात करने लगता है उससे, जो मौजूद नही है। सुन्दर स्त्रिया उसे घेर लेती हैं। धन के आकडे वह खडे करने लगता है। तीन सप्ताह मे वह आदमी पागल हो जाता है।

पागल का कुल इतना ही मतलब है कि जिसने अपने ससार को बनाने के लिए अब किसी भी पदार्थ की जरूरत नही समझी, अब बिना किसी कारण के भी वह ससार खडा कर लेता है। स्त्री बाहर हो तो ठीक, न हो तो ठीक—अब परदे की कोई जरूरत ही नही है; बिना परदे के वह स्त्री को बना लेता है। पागल का इतना ही मतलब है कि वह तुमसे भी ज्यादा कुशल हो गया है। तुम्हे स्त्री मे रस लेने के लिए कम-से-कम कुछ सहारा चाहिए, बाहर कोई स्त्री चाहिए, वह बिल-कुल सहारे से मुक्त है, उसे कोई स्त्री बाहर नही चाहिए। वह अपने ही भीतर के मन से प्रगाढ प्रतिमाए खडी कर लेता है।

तुमने ऋषि-मुनियो की कहानिया पढी हैं कि इन्द्र अप्सराओ को भेजता है उन्हे डिगाने को। तुम इस भ्राति में मत पडना। न तो कही कोई इन्द्र है, और न कही कोई परमात्मा ने ऋषि-मुनियो को डिगाने का इन्तजाम कर रखा है। क्यो करेगा परमात्मा किसी को डिगाने का इन्तजाम? परमात्मा तो चाहता है कि तुम थिर हो

जाओ। तो कोई भी डिपार्टमेंट नही है, जहा ऋषि-मुनियो को हिलाने की कोशिश की जा रही है। ऋषि-मुनि खुद ही हिल रहे हैं। ऋषि-मुनि उसी अवस्था मे हैं, जिसकी मनोवैज्ञानिक चर्चा कर रहे हैं। उन्होंने खुद ही अपने चारो तरफ सब ससार बाहर का छोड दिया है, अपनी गुफा मे बैठ गए हैं, अब धीरे-धीरे मन खेल पैदा कर रहा है। अब कोई जरूरत ही नही है। अब बाहर की स्त्री नही चाहिए, जिस पर तुम प्रक्षेपण करो, अब शून्य आकाश मे भी तुम्हारा प्रक्षेपण होने लगा। अब तुम अप्सराओ को देख रहे हो! धन के अम्बार लगे हैं! तुम सोचते हो, कोई प्रलोभन दे रहा है, तुम्हारा मन ही । कोई और तुम्हे डिगाने को नही है।

यह तो पहली बात समझ लेनी जरूरी है कि ससार भीतर है, अन्यथा तुम वही भूल करोगे, जो ससारी कर रहा है। ससारी भी सोचता है कि ससार बाहर है, और सन्यासी भी सोचता है कि ससार बाहर है—तो दोनो के ज्ञान मे फर्क क्या? तो दोनो की समझ मे कौन-सा बुनियादी रूपान्तरण हुआ? ससारी भी धन बाहर देखता है और सन्यासी भी धन बाहर देखता है—तो दोनो एक ही तल पर हैं, कोई क्रान्ति घटित नही हुई, कोई बोध नही जगा, कोई ध्यान का आविर्भाव नही हुआ।

पहली क्रान्ति इस सत्य को देखने मे है कि ससार मेरे भीतर है। जैसे ही तुम यह सत्य समझ लोगे तो पाओगे कि ससार मेरे भीतर है, बाहर तो केवल सहारे हैं, खूटिया है, जिन पर हम अपने कोटो को टाग देते हैं। कोट हमारे हैं, खूटियो का कोई कसूर नही है। और खूटियो ने कभी कहा नही कि कोट टांगो। और एक खूटी पर न टागेगे, तो दूसरी खूटी पर टागेगे। खूटी नही मिलेगी, तो दरवाजे पर ही टाग देगे। कुछ भी नहीं होगा, तो अपने कधे पर ही रखेंगे। कोट तुम्हारा है।

इसलिए कबीर जैसे सत जब बात करते हैं—'जग सू प्रीत न कीजिए'—भ्राति मे मत पड जाना, क्योकि कबीरपथी उसी भ्राति मे पडे है। वे सोचते है कि जग बाहर है, उससे प्रेम नही करना है। जग भीतर है, तुम्हारे ही मन का हिस्सा है। कुछ और नही छोडना है, बस मन को छोड़ना है। कुछ और नही त्यागना है, बस मन को त्यागना है। और हर आदमी का अपना मन है। इसलिए तो दो आदमियो का मिलना भी बहुत मुश्किल हो जाता है। जब भी दो आदमी करीब आते हैं, तो दो ससार टकराते हैं। मित्रता बडी मुश्किल है। प्रेम असम्भव जैसा है। इसलिए तो हर प्रेमी-प्रेयसी कलह मे पडे रहते हैं। पति-पत्नी लडते ही रहते है। कारण क्या होगा? दोनो ने चाहा था कि साथ रहे, दोनो ने बडी आशाए बाधी थी, बडे सपने सजोये थे। फिर सब बिखर जाता है। सब इन्द्रधनुष टूट जाते हैं। सब सपने धूल मे गिर जाते हैं, और कलह हाथ मे रह जाती है।

दो दुनियाए हैं। जहा दा व्यक्ति मिलते हैं, वहीं दो ससार मिलते हैं। और जब दो ससार करीब आते हैं, तो उपद्रव होता है, क्योकि दोनो भिन्न हैं।

ऐसा हुआ, मैं मुल्ला नसरुद्दीन के घर बैठा था। उसका छोटा बच्चा--रमजान उसका नाम है, घर के लोग उसे रमजू कहते हैं--वह इतिहास की किताब पढ रहा था। अचानक उसने आख उठाई और अपने पिता से कहा, "पापा, युद्धो का वर्णन है इतिहास मे　युद्ध शुरू कैसे होते हैं?"

पिता ने कहा, "समझो कि पाकिस्तान, हिन्दुस्तान पर हमला कर दे। मान लो　।"

इतना बोलना था कि चौके से पत्नी ने कहा, "यह बात गलत है। पाकिस्तान कभी हिन्दुस्तान पर हमला नही कर सकता और न कभी पाकिस्तान ने हिन्दुस्तान पर हमला करना चाहा है। पाकिस्तान तो एक शान्त इस्लामी देश है। तुम बात गलत कह रहे हो।"

मुल्ला थोडा चौंका। उसने कहा कि मैं कह रहा हू, सिर्फ समझ लो। सपोज । मैं कोई यह नही कह रहा हू कि युद्ध हो रहा है और पाकिस्तान ने हमला कर दिया है, मैं तो सिर्फ समझाने के लिए कह रहा हू कि मान लो .　।

पत्नी ने कहा, "जो बात हो ही नही सकती, उसे मानो क्यो? तुम गलत राजनीति बच्चे के मन मे डाल रहे हो। तुम पहले से ही पाकिस्तान-विरोधी हो, और इस्लाम से भी तुम्हारा मन तालमेल नही खाता। तुम ठीक मुसलमान नही हो। और तुम लडके के मन मे राजनीति डाल रहे हो, और गलत राजनीति डाल रहे हो। यह मैं न होने दूगी। ।"

वह रोटी बना रही थी, अपना बेलन लिये बाहर निकल आयी। उसे बेलन लिये देखकर मुल्ला ने भी अपना डडा उठा लिया। उस छोटे बच्चे ने कहा, "पापा रुको, मैं समझ गया कि युद्ध कैसे शुरू होते है। अब कुछ और समझाने की जरूरत नही।"

जहा दो व्यक्ति हैं, जैसे ही उनका करीब आना शुरू हुआ कि युद्ध की सम्भावना शुरू हो गई। दो ससार हैं, उनके अलग-अलग सोचने के ढग है, अलग-अलग देखने के ढग हैं, अलग उनकी धारणाये है, अलग परिवेश मे वे पले हैं, अलग-अलग लोगो ने उन्हे निर्मित किया है, अलग-अलग उनके धर्म हैं, अलग-अलग राजनीति है, अलग-अलग मन है--सार-सक्षिप्त। और जहा अलग-अलग मन है, वहा प्रेम सम्भव नही--वहा कलह ही सम्भव है।

मन कलह का सूत्र है। इसलिए तो ससार मे इतनी कठिनाई है--प्रेमी खोजने

मे । मित्र खोजना असम्भव मालूम होता है । मित्र मे भी छिपे हुए शत्रु मिलते है और प्रेमी मे भी कलह की ही शुरुआत होती है ।

दो ससार कभी भी शान्ति से नही रह सकते ।

उसका कारण ?

एक ससार भी अपने भीतर कभी शान्ति से नही रह सकता, दो मिलकर अशान्ति दुगुनी हो जाती है ।

तुम अकेले भी कहा शान्त हो ? तुम्हारा मन वहा भी अशान्ति पैदा किये हुए है । फिर जब दोनो नही मिलते हैं तो अशान्ति दुगुनी हो जाती है ।

जितनी ज्यादा भीड होती जाती है उतनी अशान्ति सघन होती जाती है, क्योकि उतने ससार कलह मे पड जाते हैं ।

जिस दिन तुम इस सत्य को देख पाओगे कि तुम्हारा ससार तुम्हारे भीतर है, और तुम उसी ससार के आधार पर बाहर की खूटियो पर ससार निर्मित कर रहे हो, इसलिए सवाल बाहर के ससार को छोडकर भाग जाने का नही है, भीतर के ससार को छोड देने का है—तब तुम कही भी रहो, तुम जहा भी होओगे, तुम वही सन्यस्थ हो । तुम कैसे भी रहो—महल मे या झोपडी मे, बाजार मे या आश्रम मे—कोई फर्क न पडेगा । तुम्हारे भीतर से जो भ्राति का सूत्र था, वह हट गया ।

इसलिए जब जग को छोडने की बात कही है, तो समझ लेना, किस जग को छोडने को, अन्यथा ना-समझ बाहर के जग को छोडकर भागे फिरते हैं, और खुद को साथ लिये रहते है । खुद को ही छोडना है, कुछ और यहा छोडने योग्य नही । बस खुद को ही त्यागना है, कुछ और यहा त्यागने योग्य नही ।

इन प्रतीको के कारण बडी उलझन पैदा होती है, क्योकि कबीर कहते हैं—'एक कनक अरु कामिनी, जग मे दोइ फदा ।' तो शब्द तो साफ हैं और लगता है स्त्री को छोडकर भाग जाओ—कामिनी, धन को छोड दो—कनक । स्वर्ण को छोड दो, धन को छाड दो, पत्नी को छोड दो—ब्रह्म उपलब्ध हो जाएगा । काश, इतना आसान होता, तो भगोडे कभी के परम पद को पा गए होते ! इतना आसान नही है ।

कामिनी का छोडने का सवाल नही है काम को छोडने का सवाल है । कामिनी तो खूटी है । तो कबीर प्रतीक की बात कर रहे है । और कोई रास्ता नही है, प्रतीक, मेटाफर से ही बोला जा सकता है ।

कबीर कह रहे हैं, कामिनी को छोड दो—इसका अर्थ होता है, कि जैसे ही काम छूटा, तुम्हारे लिए कोई कामिनी न रही । जब तक काम है, कामिनी रहेगी । कामिनी नही है वहा, तुम्हारा काम ही कामिनी को निर्मित करता है । सोना थोडी

तुम्हे पकडे हुए है, तुम्हारा लोभ है। सोने को छोडने से क्या होगा, अगर लोभ भीतर है? तुम कुछ और पकड लोगे। जब तक पकडने की आकाक्षा भीतर है, तब तक तुम एक चीज छोडोगे, दूसरी चीज पकडोगे, मुट्ठी खुलेगी, बधेगी, लेकिन खुली न रहेगी। धन तुम छोड दो, लेकिन पकड किसी और चीज पर बैठ जाएगी। तो ऐसा भी हो सकता है कि तुम महल छोड दो और लगोटी पकड लो, और लगोटी छोडना मुश्किल हो जाये।

कथा है कि जनक के घर एक सन्यासी मेहमान हुआ और सन्यासी ने सब वैभव देखा, विस्तार देखा, और उसने कहा कि मैंने तो सुना था कि आप परम ज्ञानी हैं, यह वैभव-विस्तार, यह कनक-कामिनी—यह कैसा ज्ञान?

जनक ने कहा, "समय आने पर निवेदन करूगा, क्योकि हर चीज का समय है, और असमय मे कुछ भी निवेदन किया जाये, अर्थहीन है। समय पर बीज बोने पडते हैं, किसान जानता है। और ज्ञानी भी जानता है कि समय पर ही बीज बोने पडते हैं।"

कहा जनक ने, "समय पर कहूगा। थोडी प्रतीक्षा रखो, जल्दी न करो।"

दूसरे दिन ही सुबह समय आ गया। आ नही गया, जनक ले आये, स्थिति निर्मित कर दी। लेकर सन्यासी को गए, महल के पीछे ही नदी थी, स्नान करने को। और जब दोनो स्नान कर रहे थे नदी मे, तब अचानक महल मे आग लग गई, लगवा दी गई थी, लग नही गई थी। क्योकि सन्यासी का कोई भरोसा नही था, वह इतनी जल्दबाजी मे था और वह इतना बेचैन था महल से भागने को, भयभीत था कि कही महल मे फस न जाये। कनक और कामिनी—सब वहा मौजूद—तो जल्दी करनी जरूरी थी। जनक ने आज्ञा से महल मे आग लगवा दी। दोनो स्नान कर रहे हैं। सन्यासी चिल्लाया कि 'देखो, तुम्हारे महल मे आग लग गई!'

जनक ने कहा, 'क्या अपना है, क्या किसका है! आये थे कुछ लेकर नही, जाएगे बिना कुछ लिये! खाली हाथ आना, खाली हाथ जाना! किसका महल है! लगने दो, चिंता न करो। स्नान पूरा करो।"

लेकिन यह सुनने को सन्यासी वहा मौजूद ही न था, वह लगोटी छोड आया था किनारे पर, वह महल के पास ही थी। वह भागा। उसने कहा कि महल तो ठीक, मेरी लगोटी भी महल के पास रखी है, दीवाल के बिलकुल पास।

महल और लगोटी मे कोई फर्क नही है—तुम्हारे लोभ के लिए कोई भी खूटी बन सकता है। तुम बडी छोटी खूटी पर, बडे विराट लोभ को लटका सकते हो। क्योकि लोभ का कोई वजन थोडे ही है, विस्तार है, और विस्तार सपने का है,

खाली हुवा है। तो खूटी कोई बहुत बड़ी चाहिए, ऐसा नही है, खीली भी, तीली भी काम दे जाएगी। लोभ में कोई वजन नही है, बिना खूटी के भी लटक जाएगा।

तो जब कबीर कनक और कामिनी की बात करे तो समझना कि उनका प्रयोजन क्या है। कबीर कोई पडित नही हैं कि गलती कर रहे हो, कबीर परम ज्ञानी हैं। ये प्रतीक हैं। वे यह कह रहे हैं कि कामिनी तो पैदा होती है काम से। तुम्हारा काम ही किसी स्त्री को खूटी बना लेता है। और जब तुम्हारे काम की ऊर्जा किसी स्त्री पर खूटी की तरह टग जाती है, तब अचानक तुम पाते हो, इस स्त्री से सुदर स्त्री जगत मे दूसरी नही है। कल तक भी यही स्त्री थी। अनेक बार रास्ते पर तुमने इसे देखा था, तुम्हारे भीतर कोई भनक भी न पडी थी। यह स्त्री बहुत बार निकली थी, तुम्हारा ध्यान भी आकर्षित न हुआ था। एक हवा का छोटा-सा झोका भी इस स्त्री की तरफ से तुम्हारी तरफ न बहा था। आज अचानक क्या हो गया कि यह स्त्री परम सुदर हो गई? और दूसरे अब भी हस रहे होगे कि तुम किस स्त्री के चक्कर मे पड गये हो, कुछ भी वहा नही रखा है।

मजनू को उसके नगर के राजा ने बुलाकर कहा था कि 'तू बिलकुल पागल है। लैला कुरूप है। (लैला सच मे काली-कलूटी थी।) तू बिलकुल पागल हो गया है। नाहक चिल्लाता फिरता है लैला-लैला।

राजा को भी दया आ गई थी, तो उसने महल की बारह सुदर युवतिया सामने खडी करवा दी। उसने कहा, तू कोई भी चुन ले। महल की सुदरिया थी, निश्चित सुदर थी, लेकिन मजनू ने आख उठाकर भी न देखा। उसने कहा, "मुझे सिवाय लैला के और कोई दिखाई ही नही पडता। और आप शायद ठीक कहते होगे कि आपको लैला काली-कलूटी दिखाई पडती है।"

असल मे मजनू ने बडे सार की बात कही कि लैला को देखना हो तो मजनू की आख चाहिए।

जब तुम काम की आख से किसी स्त्री की तरफ देखते हो, तब अपूर्व सौंदर्य की वर्षा हो जाती है, तब तुम्हे कुछ दिखाई पडने लगता है जो वहा नही है। यही ससार है। तब तुम्हे वहा कुछ दिखाई पडने लगता है जो वहा कभी भी नही था, तुमने ही डाल दिया, तुम्हारे काम ने ही कामिनी को निर्मित कर लिया।

जब तुम सोने पर नजर डालते हो, तो सोने मे क्या है? क्या हो सकता है? ऐसी जातियां हैं जिनमे सोने का कोई मूल्य नही रहा है। आदिम जातिया हैं कुछ अभी भी। अफ्रीका के कुछ कबीले हैं जिनमे सोने का कोई मूल्य नही है। सोने की डली पडी रहे, उस कबीले को कुछ दिखाई नहीं पडता। कोई मूल्य ही नहीं है, तो बात

खत्म हो गई। मूल्य तो हम डालते हैं। लेकिन तुम्हे सोना दिखाई पड जाये तो प्राणो की बाजी लगा दोगे। कुछ सोने मे है या तुम्हारा लोभ खूटी बनाता है।

लोभ से सोना निर्मित होता है, सोने से लोभ नही। काम से कामिनी निर्मित होती है, कामिनी से काम नही।

उलटे मत चलना, नही तो भटक जाओगे। बहुत भटक गए हैं। इसलिए बार-बार इसको दोहराता हू। बहुत हैं जो स्त्रियो को छोडकर भाग रहे हैं। बेचारी स्त्री का कोई कसूर नही है। बहुत हैं जो सोने का छोडकर भाग रहे हैं। साने ने किसी का कभी कुछ बिगाडा नही। सोना बिगाडेगा भी क्या ? सोने की सामर्थ्य क्या है ?

और जो बात स्त्री के सबध मे लागू है, वही पुरुष के सबध मे लागू है। स्त्री की कामवासना ही पुरुष को पुरुषोत्तम बना लेती है। जैसे ही स्त्री की कामवासना किसी पुरुष के आसपास खडी होती है, रूपान्तरण हो जाता है। अब उसका सपना है वहा। इसलिए बडी कठिनाई होती है जीवन मे। तुम अपना सपना एक स्त्री पर ढाल देते हो, स्त्री अपना सपना तुम पर ढाल देती है। न तुम उसके सपने हो, न वह तुम्हारा सपना है। अडचन आएगी, क्योकि तुम अपेक्षा करोगे कि वह तुम्हारा सपना पूरा करे। वह अपेक्षा करेगी कि तुम उसका सपना पूरा करो। और जल्दी ही असलियत जाहिर होनी शुरू हो जाएगी, क्योकि असलियत किसी का सपना नही मानती। असलियत को तुम्हारे सपने से लेना-देना क्या है ?

तुम जब किसी स्त्री के प्रेम मे पडते हो तो तुम कहते हो—'स्वण-काया ! सोने की देह ! स्वर्ग की सुगध !' तुम्हारे कहने से कुछ फर्क न पडेगा। गरमी के दिन करीब आ रहे है—पसीना बहेगा, स्त्री के शरीर से भी दुर्गंध उठेगी। तब तुम लाख कहो—'स्वर्ग की सुगध,' तुम्हारे सपने को तोडकर भी पसीने की बास ऊपर आयेगी। तब तुम मुश्किल मे पडोगे कि धोखा हो गया। और शायद तुम यह कहोगे, इस स्त्री ने धोखा दे दिया। क्योकि मन हमेशा दूसरे पर दायित्व डालता है। कहेगा, यह स्त्री इतनी सुदर न थी जितना इसने ढग-ढौंग बना रखा था। यह स्त्री इतनी स्वर्ण-काया की न थी जितना इसने ऊपर से रग-रोगन कर रखा था। वह सब सजावट थी, शृगार था—भटक गये, भूल मे पड गये।

स्त्री भी धीरे-धीरे पायेगी कि तुम साधारण पुरुष हो और जो उसने देवता देख लिया था तुममे, वह जैसे-जैसे खिसकेगा, वैसे-वैसे पीडा और अडचन शुरू होगी। और वह भी तुम पर ही दोष फेकेगी कि जरूर तुमने ही कुछ धोखा दिया है, प्रवचना की है। और जब ये दो प्रवंचनाए प्रतीत होगी कि एक-दूसरे के द्वारा की गई हैं तो कलह, सघर्ष, वैमनस्य, शत्रुता खडी होगी। तुम्हारा मन किसी और

स्त्री की तरफ डोलने लगेगा। तुम नई खूटी की तलाश करोगे। स्त्री का मन किसी और पुरुष की तरफ डोलने लगेगा। वह किसी नई खूटी की तलाश करेगी। और इसी तरह तुम जन्मो-जन्मो से करते रहे हो। लाखो खूटियो पर तुमने सपना डाला। लाखो खूटियो पर तुमने अपनी वासना टागी। लेकिन अब तक तुम जागे नहीं और तुम यह न देख पाये कि सवाल खूटी का नहीं है, सवाल कामिनी का नही है, काम का है। यह तुम्हारा ही खेल है। तुम जिस दिन चाहो, समेट लो। लेकिन जब तक समझोगे न, समेटोगे कैसे? भागना कही भी नही है, तुम जहा हो वहीं ही अपने मन की वासनाओ के जाल को समेट लेना है। जैसे साझ मछुआ अपने जाल को समेट लेता है, ऐसे ही जब समझ की साझ आती है, जब समझ परिपक्व होती है, तुम चुपचाप अपना जाल समेट लेते हो। वह तुमने ही फैलाया था, कोई दूसरे का हाथ नही है। कोई दूसरा तुम्हे भटका नही रहा है।

सोने का क्या कसूर है? तुम नही थे तब भी सोना अपनी जगह पडा था। तुम्हारी प्रतीक्षा भी नही की थी उसने। तुम नही रहोगे तब भी सोना अपनी जगह पडा रहेगा।

भर्तृहरि ने अपने जीवन मे उल्लेख किया है। राज्य छोड दिया। और राज्य ऐसे ही नही छोड दिया था, बडी परिपक्वता से छोडा था, जानकर छोडा था। भोगा था जीवन को और जीवन के भोग से जो पीडा पायी थी और जीवन के भोग में जो व्यर्थता पायी थी, उसके कारण छोडा था। लेकिन तब भी छोडते-छोडते भी धुए की एक रेखा भीतर रह गई होगी।

जीवन जटिल है। पर्त-दर-पर्त अज्ञान है। एक पर्त पर छोड देते हो, दूसरी पर्त पर प्रगट होना शुरू हो जाता है।

सब छोडकर जगल मे सन्यस्थ होकर जगल मे भर्तृहरि बैठे हैं, अपनी गुफा मे बैठे है। एक पक्षी ने गीत गुनगुनाया, आख खुल गई। पक्षी को तो देखा ही देखा, राह पर पडा एक चमकदार हीरा दिखाई पडा। अनजाने कोने से, अचेतन की किसी पर्त से, जरा-सा लोभ सरक गया, जरा-सा हल्का झोका, पता भी न चले—भर्तृहरि को ही पता चल सकता है जो कि जीवन को बडा समझकर बाहर आया था—जरा-सा कम्पन हो गया। लौ हिल गई भीतर—उठा लू! फिर थोडी हसी भी आई। इससे भी बडे-बडे हीरे-जवाहरात छोडकर आया, और अभी भी उठाने का मन बना है। बहुत कुछ था, बडा साम्राज्य था। यह हीरा कुछ भी नही है। ऐसे बहुत हीरो के ढेर थे। वह सब छोड आया, और आज अचानक इस साधारण से हीरे को राह पर पडा देखकर मन मे यह बात उठ आई।

खूटियां छोडने से लोभ नही छूटता। महल छोड देने से भी लोभ नहीं छूटता। धन के अबार त्याग देने से भी त्याग नही हो जाता।

मगर भर्तृहरि बडा सचेत, जागरूक व्यक्तित्व है। पहचान लिया, पकड लिया, होश मे आ गया कि नही, यह बात क्या हुई! और जब यह मन मे मन्थन चलता था, यह जब मन का विश्लेषण चलता था कि लोभ कहा से उठ आया, क्षणभर पहले नही था, आख बद थी, ध्यान मे लीन था—कहा से, किस पर्त से? बाहर से तो नही आया? कोई हीरा तो नही भेज रहा है यह लोभ?—इस विश्लेषण मे लगे थे, तभी देखा कि दो घुडसवार दोनो तरफ से राह पर आ गए हैं और दोनो की नजर एक साथ ही हीरे पर पड गई। दोनो की तलवारे बाहर निकल आईं। दोनो सैनिक हैं, राजपूत हैं। दोनो ने अपनी तलवारे हीरे के पास टेक दी और कहा कि पहले नजर मेरी पडी, तो दूसरे ने कहा, तुम गलती मे हो, नजर पहले मेरी पडी। और अब निर्णायक सिवाय तलवार के, कोई और हो नही सकता। दोनो को पता भी नही कि एक तीसरा व्यक्ति भी छिपा गुहा मे बैठा है, जो देख रहा है। तलवारे चल गईं। क्षणभर पहले दोनो जीवित थे, क्षणभर बाद दोनो की लाशे पडी थी। हीरा अब भी अपनी जगह था—न रोया, न पछताया, न चिन्तित, न बेचैन। जैसे कुछ हुआ ही नही है। हीरे का क्या हुआ? लेकिन भर्तृहरि को बडा बोध जागा—हीरा अपनी जगह ही पडा रहेगा, हम आयेंगे और चले जायेंगे, हम चलेंगे संसार मे और विदा हो जाएगे। हीरे हमारे लिए पछतायेंगे न। न विदा देते समय एक आसू उनकी आखो मे झलकेगा, न हमे देखकर वे प्रसन्न हैं। सब अपना ही मन का खेल है। हमी दाग लेते हैं।

देखकर यह घटना भर्तृहरि ने फिर आख बद कर ली। और इस घटना ने भर्तृहरि को बडा बोध दिया।

सब पडा रह जाएगा। न तुम लेकर आते हो, न तुम लेकर जाते हो, लेकिन घडीभर को बडे सपने सजा लेते हो, बडे इन्द्रधनुष फैला लेते हो।

मन ससार है। काम कामिनी का निर्माता है, स्रष्टा है। लोभ स्वर्ण का जन्मदाता है।

अब हम इन सूत्रो मे प्रवेश करे।

बडी बारीक बात है और बडे सरल शब्दो मे कही गई है। शब्द इतने सरल हैं कि लगेगा, समझाने जैसा क्या है? इन सरल शब्दो मे इतना कुछ भरा है कि समझाये-समझाये भी समझाया नही जा सकता। तुम समझते रहो, मैं समझाता रहू—कोई अन्त न आए।

ज्ञानियो के शब्द सदा ही सरल होते हैं। सिर्फ अज्ञानी पडितो के शब्द कठिन होते है। पडित कठिनाई से जीता है। कठिनाई पर ही उसका धधा है। वह जितना कठिन बना लेता है चीजो को, उतना ही लोगो मे भ्राति फैलती है कि बडे रहस्य की बात है। अगर चीजे बिलकुल सरल करके पडित कह दे, तो पडित की कौन पूजा करे? वह जटिल बनाता है। वह उलझाता है। वह गोल-गोल रास्तों से चलता है। वह बडे कठिन शब्दो का प्रयोग करता है। वह बडे पारिभाषिक तर्कों का जाल बुनता है। वह ऐसा धुआ खडा कर देता है चारो तरफ कि कुछ दिखाई न पडे, सिर्फ इतना ही समझ मे आये कि पडित कोई बडा महान कारीगर है।

ज्ञानी सदा सरल होते हैं। शब्द उनके सीधे होते हैं, गोल-गोल नही, सीधे हृदय पर चोट करते हैं। उनका तीर सीधा है। और इसलिए कई बार ऐसा होता है कि लोग पडितो के जाल मे पड जाते हैं और ज्ञानियो से वचित रह जाते हैं। क्योकि, लोगो को लगता है कि इतनी सरल बात है, इसमे है ही क्या समझने जैसा?

ध्यान रखना, जहा सरल हो वही समझने जैसा है, और जहा कठिन हो वहा सब कचरा है। वह कठिनाई इसलिए पैदा की गई है ताकि कचरा दिखाई न पडे।

तुम डॉक्टर के पास जाते हो तो डॉक्टर इस ढग से लिखता है कि तुम्हारी समझ मे न आये कि क्या लिखा है।

मुल्ला नसरुद्दीन ने तय कर लिया कि अपने लडके को डॉक्टर बनाना है। मैंने पूछा, आखिर कारण क्या है? उसने कहा, आधा तो यह अभी से है, क्या लिखता है, कुछ पता ही नही चलता। आधी योग्यता तो उसमे है ही। अब थोडा-सा और, सो पढ लेगा कॉलेज मे।

पता नही चलना चाहिए। क्योंकि जो लिखा है वह दो पैसे मे बाजार मे मिल सकता है। और डॉक्टर लेटिन भाषा का उपयोग करता है, जो किसी की समझ मे न आये। क्योकि अगर वह उस भाषा का उपयोग करे जो तुम्हारे समझ मे आती है तो तुम मुश्किल मे पडोगे। क्योकि तुम कहोगे कि यह चीज तो बाजार मे दो पैसे मे मिल सकती है, इसका बीस रुपया! तुम कैसे दोगे? बीस रुपया लेटिन भाषा की वजह से दे रहे हो।

जो डॉक्टर का ढग है, वही पडित का ढग है। वह सस्कृत मे प्रार्थना करता है, या लेटिन मे, या रोमन मे, या अरबी मे, कभी लोकभाषा मे नही। लोगो की समझ मे आ जाये तो प्रार्थना मे कुछ है ही नही। समझ मे न आये तो लोग सोचते हैं, कुछ होगा। बडा रहस्यपूर्ण है। पडित की पूरी कोशिश है कि तुम्हारी समझ मे न आये, तो ही पडित का धधा चलता है। ज्ञानी की पूरी कोशिश है कि तुम्हे समझ

मे आ जाये, क्योकि ज्ञानी का कोई धधा नही है ।

कबीर के शब्द बडे सीधे-सादे है, एक बेपढे-लिखे आदमी के शब्द हैं, पर बडे गहरे है । वेद फीके हैं । उपनिषद थोडे ज्यादा सजाये-सवारे मालूम पडते हैं । कबीर के वचन बिलकुल नग्न हैं, सीधे ! रत्तीभर ज्यादा नही है, जितना होना चाहिए उतना ही है ।

'जग सू प्रीत न कीजिऐ, समझि मन मेरा । स्वाद हेत लपटाइए, को निकसै सूरा ।'

ससार से प्रेम न कर मेरे मन, समझ ! क्योकि ससार से जिसने प्रेम किया—और ससार से अर्थ है तुम्हारे ही खडे किये ससार से—वह भटका । भटका क्यो ? क्योकि वह सत्य को कभी जान न सका । उसने अपने ही मन के रग इतने डाल दिये सत्य मे, कि सत्य का रग ही खो गया । वह कभी स्त्री को सीधा न देख पाया, देख लेता तो मुक्त हो जाता ।

बुद्ध कहते है, क्या है स्त्री मे—हड्डी, मास-मज्जा ! क्या है स्त्री की देह मे ?—अस्थी-पिजर । काश ! तुम काम को हटा दो, तो दूसरे की देह मे क्या दिखाई पडेगा ?—मल-मूत्र, मास-मज्जा ! लेकिन काम से भरी आखे स्वर्ण-काया को देखती है । काम से भरी आखे जो हैं, उसे देखती ही नही ।

ऐसा हुआ कि बुद्ध एक वृक्ष के नीचे एक पूर्णिमा की रात ध्यान करते थे । शहर से कुछ युवक एक वेश्या को लेकर जगल मे आ गए है । नशे मे धुत् उन्होने वेश्या को नग्न कर दिया है । वे हसी-मजाक कर रहे है । वे अपनी क्रीडा मे लीन है । उनको बेहोश देखकर, शराब मे धुत् देखकर, वेश्या भाग निकली । थोडी देर बाद जब उन्हे होश आया और देखा कि वेश्या तो जा चुकी है, तो वे उसे खोजने निकले । कोई और तो न मिला, राह के किनारे, वृक्ष के नीचे बुद्ध मिल गये । तो उन्होने पूछा कि 'ऐ भिक्षु, यहा से तुमने एक बहुत सुदर स्त्री को नग्न जाते देखा ?'

बुद्ध ने कहा, "कोई यहा से गया—कहना मुश्किल है कि स्त्री है या पुरुष । क्योकि वह भेद तभी तक था जब अपनी कामना थी । अब कौन भेद करता है ! किसको लेना-देना है ! क्या पडी है ! कोई गया जरूर, तय करना मुश्किल है कि स्त्री थी या पुरुष था । और तुम कहते हो, सुदर !—तुम और कठिन सवाल उठाते हो । सुदर-असुदर भी गया । वह अपने ही मन का खेल था । हा एक अस्थि-पजर, मास-मज्जा से भरा, गुजरा है जरूर । कहा गया, यह कहना मुश्किल है । क्योकि, मैं आखो को भीतर ले जाने मे लगा हू । बाहर कौन कहा जा रहा है, यह देखता रहू तो भीतर कैसे जाऊ ? तुम मुझे क्षमा करो । तुम किसी और को खोजो । वह तुम्हे ठीक-ठीक पता दे सकेगा । मैं अपना पता खोज रहा हू, दूसरो के पते की मुझे अब

कोई चिन्ता न रही ।"

काश ! काम के बिना तुम स्त्री को देखो या पुरुष को देखो तो क्या पाओगे वहा ? शरीर मे तो कुछ भी नही है । और अगर कुछ है तो वह अशरीरी है । लेकिन काम की आखें ता उसे तो देख ही न पाएगी—उस आत्मा को जो इस हड्डी-मास-मज्जा की देह मे छिपी है । उस चैतन्य को, उस ज्योति को तो काम से भरी आखे तो देख ही न पाएगी । तुम देह पर ही भटक रहागे ।

जब काम गिर जाता है, शरीर ना-कुछ हो जाता है, मिट्टी से उठा, मिट्टी मे वापस लौट जाएगा । लेकिन जैसे ही शरीर ना-कुछ हुआ, वैसे ही शरीर के भीतर जो जो छिपा है, उसकी पहली झलक मिलनी शुरू हो जाती है । तब न तो तुम स्त्री को पाते हो, न पुरुष को, तुम सब जगह परमात्मा को पाते हो ।

'जग सू प्रीत न कीजिऐ ।'

इसलिए काम की आख से मत देखो । जो जग तुमने अपने चारो तरफ धारणाओ का, दृष्टिओ का बना रखा है, वासनाओ का, तृष्णाओ का—उससे मत देखो ।

'जग सू प्रीत न कीजिऐ, समझि मन मेरा ।'

मेरे मन समझ ! ना-समझी काफी हो चुकी ।

'स्वाद हेत लपटाइए, को निकसँ सूरा ।'

लेकिन मन सदा कहता है कि बडा स्वाद है । समझ से मन बचना चाहता है, क्योकि डर लगता है कि समझ कही स्वाद न छीन ले, कही देख लिया स्त्री की मास-मज्जा को, हड्डी को, मल-मूत्र का, भीतर छिपी हुई देह के जो स्थिति है, अगर एक बार दिख गई तो फिर स्वाद लेना मुश्किल हो जायेगा ।

पश्चिम मे एक बडा विचारक है, मनोवैज्ञानिक है—विक्टर फ्रेन्कल । वह हिटलर के कैदखाने मे था । और वहा उसने एक घटना देखी । और उस घटना के बाद उसका भोजन मे रस चला गया, जा नही लौटा अब तक ।

कैसी घटना रही होगी ?

उसने देखा, कैदी थे । एक बार रोटी के कुछ टुकडे मिलते थे, और दिनभर भूखे रहते थे । लोग अपने टुकडो को बचाए रखते थे, ताकि थोडा-सा जब भूख लगे तो फिर खा लेगे, फिर थोडा-सा खा लेगे । चौबीस घटे की भूख !

एक दिन उसने देखा कि एक कैदी को वमन हो गया, उलटी हो गई । इसमे तो कुछ बडी बात न थी । बहुत लोगो को वमन करते हुए देखा होगा । लेकिन फ्रेन्कल ने देखा कि वह उस वमन को ही उठाकर फिर से खा रहा है । उसने अपने सस्मरणो मे लिखा है कि उस दिन के बाद फिर मेरा भोजन मे रस नही रहा ।

भोजन करता हू, मुझे वह आदमी जरूर दिखाई पडता है।

एक बार तुम्हे सत्य दिखाई पड जाये तो बडा मुश्किल हो जायेगा। इसलिए तो मन कहता है कि समझ से बचो, यह समझदारी अपने काम की नही, ना-समझी भली। नहीं तो स्त्री की देह पर हाथ रखोगे, कविता कहती है कि सगमरमरी देह है, लेकिन अगर तुम्हे भीतर की मास-मज्जा और हड्डी दिखाई पड रही हो, तो सगमरमरी देह तुम न कह सकोगे। सत्य सब कविताओं को तोड देगा। तुम बडी मुश्किल मे पडोगे।

इसलिए मन कहता है, समझ-वमझ मे मत पडो, ना-समझी भली। इसलिए तो कहते हैं कि अज्ञान मे भी बडे आशीर्वाद छिपे हैं। स्वाद ले लो, जल्दी क्या है—मन कहता है—थोडा और! और स्वाद के साथ बडी हैरानी है कि स्वाद काल्पनिक है और दूसरे से नही आ रहा है। दूसरे से आ नही सकता स्वाद। स्वाद तुम्हारा डाला हुआ है।

कभी तुमने कुत्ते को देखा? सूखी हड्डी को कुत्ता चूसता है। सूखी हड्डी मे कुछ भी नही है। कोई रस तो निकल नही सकता, इसलिए चूसोगे क्या? सूखी हड्डी कोई गन्ने की पोगरी नही है। उसमे कुछ है ही नही, बिलकुल सूखी है। कोई मास भी नही लगा है आसपास। खून का धब्बा भी नही है। बिलकुल सूखी हड्डी है और कुत्ता चूसता है और बडा रस लेता है, और अगर कोई दूसरा कुत्ता उस हड्डी को छीनने आ जाये तो जी-जान से बचाने की कोशिश करता है।

क्या, हो क्या रहा है?

एक बडी महत्वपूर्ण घटना घट रही है। वह तुम्हारे जीवन मे भी घट रही है। उसे समझ लेना ठीक है।

जब कुत्ता सूखी हड्डी चूसता है, तो सूखी हड्डी की टकराहट से उसके भीतर मुह का मास कट जाता है, खून बहने लगता है। खून का स्वाद आने लगता है। स्वभावत कुत्ता सोचता है, हड्डी से खून आ रहा है। तर्क बिलकुल सीधा साफ है। वह जितना चूसता है सूखी हड्डी को, उतना ही मुह भीतर कटता जाता है। जीभ कट जाती है। मसूढे कट जाते हैं। तालु कट जाता है। खून बहने लगता है। खून गले मे आता है, कुत्ते को स्वाद आता है।

और सभी स्वाद ऐसे हैं। स्वाद बाहर से नही आते, तुम्ही ले रहे हो। तुम्हारा ही खून बह रहा है। सूखी हड्डिया चूस रहे हो। वहा कुछ है ही नही कि कुछ आ जाये।

जब तुम सोचते हो कि स्त्री से तुम्हे सुख मिल रहा है, तब तुम्ही सुख पा रहे

हो—तुम्हारी धारणा का ही सुख है। तुम जब सोचते हो कि सोने से सुख मिल रहा है, तो तुम ही सुख पा रहे हो—तुम्हारी धारणा का ही सुख है। और सोने के कारण कितनी जगह से तुम कट जाते हो, तुम्हे पता नही। सोने का बोझ तुम्हे कैसे दबा देता है, इसका तुम्हें पता नही। तुम्हारे लोभ और काम मे तुम कैसे कारागृह मे बद हो जाते हो जहा कि जीना ही असभव हो जाता है, इसका तुम्हे पता नही!

'स्वाद हेत लपटाइए, को निकसै सूरा।'

कबीर कहते हैं, स्वाद के कारण उलझ जाता है व्यक्ति, और फिर कोई बहुत बहादुर ही हो, शूरवीर हो, तो ही बाहर निकल पाता है। सिर्फ साहसी ही बाहर निकल पाते हैं—दुस्साहसी। क्योकि, दूसरे से लड़ना तो बहुत आसान है, अपने ही मन से लड़ना बहुत कठिन है। और अपने ही मन को समझना बहुत कठिन है कि क्या हो रहा है।

कुत्ते को कैसे पता चले कि सूखी हड्डी से अपना ही खून बह रहा है, उसका ही मैं स्वाद ले रहा हू। जब मनुष्यो को पता नही चलता, तो बेचारे कुत्ते का तो कोई कसूर नही।

तुमने जहा-जहा स्वाद लिया है, वह तुम्हारे ही रक्त का स्वाद है और जहा जहा तुमने स्वाद लिया है वहा-वहा तुमने अपने जीवन को गवाया है। जहा-जहा तुमने स्वाद लिया है, वहा अपनी ऊर्जा खोई है। उससे तुम दीन हुए हो। उससे तुम निर्धन हुए हो। और मैं भीतर के धन की बात कर रहा हू, जब कहता हू, निर्धन हुए हो। और मैं भीतर की दीनता की बात करता हू, जब मैं कहता हू, दीन हुए हो। क्योकि, जितने तुमने स्वाद लिये हैं, उतना ही तुमने अपने को खोया है। और आज एक ऐसी घडी आ गई है कि तुम्हें पक्का पता नही कि तुम कौन हो, क्या हो, हो भी या नही? इस बुरी तरह खो दिया है तुमने, गवा दिया है अपने को कि कोई बहादुर ही इसके बाहर निकल सकता है, कोई शूरवीर—'को निकसै सूरा'।

क्यो साहस की जरूरत है? सबसे बड़े साहस की जरूरत वहा पड़ती है, जहा आदतो के जाल से बाहर निकलना हो। अब तुम्हारी यह आदत हो गई है—अपने को ही काटना और गलाना और अपना ही स्वाद लेना। इस आदत से तुम इतने ज्यादा ग्रस्त हो गए हो कि अब बाहर आना करीब-करीब असम्भव मालूम पड़ता है। करीब-करीब ऐसा लगता है कि तुम अपनी आदतो के जाल ही हो, बाहर कौन आयेगा? भीतर बचा कौन है जो बाहर आ जाये? इसलिए तुम टालते हो कि कल, परसो, आगे देखेंगे, अभी तो उम्र शेष है, थोड़ा और भोग ले।

मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, आप युवकों को सन्यास दे रहे है, सन्यास तो बुढापे के लिए है। सन्यास का क्या बुढापे से सबध ? बुढापे तक क्यो टाल रहे हो ? तब तक टालोगे तुम जब तक तुम बिलकुल अशक्त न हो जाओ। जब कुछ बचेगा ही नही, जब तुम बिलकुल मरने की घडी मे आ जाओगे, तभी तुम अपनी सूखी हड्डी छोडोगे। वह भी तुम छोडोगे नही, छूट जाएगी। क्योंकि तब पकडने योग्य सामर्थ्य, क्षमता भी न रह जाएगी। तब भी तुम तो चेष्टा करोगे कि थोडी देर और। क्योकि बूढा भी अपने को बूढा थोडे ही मानता है, भीतर तो अपने को जवान ही मानता है। क्योकि, वासना कभी बूढी होती ही नही। वासना सदा जवान है। शरीर थक जाए, मन नही थकता, शरीर टूट जाये, मन नही टूटता। मन कहता है, चले जाम्रो, और खीचो, थोडा और स्वाद ले लो। आखिरी मरते क्षण तक भी मन स्वाद से लपटाए रखता है।

इसलिए कबीर कहते हैं, 'स्वाद हेत लपटाइए, को निकसै सूरा।'

वह जो निकल आये बाहर, वह बड़ा वीर।

सन्यास केवल साहसियो के लिए है, ससार कायरो के लिए। बडे से बडा साहस है जाग जाना और देख लेना स्थिति को। जागने मे डर है, क्योकि तुमने स्थिति मे बहुत-सा अतीत गवा दिया है।

ऐसा समझो कि एक आदमी आख बद किये कागज की नाव मे बैठा सागर को पार कर रहा है, और तुम अचानक उसको कहो, 'आख खोल ना-समझ! यह कागज की नाव है, कही भी डुबा देगी।' तो वह तुम्हे दुश्मन की तरह देखेगा। क्योकि, हो भले ही कागज की नाव, लेकिन जब तक पता नही है, तब तक तो निश्चिन्त है, तब तक तो वह नाव ही मान रहा है। अब तुमने उसे झझट मे डाल दिया—यह बता कर कि यह कागज की नाव है, डूबेगी। अब मुश्किल खडी होगी। अब वह कपेगा और डरेगा और परेशान होगा। वह तुम पर नाराज हागा। अब तक सपना ही सही, लेकिन भरोसा तो यह था कि ठीक है, पहुच जाएगे।

धन मे तुमने अपना जीवन गवाया। आज अचानक कोई कहता है कि धन मे कुछ भी नही है, तो तुम्हारा पूरा अब तक गवाया जीवन व्यर्थ हो जाता है। एक आदमी पचास मील चलकर आया और तुम कहते हो कि 'फिर लौटो, यह तो रास्ता ही नही है। पचास मील वापस जाओ। वही से चौराहे से बदलाहट होगी, दूसरा रास्ता पकडना।'

पहला मन तो उसका तुम पर नाराज होने को होता है। होता है, क्योकि तुम उसकी पचास मील की यात्रा को खराब किये दे रहे हो। और फिर पचास मील

जाना है वापस । तो पहले तो वह तुम पर भरोसा न करेगा । वह कोई ऐसा आदमी खोजेगा जो कहेगा कि नही ठीक हो, बिलकुल ठीक जा रहे हो ।

इसलिए तो लोग ज्ञानियो के पास जाने से डरते हैं, भयभीत रहते हैं । कितने थोडे-से लोग बुद्ध के पास पहुचे । कितने थोडे-से लोग कबीर के पास पहुचे । क्यो इतना बडा विराट ससार, जब सत्य का कहीं आविर्भाव होता है तो दौडकर नही पहुच जाता ? हजार कारण वे खोज लेते हैं न जाने के । जाने का कारण वे नहीं खोजते, क्योकि भीतर एक भय है कि इस तरह के आदमी के पास जाने का मतलब यह है कि अब तक तुम जो थे, तुमने जो भी किया, वह सब गलत । यह जरा जरूरत से ज्यादा घबडानेवाला है । तो फिर पूरा जीवन अब तक का बेकार गया? तो तुम मूढ़ थे, ना-समझ थे ?

ज्ञानी के पास जाने का भय यह है, वही भय जो ऊट को हिमालय के पास जाने से लगता है । इसलिए ऊट रेगिस्तान मे रहते हैं, हिमालय की तरफ नही जाते । रेगिस्तान मे वही ऊट हिमालय हैं ।

जब तुम ज्ञानी के पास जाते हो तो अचानक तुम्हारा अज्ञान साफ होता है—घबडाहट होती है । ज्ञानी की प्रकाश-रेखा के समक्ष तुम्हारी अधेरी रेखा बिलकुल प्रगट हो जाती है । तो आदमी मित्रता अपने से ज्यादा अज्ञानियो की करता है । कोई साहसी, कोई शूरवीर ही ज्ञानियो के पास जाता है । इससे बडा कोई साहस नही है कि कोई इस बात को समझने को राजी हो कि अब तक जो मैं था वह गलत था । इससे बडा कोई साहस नही है कि अब तक जिस रास्ते पर मैं चला, वह भ्रात था, और मैं फिर से अ, ब, स से शुरू करने को राजी हू ।

मन समझायेगा कि इतने दिन चल लिये, थोडे दिन और बचे हैं, अब क्यो परेशानी मे पडते हो ? थोडे दिन और गुजार लो इसी रास्ते पर । पहुचे, नही पहुचे, लेकिन पहुचने की आशा तो बनी है ।

मेरे एक शिक्षक थे । आस्तिक थे—भजन-कीर्तन, पूजा-पाठ करते थे । मैं जब भी गाव जाता, मुझे स्कूल मे पढाया था तो उनको मैं मिलने जाता । कुछ बात होती । एक बार मैं गाव गया, तो उनका लडका आया और मुझे कह गया कि 'आप घर मत आना । पिताजी ने खबर भेजी है । यद्यपि वे दुखी हैं, असमर्थ है, लेकिन घर मत आना ।'

मैंने कहा, "एक बार तो आऊगा, कम-से-कम यह पूछने के लिए कि मामला क्या है ? फिर कभी नही आऊगा ।"

मैं गया तो वे रोने लगे और उन्होंने कहा कि वर्षभर तुम्हारी राह देखता हू

कि कब आओगे। पर मैं बूढा आदमी हू, और तुम सब गडबड कर देते हो। मेरी पूजा ठीक चलती है, प्रार्थना ठीक कर लेता हू, मंदिर जाता हू, उपवास करता हू, और अब बूढा आदमी हू, और तुम जब आते हो तो तुम सब गडबड कर देते हो कि 'इस पूजा से कुछ भी न होगा। यह प्रार्थना व्यर्थ है। यह उपवास से क्यों अपने को भूखा मार रहे हो?' और तुमसे मैं भयभीत हो गया हू। और अब मेरी मौत करीब है। कृपा करके अब मुझे मत डगमगाओ। मैं जैसा हू । क्योंकि अब इस क्षण मे नये रास्ते पर जाना मुश्किल है। अब तुम मुझे आश्वस्त मर जाने दो। नही तो मरते वक्त भी तुम्हारी आवाज मुझे सुनाई पडती रहेगी कि यह गलत है, जिन्दगी मैंने ऐसे ही गवा दी। तुम मुझे कम-से-कम भरोसा दो। तुम मुझे कहो, सब ठीक है,

मैंने उन्हे कहा, "क्रान्ति के लिए समय की जरूरत ही नही है, एक क्षण मे क्रान्ति हो सकती है। क्योंकि यह क्रान्ति समय के बाहर की घटना है। तो तुम यह मत सोचो कि जिन्दगी गवा दी, तो अब एक क्षण मे, अब थोडे-से दिनो मे, थोडा-सा समय जो हाथ मे बचा है—हाथी तो निकल गया है, अब पूछ ही बची है—अब कैसे बदलाहट हागी? तुम यह बात ही छोडो। सौ साल अंधेरा रहा हो, अगर दिया जलाओ, एक क्षण मे अंधेरा विलीन हो जाता है। भयभीत मत रहो कि अब सौ साल दीया जलाना पडेगा, तब सौ साल का पुराना अंधेरा जाएगा। यह गणित यहा लागू नही है। और अंधेरा यह भी नही कह सकता है कि मैं सौ साल पुराना हू, इसलिए इतनी जल्दी नही जाऊगा।

"एक क्षण मे घटना घट सकती है। लेकिन मन गणित करता है। और मन कहता है कि अब अखीर मे आश्वस्त मर जाने दो। आश्वस्त तुम मर ही नही सकते, क्योंकि तुम्हे खुद ही भरोसा नही है। और मैं तुम्हे नही डिगा रहा हू, तुम खुद ही जानते हो कि जो तुम कर रहे हो वह थोथा है। अन्यथा मैं कैसे डिगाऊगा?"

गलत करनेवाला बिलकुल भलीभाति जानता है, कितना ही समझाये, कितना ही अपने को उलझाये, कितना ही शब्दो का जाल रचे, सात्वना का घर बनाये, गलत करनेवाला गहन तल पर जानता है कि गलत हो रहा है।

मुल्ला नसरुद्दीन मर रहा था। जिन्दगीभर अल्लाह ही का नाम लिया, प्रार्थना पूजा, मस्जिद, कुरान का पाठ किया नियमित, और मरते वक्त, आखिरी क्षण मे उसने जोर से कहा, "हे शैतान! हे अल्लाह! कृपा कर!"

पास खडे हुए मौलवी ने पूछा कि नसरुद्दीन, मरते वक्त यह क्या कह रहे हो?

उसने कहा कि अब सच्ची बात ही कह दू। मुझे पक्का नही है कि अल्लाह मालिक है दुनिया का कि शैतान। और कभी पक्का नही रहा। और मरते वक्त

दोनो को राजी कर लेना उचित है, जो भी हो। यह मौका कोई जिद्द करने का नही है।

जीवनभर का सदेह मरते क्षण उठ आएगा, ऊपर आ जाएगा। मरते क्षण मे तुम धोखा न दे पाओगे, जीवन मे भला धोखा दिया हो। मरते क्षण मे सत्य जाहिर हो जाएगा। मरते क्षण मे तुम जानोगे, सोना मिट्टी था। मरते क्षण मे तुम जानोगे कि कोई स्त्री सुख देनेवाली नही थी, कोई पुरुष सुख देनेवाला नही था। मरते क्षण मे तुम जानोगे कि जिन्दगी गवाई। लेकिन तब करने को कुछ भी न बचेगा।

शूरवीर वही है जो मरने के पहले मरने की हिम्मत रखता है। और क्या मतलब होता है शूरवीर का? कायर किसको कहते हो तुम? कायर उसको कहते हो कि जहा भी मरने की बात उठी कि वह भागा, उसने पूछ दबाई। शूरवीर वही है जो जीवन के लिए जीवन को दाव पर लगा सकता है। शूरवीर का अर्थ है जो जीवन के लिए जीवन को गवा सकता है, जो मरने के लिए भी तैयार है, जिसकी तैयारी मे आखिरी तैयारी सम्मिलित है—मरने की तैयारी।

और हम पढेगे आगे, कबीर कहते हैं कि जो जीते-जी मरने की कला जानता है, वही केवल परमात्मा को उपलब्ध होता है।

मरते तो सभी है मरते वक्त, सन्यासी वही है जो मरने के पहले मर जाता है और जो कह देता है कि इस जीवन मे कोई सार नही। इस जीवन के लिए मैं मरा हुआ हुआ। मैं एक नए जीवन की शुरुआत करता हू और एक नये प्रकाश-पथ की यात्रा । बाहर खोजकर देख लिया, नही कुछ पाया। अपने ही मन की भ्रातिया थी, अपने ही मन का फैलाव था। अब पसारा वापस उठा लेता हू, जाल उठा लेता हू। अब भीतर की यात्रा पर चलता हू।

अन्तर्यात्रा निर्णय है साहस का। बाहर की तरफ तो सभी जाते है, भीतर की तरफ कोई शूरवीर । बाहर की तरफ तो पशु भी जाते है, पक्षी भी जाते हैं, पौधे भी जाते हैं, तुम्हारा कुछ गुण-गौरव नही है कि तुम बाहर की तरफ जाते हो। भीतर की तरफ न पशु जाते हैं न पक्षी जाते हैं, न पौधे जाते हैं, केवल मनुष्य जा सकता है, सभी मनुष्य नही जाते—कोई शूरवीर जा सकता है।

अन्तर्यात्रा सबसे कठिन यात्रा है। चाद पर पहुचना आसान है, क्योकि वह भी बाहर की यात्रा है। अपने भीतर आ जाना सबसे कठिन यात्रा है। क्योकि उस भीतर आने मे तुम्हे अपने जन्मों-जन्मो की आदतो के जाल तोडने पडेगे, जन्मो-जन्मो के स्वाद व्यर्थ हैं, ऐसे जानने की क्षमता जुटानी पडेगी। और अब तक तुमने जो भी किया वह सपना था—इसे झेल लेने की हिम्मत बडी-से-बडी हिम्मत है। मैं

अब तक गलत था, जन्मो-जन्मो तक गलत रहा—ऐसी जिसकी प्रतीति सघन हो जाती है, उसके जीवन मे सही की शुरुआत हो गई, सत्य की तरफ पहला कदम उठा। जिसने जान लिया कि मैं अज्ञानी हू, उसने ज्ञान के मदिर की तरफ पहला कदम उठा लिया।

'एक कनक अरु कामिनी, जग में दोइ फदा।' लोभ और काम—जग मे दोइ फदा। 'इन पै जो न बधावई ताका मै बदा।।' और कबीर कहते है, मैं उसके पैर दाबू, जो इन दो मे न बधे—मैं उसका बदा।

'देह धरे इन माहि बास कहु कैसे छूटे।'

लेकिन सवाल यह है कि देह मे रहते हुए, देह मे बसते हुए, इनसे कैसे सम्बन्ध छूटे? लोभ, काम कैसे छूटे? यह बडा गहन है। क्योकि देह मे हम हैं ही इसीलिए कि अतीत मे हमने कामना की, जन्मो-जन्मो तक हमने कामवासना जुटाई, उसके कारण ही हम देह मे है। इसलिए तो ज्ञानी को फिर देह नही है, उसका पुनर्आगमन समाप्त है, उसका आना-जाना बद।

हम देह मे आये ही इसलिए हैं कि हमने न मालूम कितनी वासना इकट्ठी की है और हम देह को चाहे हैं। मरते वक्त भी आदमी चाहता है, और दो क्षण रुक जाऊ। मरते वक्त भी नये जन्म की आकाक्षा रहती है, फिर जन्म-जन्म की आकाक्षा रहती है—फिर जन्म पा लू। वही आकाक्षा नये जन्म मे ले आती है, नयी देह मे ले आती है।

काम के कारण हम देह में हैं। देह का कण-कण कामवासना से बना है।

तीन वासनाए तुममे मिल रही हैं। तुम एक सगम हो महा वासनाओ के। एक तुम्हारी वासना जो कि मूल आधार है जिससे तुम पिछले जन्म से इस जन्म मे आये। फिर तुम्हारे पिता की वासना, तुम्हारी मा की वासना, जिन दोनो ने मिलकर तुम्हे देह दी। इन तीन वासनाओ से तुम बने हो। तुम्हारी देह इन तीन वासनाओ का सगम है। दो तो दिखाई पडती है, जैसे गगा और यमुना। तीसरी सरस्वती दिखाई नही पडती। दो तो दिखाई पडते है—तुम्हारे पिता और तुम्हारी माता, और तीसरी तुम्हारी वासना सरस्वती की तरह दिखाई नही पडती। वही असली है। ये दो तो सहयोगी है। क्योकि तुमने न चाहा होता तो तुम्हारे पिता और तुम्हारी माता की बासना तुम्हे इस जगत मे न ला सकती। तुमने चाहा, उनकी वासना सहयोगी बन गई—तुम गर्भस्थ हुए।

तुम्हारे शरीर का रोआ-रोआ, कण-कण वासना से बना है।

और लोभ—इसे थोडा समझ लेना चाहिए कि और सब लोभ शरीर के प्रति

हमारी जो लोभ की दृष्टि है, उसी के फैलाव हैं। तुम अपने घर के प्रति लोभी हो। क्यो ? जो व्यक्ति अपने शरीर के प्रति लोभ छोड देता है, उसका घर के प्रति लोभ अपने-आप छूट जाता है। क्योकि शरीर ही मूल घर है। फिर बाहर का घर तो इसी घर के लिए सुविधा है। जो व्यक्ति शरीर के प्रति लोभ छोड देता है उसका सोने के प्रति लोभ छूट जाता है। क्योकि सोना तो फिर इसी घर की सजावट है। और जो इस शरीर के प्रति लोभ छोड देता है, धन-सम्पत्ति से उसका लोभ अपने-आप छूट जाता है, क्योकि उस सब का उपयोग इस शरीर के लिए ही है।

तो शरीर तुम्हारे काम और तुम्हारे लोभ का आधार है। इसलिए जगत मे एक बहुत बडा चमत्कार है! अनेक बार बुद्ध से पूछा गया है कि जब आपकी वासना खो गई, जब आपको ज्ञान का आविर्भाव हो गया, जब बुद्धत्व को उपलब्ध हो गये, तो फिर आप शरीर मे कैसे जी रहे हैं ? यह प्रश्न सगत है, क्योकि अब कोई कारण नही रहा है, न शरीर के प्रति वासना है, कामना है, न लोभ है। अब आप शरीर मे कैसे हो ?

कठिन है समझना।

लेकिन बुद्ध कहते हैं, अतीत के बल के कारण—मोमेन्टम, जैसे एक आदमी साइकल चलाता है, पैडल चलाता है, तो ही साइकल चलती है, फिर पैडल रोक लेता है तो भी कुछ दूर तक साइकल चलती जाती है। मोमेन्टम—वह जो गति इतनी देर तक चलाने से पहियो को मिल गई है, अब पैडल की जरूरत नही है। कुछ यात्रा बिना पैडल के भी हो जाती है।

लोभ और काम, ये दो शरीर के पैडल हैं। इन दोनो से ही शरीर टिका है। इसलिए बुद्धपुरुष भी जी जाते हैं थोडे दिन, लेकिन उनका जीना बडा कठिन हो जाता है। लोग आमतौर से सोचते हैं कि बुद्धपुरुष बहुत स्वस्थ होगे। गलत है। बुद्धपुरुष बडी मुश्किल मे जी पाते है।

जैसा तुम्हे पता होगा—अगर तुम साइकल चलाते हो, चलती है, लेकिन कब गिरी, कब गिरी। बिना पैडल के भी थोडी चलती है, लेकिन कभी भी गिरना बना रहता है।

बुद्धपुरुष का सबध शरीर से तो टूट जाता है। अब वह शरीर मे ऐसे है जैसे नही है। ऐसे जैसे तुम वृक्ष की जडे उखाड लो तो भी दो-चार दिन हरा रह जाता है—बस! जडे तो टूट गई हैं जमीन से, लेकिन वृक्ष दो-चार दिन हरा रह जाता है। इतनी सचित जल-राशि उसके भीतर है जिससे हरा रह जाता है—सचित बल है अतीत का जिससे हरा रह जाता है।

बुद्ध भी, महावीर, रमण, रामकृष्ण—ऐसे ही शरीर मे रहते हैं . ।

रामकृष्ण कैसर से मरे। रमण भी कैसर से मरे। बडी हैरानी मालूम होती है कि रमण और रामकृष्ण जैसे व्यक्ति अगर कैसर से मरते है तो बडा अन्याय है। अन्याय वगैरह कुछ भी नही है, सोधी बात साफ है कि अब शरीर मे कोई भीतरी बल नही है, किसी तरह चल रहा है। इसलिए किसी तरह की बीमारी के लिए आधार हो सकता है। क्योकि भीतर का धक्का तो अब बद हो गया हैं, अब तो पुराने धक्के पर चल रहा है। ऐसा समझो कि मूलधन तो चुक गया है, ब्याज से जी रहा है।

'देह धरे इन माहि बास कहु कैसे छूटै।'

और फिर देह है, काम और लाभ से बना उसका सारा रूप है, आकार है—फिर कैसे इनसे सबध छूटे ?

सूत्र याद रख लेना 'सीव भए ते ऊबरे, जीवत ते लूटे।' जो मुर्दे की भाति हो गए, वे उबर गये और जो जीये वे लुटे। 'सीव भये ते ऊबरे'—शव हो गए जो, वे उबर गए। 'जीवत ते लूटै'—और जो जीते रहे, वे लुट गए।

जीसस ने कहा है, "बचाओगे—खो दोगे। खोने को राजी हो—कोई तुमसे छीन नही सकता। जीयोगे—मरोगे। मरने को राजी हो—अमृत तुम्हारा है।"

कायर हजार बार मरता है—कहते हैं—बहादुर एक बार। कायर राज मरता है, मरने से डरा रहता है, हर घडी मौत मालूम होती है, साहसी एक बार। क्योकि जैसे ही कोई मरने को राजी हो गया है इस ससार के प्रति, उसने कहा, अब मैं ऐसे जीऊगा जैसे मुर्दा, वैसे ही फिर कोई मौत नही है। क्योकि ऐसी प्रतीति मे तत्क्षण भीतर के अमृत का अनुभव हो जाता है।

मरने की कला धर्म है। इसलिए मैं कहता हू कि मैं मृत्यु सिखाता हू। कुछ और सिखाने योग्य है भी नही। जीवन तो तुम सीखे ही हो, जरूरत से ज्यादा सीख गये हो, इतना सीख गये हो कि अब उसको अन-सीखा करना मुश्किल हो रहा है। मृत्यु सीखनी है।

धर्म मृत्यु की कला है, और तुम चाहो तो कह सकते हो, अमृत की कला भी। क्योकि इधर मरे, उधर अमृत हुए। इधर तुमने ससार की तरफ से आख बद की कि अपनी तरफ आख खुली। और आख एक ही तरफ खुल सकती है—या तो बाहर देखो, या भीतर दोनो तरफ एक साथ न देख सकोगे। कैसे देखोगे ? दृष्टि या तो बाहर जा रही है तो तुम बाहर यात्रा कर रहे हो, तब अपनी तरफ पीठ है। इसलिए अमृत का पता नही चलता, कि तुम कौन हो।

जब जीवन-ऊर्जा भीतर की तरफ जा रही है—दृष्टि भीतर मुड़ती है, अन्तर्मुखी होती है—तो आख बन्द हो जाती है, सब द्वार बन्द हो जाते हैं। बाहर तुम अब नहीं जा रहे हो, अब तुम उन्मुख हो अपनी तरफ, अब तुम अपने सन्मुख हो—तत्क्षण अमृत की वर्षा हो जाती है।

सहजोबाई ने कहा है, "उस घडी मे—'बिन घन परत फुहार'।" कोई बादल नही दिखाई पडता और अमृत की वर्षा होती है। 'बिन घन परत फुहार।' रोआं-रोआं नहा जाता है। परमात्मा मे स्नान हो जाता है।

एक ही तीर्थ है—वह तुम हो। लेकिन तुम अपनी तरफ पीठ किये चल रहे हो।

'सीव भए ते ऊबरे, जीवत ते लूटे।'

क्या करो, कैसे करो कि तुम जीते-जी मुर्दा हो जाओ?

ऐसा हुआ, रूस मे एक बहुत बडा विचारक और लेखक हुआ—दोस्तोवस्की। वह जब जवान था तो क्रान्ति के कारण पकडा गया और जार ने उसे मृत्यु का दण्ड दिया। दस और साथी थे, सबको मृत्यु का दण्ड मिला। एक दिन सुबह छह बजे उनको गोली मार देने का तय था। गड्ढे खोद दिये गये। दसो को गड्ढो के ऊपर खडा कर दिया गया। सैनिक सगीने लेकर खडे हो गये। चर्च की घडी मे देख रहे है कि जैसे ही छह का घटा बजे और काटा छह बजाए, गोली मार दी जाये। एक-एक पल भारी हो गया होगा। पाच मिनट बचे, चार मिनट बचे, दो मिनट बचे—कि एक मिनट बचा—कि अब सैकण्ड-सैकण्ड का हिसाब होने लगा होगा। सबकी आखे घडी पर टिकी है। छह बजे घडी का घण्टा हुआ। गोली चलती, इसके पहले एक घुडसवार आया, भागा हुआ। सदेश दिया कि मृत्यु की सजा आजीवन कारावास मे बदल दी गई है। लेकिन जैसे ही छह की घडी का घण्टा बजा, एक आदमी तो गिर गया, यह सोचकर कि मरे, मर गये, खत्म हुआ मामला। एक आदमी तो गिर गया। खबर दे दी गई कि घबरायें मत, आजीवन कारावास मे बदल दी गई है सजा।

लेकिन वह आदमी जिन्दगीभर जिन्दा रहा, लेकिन और ही ढग से जिन्दा रहा। वह लोगो से कहता, मैं तो मर गया। लोग उसे पागल समझते। लोग उसका मजाक उडाते। लेकिन उस आदमी की जिन्दगी मे क्रान्ति हो गई। न लोभ रहा, न मोह रहा, न कोई लगाव रहा, न कोई आसक्ति रही, रहता, चलता, उठता, बैठता, काम करता—लेकिन जब भी कोई उससे पूछता तो वह कहता कि फला तारीख को सुबह छह बजे मैं मर गया।

अचानक वह आदमी सन्यस्थ हो गया।

दोस्तोवस्की भी उनमे एक था। उसने भी लिखा है कि उस घडी के बाद मैं दूसरा ही आदमी हो गया। क्योकि पक्का ही मान लिया था कि मौत होने ही वाली है। छह बजते-बजते साफ हो गया था कि बस खत्म हो गए। फिर बच गए। लेकिन उस घडी जो खत्म होने का भाव हो गया, वह क्रांति ले आया।

सन्यस्थ ऐसी ही भाव-दशा है कि तुम्हारा बोध एक ऐसी जगह आ जाये, जहा तुम इस बात को ठीक से समझ लो कि इस जिन्दगी मे कुछ भी पाने जैसा नही है। इस जिन्दगी मे सिवाय मौत के और कुछ मिलता ही नही है। बोध इतना सघन हो जाये कि तुम अपने हाथ से ही कह दो कि हम मर गए। उसी दिन से तुम जल मे कमलवत् हो जाओगे। चलोगे, काम करोगे, उठोगे, बैठोगे, लेकिन जीवन का जो स्वाद है, जो रस है, वह खो जाएगा, बाहर की तरफ जो दौड है, वह मिट जाएगी, रहे तो ठीक, न रहे तो ठीक—सब बराबर हो जाएगा।

कभी इसका छोटा-सा प्रयोग करो—एक सात दिन के लिए ही सही—कि सात दिन के लिए ऐसे जीयोगे जैसे मर गए। कोई गाली देगा तो क्रोध का कोई उपाय नही, क्योकि तुम मर गए। कोई जेब से पैसे निकाल ले, तो क्या करोगे?

ऐसा हुआ कि मुल्ला नसरुद्दीन अपनी पत्नी से पूछता था कि इस बात का पक्का कैसे होता होगा, जब आदमी मर जाता है उसको खुद को कि मै मर गया? वह कभी कभी बडे दार्शनिक सवाल उठा लेता। पत्नी ने कहा, "सिर न खाओ और बेकार की बाते मत उठाओ। जब मरोगे, तब पता चल जाएगा। हाथ-पैर ठण्डे हो जाएगे।"

अब और क्या कहे?

एक दिन गया था जगल मे लकडी काटने, सर्दी के दिन थे और ठण्डी हवा चल रही थी, हाथ-पैर ठण्डे होने लगे। उसने कहा, मारे गए। कुल्हाडी नीचे पटककर जैसा कि मुर्दा आदमी को करना चाहिए, वह जल्दी से लेट गया। अपने गधे को जिस पर लकडी ले जानी थी, उसने वृक्ष से बाध रखा था। वह लेट गया, आखें बद कर ली। उसने कहा, अब कुछ करने को नही बचा, मामला ही खत्म। अब घर खबर भी नही भेज सकते, कोई है ही नही, और हाथ-पैर ठण्डे हो रहे है। जाहिर है, पत्नी ने ठीक कहा था। वह बिलकुल मर गया। तभी दो भेडिये आ गए और उन्होने हमला किया गधे पर। मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, "अब क्या कर सकता हू? काश! आज जिन्दा होता, तो यह भेडिये मेरे गधे के साथ ऐसा व्यवहार न कर पाते। मगर अब बात खत्म हो गई।"

अगर तुम सात दिन के लिए भी सोच लो कि मर गए, तुम्हे जीवन का एक

नया दर्शन होगा। कोई गाली देगा, तुम सुनोगे—करोगे क्या? जब मर जाओगे और कब्र मे पडे रहोगे और कोई आदमी आकर गाली देगा तो क्या करोगे?

च्वागत्सु एक मरघट से निकलता था, एक खोपडी मे लात लग गई। किसी की खोपडी पडी थी। उसने बडी क्षमा मागी। उसके शिष्यो ने कहा, "क्या ना-समझी कर रहे हो? बुढापे मे सठिया गए? इस खोपडी से क्या माफी मागनी है?"

च्वागत्सु ने कहा, "यह कोई छोटे लोगो का मरघट नही है, सिर्फ राजा-महाराजा यहा दफनाए जाते है। पता नही कौन हो और पीछे झझट दे।" उन्होने कहा, "अरे, यह मर चुका है। यह राजा हो कि महाराजा, या भिखारी—सब बराबर। मौत बिलकुल समाजवादी है। तुम इसकी फिक्र छोडो। तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है? इतने बडे ज्ञानी पुरुष ?"

लेकिन च्वागत्सु खोपडी को साथ ले आया। जिन्दगीभर उसने उसको अलग न किया। उसको हमेशा बगल मे रखे रहता। लोग कहते कि जरा अच्छा नही मालूम पडता, भद्दा लगता है। यह आप क्या करते हो यह?

च्वागत्सु कहता, "इससे मुझे याद बनी रहती है कि आज नही कल, मेरी खोपडी मरघट मे पडी होगी। तुम जैसे लोग निकलेगे तो माफी भी नही मागेगे, पैर मार देंगे, और मैं कुछ भी न कर सकूगा। तो क्या फर्क है, आज भी कोई सिर मे मार जाता है, तो मैं इस खोपडी की तरफ देख लेता हू। खोपडी तो यही है। अभी चमडी मे दबी है, ढकी है, कल चमडी से ढकी नही होगी, और क्या फर्क होगा? और जब जिन्दगी तो सत्तर साल की, अस्सी साल की है, लेकिन खोपडी पडी रहेगी, न मालूम कितनी सदियो तक मरघट मे! कितने लोग निकलेगे! कितने लोग ठोकर मारेगे! कोई क्षमा भी न मागेगा। जब अनन्त काल तक यह व्यवहार होना ही है तो सत्तर साल के लिए क्यो व्यर्थ का विवाद उठाना!"

सात दिन के लिए भी अगर तुम तय कर लो, तुम दुबारा वही आदमी न हो सकोगे। खेल-खेल मे भी अगर तुम यह तय कर लो सात दिन के लिए कि मैं मर गया हू, तो भी तुम पाओगे कि एक नयी समझ का जन्म हुआ।

लेकिन जो लोग जीवन के अनुभव से जानकर मृतवत् हो जाते हैं, उनका तो कहना क्या! तब वे जीते हैं, जहा तुम जी रहे हो, तुम जैसे ही जीते है, सब काम करते है, जो जरूरी है वह होता है, लेकिन उनके जीवन मे फिर उन्माद नही रह जाता। लोभ, काम, क्रोध उनके जीवन से तिरोहित हो जाते हैं। क्योकि लोभ, काम, क्रोध तो जीवन की आकाक्षा के हिस्से हैं। जीवैषणा, लस्ट फॉर लाईफ—वह जो जीने की आकाक्षा है, वही तो लोभ, काम, क्रोध बन गई है। और जब

तुम अपनी तरफ से ही मर रहे, अपनी मौत मे ही मर रहे, तो कैसा लोभ, कैसा काम ? कुछ करना नही पडता, वे अपने-आप ही खो जाते हैं।

इसलिए इसको मैं कहता हू कुंजी : 'सीब भए ते ऊबरे, जीवत ते लूटे ।'

'एक एक सू मिलि रह्या तिनही सचु पाया ।' और जो बाहर के जगत के लिए मर गया, वह भीतर के जगत के लिए जाग गया। जो बाहर के जगत मे सो गया, वह भीतर के जगत मे प्रतिष्ठित हो गया। और वहा जो मिलन हो रहा है, वह मिलन है एक का एक से। बाहर जो मिलन है वह एक का अनेक से। भीतर जो मिलन है, वह एक का एक से है।

'एक एक सू मिलि रह्या तिनही सचु पाया।'

और अनेक झूठ है—जैसे अनेक लहरे सागर की झूठ हैं, एक सागर सच है। लहरे बनेगी, मिटेगी, सागर रहेगा। जो सदा रहे वही सच है। जो बने और मिटे, वह सपना है। अनेक असत्य है, एक ही सत्य है।

'एक एक सू मिलि रह्या, तिनही सचु पाया।'

जो एक से मिल गया, उसने सत्य पा लिया।

'प्रेम मगन लौलीन मन सो बहुरि न आया ॥'

और वहा जो घटना घटती है, वह बडी अनूठी है। प्रेमी, प्रेम-पात्र दोनो ही वहा मिट जाते हैं और प्रेम ही शेष रह जाता है।

जब प्रेमी मिलता है, इस ससार मे भी, बाहर किसी प्रेम-पात्र से, तो वे दो होते हैं। और फिर जीवनभर यही तो कोशिश होती है कि किस भाति एक हो जाये, और नही हो पाते। इसलिए जीवन मे दुख और पीडा होती है। वह हो ही नही सकता बाहर। एक होने का कोई उपाय नही, कितनी ही चेष्टा करो। जितनी चेष्टा करो, उतनी असफलता हाथ लगती है। इसलिए प्रेमी बडे दुखी हो जाते हैं। उनकी आकाक्षा तो सच है। जहा वे आकाक्षा को पूरा करने की चेष्टा कर रहे हैं, वह स्थान गलत है। वह आकाक्षा भीतर तृप्त होगी। उनकी प्यास तो सही है, लेकिन जिस सरोवर पर वे बैठे हैं, वह सूखा हे, वहा जल नही है।

जैसे ही कोई भीतर आया, वहा तत्क्षण जैसे एक ज्योति आये, और दूसरी ज्योति से मिलकर एक हो जाये। दो दीयो की ज्योतियो को पास रखो, दीये तो दो ही रहेगे, ज्योतिया एक हो जाती हैं। दीये तो कैसे एक हो सकते हैं ? दीया तो अनेक की दुनिया का हिस्सा है।

शरीर दीया है मिट्टी का। उसके भीतर जलती आत्मा की ज्योति है। तुम दीयो को एक करने की कोशिश कर रहे हो, बडी मुश्किल मे रहोगे, अडचन ही अड-

चन हाथ लगेगी, असफलता अंत में, विषाद, सताप, चिन्ता, रोग , लेकिन कभी तुम स्वस्थ न हो पाओगे। ज्योति मिल सकती है, क्योकि ज्योति निराकार है।

एक ज्योति दूसरी ज्योति के आकार से टकराती नही है, आकार है नही। एक ज्योति दूसरी ज्योति मे ऐसे लीन हो जाती है जैसे वह सदा से एक थी। तुम फर्क भी न कर पाओगे। गगा और यमुना भी मिलती हैं तो तुम फर्क कर सकते हो कि यह रही गगा, यह रही जमना, रग अलग-अलग, लेकिन जब दो ज्योतिया मिलती हैं, तो तुम कोई फर्क न कर पाओगे।

अन्तरज्योति! जब तुम भीतर जाते हो, अचानक एक लपक—और सिर्फ एक बचा। वहा न प्रेमी है न प्रेयसी है, न भक्त है न भगवान है, सिर्फ प्रेम ही बचा, ऊर्जा बची, ज्योति बची।

'प्रेम मगन लौलीन मन सो बहुरि न आया।' और जो ऐसा प्रेम-मग्न हो गया, वह फिर दुबारा नही आता। उसके आने की कोई जरूरत न रही। उसका पाठ पूरा हो गया।

'कहै कबीर निहचल भया, निरभै पद पाया।'

और जो ऐसे अतस् मे प्रवेश कर गया, उसकी ज्योति थिर हो गई, अब उसमे कोई कम्पन नही—निश्चल! कोई हवा के झोके अब उसे कपाते नही, क्योकि भीतर कोई हवा के झोंके पहुचते ही नही।

जब तक तुम बाहर हो, तब तक तुम कपते ही रहोगे। वहा हजार तूफान चल रहे है। लेकिन जब तुम भीतर अपने घर मे लौट आये, वहा कोई तूफान कभी नही पहुचता। वहा निश्चल !

'कहै कबीर निहचल भया, निरभै पद पाया।' और जब चेतना निश्चल होती है तभी निर्भय होती है, उसके पहले निर्भय हो नही सकती, भय से कपती रहती है।

'ससा ता दिन का गया, सतगुरु समझाया।'

कबीर कहते हैं, जिस दिन सद्गुरु ने यह बात समझा दी, यह कुजी थमा दी, उसी दिन सब शका मिट गई, उसी दिन सब मन के सदेह खो गए।

लेकिन समझ बडी कठिन है। बुद्धि की समझ का नाम समझ नही। तुम समझ रहे हो जो मैं समझा रहा हू, इसमे कोई अडचन नही है, बात सीधी-साफ है। तुम्हारी बुद्धि कहती है, ठीक है, मगर इससे तुम्हारा सशय न मिटेगा। अभी कहेगी, ठीक है, घडीभर बाद हजार सशय खडी कर देगी। क्योकि बुद्धि की समझ असली समझ नही है। जब तुम अपने तन-प्राण से, जब तुम हृदय से, जब तुम अपनी समग्रता से समझोगे—तभी। सतगुरु के समझाने से नही, तुम्हारी समग्रता की समझ से ।

सद्गुरु तो समझाते रहे हैं और तुम न मालूम कितने सद्गुरुओ को पार कर आये हो और समझे नही। तुम्हारी समग्रता से, प्राणपण से, तुम्हारे पूरे अस्तित्व से, जब तुम समझोगे. ।

'ससा ता दिन का गया, सतगुरु समझाया।'

समझाने को कुछ है भी नहीं, छोटी-सी बात है 'कस्तूरी कुंडल बसै।'

★ ★ ★

मन के जाल हज़ार

तीसरा प्रवचन

दिनांक १३ मार्च, १९७५; प्रातःकाल, श्री रजनीश आश्रम, पूना

चलत कत टेढ़ौ टेढौ रे ।
नऊ दुवार नरक धरि मूंदै, तू दुरगंधि कौ बेढ़ौ रे ॥

जे जारैं तौ होइ भसम तन, रहित किरम उहिं खाई ।
सूकर स्वान काग को भखिम, तामैं कहा भलाई ॥

फूटै नैन हिरदै नांहि सूझै, मति एकै नांहि जानी ।
माया मोह ममता सू बांध्यो, बूडि मुवौ बिन पानीं ॥

बारू के घरवा मं बैठो, चेतत नांहि अयाना ।
कहै कबीर एक राम भगति बिन बूडे बहुत सयांना ॥

मन की चाल समझ ले, तो सब समझ लिया। मन को पहचान लिया, तो कुछ और पहचानने को बचता नही। मन की चाल समझते ही, चेतना अपने में लीन हो जाती है। जब तक नही समझा है, तभी तक मन का अनुसरण चलता है। मन के पीछे चलता है आदमी, यही मानकर कि मन गुरु है—जो कहता है, ठीक कहता है, जो बताता है, ठीक बताता है। एक बार अपने मन पर सदेह आ जाये, तो जीवन मे क्रान्ति की शुरुआत हो जाती है। और मजा यह है कि मन सभी पर सदेह करता है, और तुम कभी मन पर सदेह नही करते। मन पर तुम्हारी श्रद्धा अपूर्व है, उसका कोई अत नही। और मन रोज तुम्हे गड्ढे मे डाले, तो भी श्रद्धा नही टूटती।

मेरे पास लोग आते है। वे कहते है लोगो की श्रद्धा उठ गई है। मैं उनसे कहता हू कि लोगो की जैसी श्रद्धा मन पर है, उसे देखकर ऐसा नही लगता कि लोगो की श्रद्धा उठ गयी है। कितना ही भटकाये मन, कितना ही सताये मन, कितना ही भरमाये मन—श्रद्धा नही टूटती। श्रद्धा तो भरपूर है—गलत दिशा मे है। आज तक मुझे कोई अश्रद्धालु आदमी नही मिला। श्रद्धा गलत दिशा मे हो सकती है, जिस पर नही होनी चाहिए, उस पर हो सकती है—लेकिन अश्रद्धालु कोई भी नही है। और दो ही श्रद्धाये हैं या तो मन की श्रद्धा है और या आत्मा की श्रद्धा है। या तो तुम अपने पर भरोसा करते हो—अपने का अर्थ है, जहा मन की कोई भनक भी नही, जहा एक विचार भी नही तिरता, जहा शुद्ध चेतना है—या तो उस शुद्ध चेतना का तुम्हारा भरोसा है। अगर उसका भरोसा है, तो तुम जीवन मे कही भी गड्ढे न पाओगे, तुम्हारा कोई पैर गलत न पडेगा। और या फिर आदमी भरोसा करता है मन पर। तब तुम गड्ढे ही गड्ढे पाओगे, तब तुम जीवन मे जहा भी जाओगे, भटकोगे ही—क्योकि मन की चाल ही ऐसी है।

मन की चाल को समझ लें।

एक, कि मन तुम्हे देखने नही देता। मन तुम्हे अधा रखता है। मन तुम्हारी

आखो को धुधला रखता है, धुए से भरा रखता हैं। वह धुआ ही विचार है। इतनी तीव्रता से मन विचारो को चलाता है कि तुम्हे जगह भी नही मिलती कि तुम देख पाओ, कि तुम्हारे बाहर क्या हो रहा है, कि तुम्हारे जीवन मे क्या घट रहा है। मन तुम्हे विचारो मे उलझाये रखता है। जैसे छोटे बच्चे को हम खिलौने दे देते है—फिर उसकी मा मर भी रही हो, तो भी वह अपने खिलौने से खेलता रहता है, खिलौनो मे उलझा रहता है।

मन तुम्हे विचार देता है, विचार खिलौने है। खिलौनो मे भी थोडा-बहुत सत्य है, विचारो मे उतना भी नही। लेकिन एक खिलौने से तुम चुक भी नही पाते कि मन तत्क्षण दूसरा निर्मित कर देता है। इसके पहले कि तुम जागकर देख पाओ, मन तुम्हे नया खिलौना दे देता है। पुराने से तुम ऊब जाते हो, तो मन नयी उलझनें सुझा देता है। एक उपद्रव बद भी नही हो पाया कि मन दस उपद्रवो मे रस जगा देता है। और यह इतनी तीव्रता से होता है कि दोनो घटनाओ के बीच खिडकी बनाने लायक भी जगह नही मिलती, जहा से तुम देख लो कि जिन्दगी मे हो क्या रहा है।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन जब बहुत बूढा हो गया, नब्बे वर्ष का हुआ, तब उसका बडा भरा-पूरा परिवार था। उसका बडा बेटा ही सत्तर पार कर रहा था। उसके बेटो के बेटे पचास पार कर रहे थे। उसके बेटो के बेटो के बेटे विवाहित हो गये थे। उनके भी बच्चे हो गये थे। अचानक एक दिन बूढे नसरुद्दीन ने कहा कि मैंने फिर से शादी करने का तय कर लिया है। पत्नी मर चुकी थी। पहले तो लडको ने मजाक समझी, हसे कि 'अब इस बुढापे मे । हम भी बूढे हो गये हैं। अब शादी! पिताजी मजाक कर रहे होगे।' लेकिन नसरुद्दीन ने जब बार-बार दुहराया, तो उन्होने गभीरता से बात ली। और जब नसरुद्दीन ने एक दिन सुबह आकर घोषणा ही कर दी कि 'मैंने लडकी तय कर ली,' तब जरा सोचना पडा। सारा परिवार इकट्ठा हुआ। उन्होने विचार किया कि इससे बडी फजीहत होगी, लोग हसेगे। ऐसे ही नसरुद्दीन की वजह से लोग जिन्दगीभर हसते रहे, और अब यह बुढापे मे आखिरी उपद्रव खडा कर रहे है। क्या कहेगे लोग? बडे लडके को सबने कहा कि तुम्ही जाकर कहो। बडे लडके ने जो सुना तो और चकित हो गया। सुना कि सामने ही एक रगरेज की लडकी से तय किया है नसरुद्दीन ने। लडकी की उम्र मुश्किल से सोलह साल है। उसने कहा, 'यह नही हो सकता। पापा, यह बद करो। यह सोच ही छोड दो। यह भी तो सोचो, उस लडकी की उम्र सिर्फ सोलह साल है।" नसरुद्दीन ने कहा, "अरे पागल! सोलह

ही तो शादी की उम्र है। और जब फिर मैंने तेरी मां से शादी की थी, तब उसकी भी उम्र सोलह साल ही थी। इसमे बुरा क्या हुआ जा रहा है ?"

मन तर्क दे रहा है। मन पीछे लौटकर नही देखता। मन अपनी तरफ नही देखता। मन सिर्फ दूसरे की तरफ देखता है।

लडके बहुत परेशान हुए और बडे बूढो से सलाह ली। डॉक्टर से भी पूछा। डॉक्टर ने कहा, "यह बहुत खतरनाक है। इस उम्र मे शादी जीवन के लिए खतरा हो सकती है।"

फिर बेटे को समझा-बुझाकर भेजा। बेटे ने कहा कि 'हम सब सलाह-मश्वरा किये है। डॉक्टर कहता है, जीवन के लिए खतरा हो सकता है। जीवन को दाव पर मत लगाओ।' नसरुद्दीन ने कहा, 'अरे पागल, यह लडकी मर भी गई तो कोई लडकियो की कमी है ? दूसरी लडकी खोज लेगे।"

मन कभी पीछे की तरफ देखता नही—अपनी तरफ नही देखता है। मन सदा दूसरे मे खोजता है सुख, दूसरे पर थोपता है दुख, दूसरे से पाना चाहता है शाति, दूसरे से ही पाता है अशाति। सदा ही नजर दूसरे पर लगी है, जबकि नजर अपने पर होनी चाहिए। तो मन के जगत का उपद्रव, मूल आधार दूसरे पर दृष्टि है।

दूसरे मे क्या प्रयोजन है ? दूसरा मौलिक नही है, मौलिक तो तुम हो। लेकिन मन सदा भरमाता है। अगर तुम दुखी हो तो मन कहता है, जरूर कोई तुम्हे दूसरा दुखी कर रहा है। तो तुम किसी न किसी पर दुख थोप देते हो। जब तुम सुखी होते हो तब भी मन कहता है, कोई दूसरे के कारण सुख मिल रहा है। तब तुम सुख दूसरे पर थोप देते हो, और मजा यह है कि दुख भी अपने कारण मिलता है, सुख भी अपने कारण मिलता है। नर्क भी भीतर है, और स्वर्ग भी भीतर। अतत तुम ही निर्णायक हो, क्योकि तुम्हारी व्याख्या पर ही निर्भर करेगा कि क्या सुख है और क्या दुख है। चाहो तो सुख दुख जैसा हो जाता है, चाहो तो दुख सुख जैसा हो जाता है। क्षणभर मे बदल जाती है बात।

दूसरा निर्णायक नही है, लेकिन मन सदा दूसरे पर मन को अटकाये रखता है। और जन्मो-जन्मो से तुम यही कर रहे हो, और दूसरे पर थोप रहे हो। फिर तुम स्रोत को नही पाते। पा नही सकते, क्योकि जहा से सुख-दुख उठते हैं, वहा नजर ही नही है! जहा से सुख-दुख उठते हैं, अगर वहा नजर जाये, तो सुख भी छोड दोगे और दुख भी छोड दोगे। तब जो शेष रह जाता है, वही आनन्द है। तब जो सुगध तुम्हे मिलेगी, तब जो सुवास तुम्हारे जीवन को भर देगी—वही मोक्ष है।

जब तुम दूसरे को देखते हो कि दूसरा दुख दे रहा है, तो तुम्हारी कोशिश होगी

है दूसरे को बदलने की, स्वभावत, जो दुख देता है उसको बदलना है, ताकि दुख न मिले। अनन्त लोग हैं। तुम उनको बदलने मे लगे हो। पति पत्नी को बदल रहा है, पत्नी पति को बदल रही है, बाप बेटे को बदल रहा है, बेटा भी कोशिश मे लगा है कि बाप को बदल दे, मित्र मित्र को बदल रहे हैं—सब एक-दूसरे को बदलने मे लगे हैं।

दूसरे को तुम कैसे बदल सकते हो? दूसरा स्वतत्र है। उसकी अपनी नियति है। दूसरे का अपना आधार है, अपना केन्द्र है। दूसरे का अपना स्रोत है, जहा से उसके मनोभाव उठते हैं। तुम दूसरे को नहीं बदल सकते। तुम अगर किसी को बदल सकते हो, तो स्वय को। लेकिन वहा तो नजर ही नही। मन वहा देखने ही नही देता।

जैसे ही कोई व्यक्ति स्वय को देखता है, वह पाता है सुख भी यही से उठते हैं, दुख भी यहीं से उठते हैं। न केवल यही है, जल्दी ही उसको दिखाई पडने लगता है कि हर सुख के साथ उसका दुख जुडा है, हर फूल के पास उसका काटा है, और हर दिन के पीछे छिपी उसकी रात है। जैसे-जैसे तुम भीतर आते हो, वैसे वैसे साफ होने लगता है कि अगर तुमने सुख चुना, तो दुख भी चुन लिया। हर सुख का अपना दुख है। हर स्वर्ग के पास उसका नर्क है, जरा भी दूर नही—सयुक्त हैं। एक ही द्वार है दोनो का। जैसे ही तुमने सुख को चुना, तत्क्षण तुमने दुख को चुन लिया—जैसे ये एक ही सिक्के के दो पहलू हो।

जिस दिन यह दिखाई पड जाता है—पहला अनुभव कि सुख-दुख भीतर से उठते हैं, दूसरा अनुभव कि हर सुख और दुख सयुक्त है—तब दुख और सुख मे कोई भेद नही रह जाता। और जो आदमी जान लेता है कि स्वर्ग और नर्क मे कोई भी भेद नही, वह दोनो को छोड देता है।

मन कोशिश करता है दुख को छोडने की और सुख को बचाने की। ज्ञानी दोनो को छोड देता है, क्योकि दोनो या तो साथ बचते हैं, या साथ जाते है।

तुम सिक्के का एक पहलू बचाओगे—कैसे बचा पाओगे? दूसरा पहलू भी बच जायेगा। ज्यादा से ज्यादा इतना ही कर सकते हो कि जो पहलू तुम्हे पसद है उसे ऊपर कर लो, जो पहलू तुम्हें पसद नही है उसे नीचे कर दो, लेकिन वही दूसरा पहलू भी छिपा है।

हर दीये के तले अधेरा है, और हर सुख के नीचे छिपा दुख है। देर-अबेर वह जो नीचे छिपा है, प्रगट होगा। और जीवन का एक महत्वपूर्ण नियम है कि अगर तुमने सुख को ऊपर रखा और सुख को भोगा तो सुख चुक जायेगा, और जब सुख चुक जायेगा तो दुख उठना शुरू हो जाएगा। जिसको तुमने भोगा, वह

चुकेगा, और जिसको नही भोगा, वह बचा हुआ है—उसको कौन भोगेगा? एक पहलू तुमने खर्च कर लिया, अब दूसरा पहलू बचा है, अब उसे भी भोगना पड़ेगा।

यह दूसरी प्रतीति है भीतर जाते यात्री की, कि सुख-दुख सयुक्त हैं। तो इसका अर्थ हुआ कि सुख दुख हैं। उनमे जरा भी भेद नही। भेद मन की भ्राति थी। मन की टेढी-मेढी चाल के कारण भेद मालूम पडता था। सुख-दुख दोनो छूट जाते हैं। छोडना भी नही पडता। यह एहसास, यह प्रतीति, यह अनुभव कि दोनो एक हैं—फिर छोडना भी नही पडता। जैसे अगारा हाथ मे रखा हो—छोडना पड़ेगा? समझ मे आया कि अगारा है, कि छूट जायेगा। जैसे घर मे आग लगी हो, तो निकलने के लिए कुछ प्रयास करना पड़ेगा? पता चला की आग लगी है कि तुम बाहर हो जाओगे। तुम फिर यह भी न पूछोगे कि कहा से बाहर जाऊ, रीति-रिवाज क्या है, सभ्य मार्ग क्या होगा? तुम खिडकी से छलाग लगाकर निकल जाओगे। तुम यह न पूछोगे कि खिडकी से निकलना उचित-अनुचित, शिष्ट-अशिष्ट है। जब घर मे आग लगी हो तो शिष्टाचार को कोई पूछता है? तब तुम कही से भी छलाग लगाकर निकल जाओगे। तुम बाहर हो जाओगे—घर मे आग लगी है, यह एहसास भर हो जाये।

जैसे कोई भीतर जाता है, वैसे ही सुख दुख एक ही हो जाते हैं, तत्क्षण छूट जाते हैं। जो शेष रह जाता है, वही मोक्ष है। जो शेष रह जाता है वही तुम हो। जो शेष रह जाता है वही परमात्मा है। लेकिन मन तुम्हे भीतर नही जाने देता। मन कहता है, दूसरे ने दुख दिया। मन कहता है, दूसरे ने सुख दिया। मन दूसरे पर अटकाये रखता है। यह मन की पहली कुशलता है।

दूसरी कुशलता मन की, कि वह हमेशा आधे को दिखलाता है और आधे को नही देखने देता। जैसे कि चाद का हम देखते हैं, तो आधा चाद दिखाई पडता है आधा नही दिखाई पडता, उस तरफ का पहलू छिपा रहता है। मन जो भी देखता है, हमेशा आधे को देखता है। मन पूरे को नही देख सकता। चाद तो बडी चीज है। तुम्हारे हाथ मे एक ककड भी रख दे, छोटा सा, एक रेत का कण रख दे, उसको भी तुम पूरा नही देख सकते, आधा ही दिखेगा, आधा उस तरफ जो है, वह छिपा रहेगा। मन आधे को ही देख सकता है। मन आधे को देखने की व्यवस्था है।

इसलिए तो मन के कारण द्वैत पैदा होता है, क्योकि आधे को देखता है, उसे समझता है, यह पूरा है, फिर दूसरे आधे को देखता है, उसे समझता है, यह पूरा है—और दोनो को कभी साथ तो देख नही सकता इसलिए उनको एक कैसे माने?

इसलिए जहा एक है वहा मन दो देखता है। और जब तुमने एक की जगह दो देख लिया, ससार खडा हो जाता है।

तुम देखते हो, यह आदमी मित्र है और वह आदमी शत्रु है, लेकिन मित्र मे शत्रु छिपा है। मित्र कभी भी शत्रु हो सकता है। और शत्रु मे मित्र छिपा है। शत्रु कभी भी मित्र हो सकता है–कोई अडचन नही है, कोई बाधा नही है।

तुम्हारे प्रेम मे घृणा छिपी है, घृणा मे प्रेम छिपा है। लेकिन मन दो करके देखता है–घृणा को अलग, प्रेम को अलग, शत्रु को अलग, मित्र को अलग, सुख को अलग, दुख को अलग। और जब तुम एक को दो करके देख लेते हो, फिर तुम जो भी करोगे वह गलत होगा। बुनियाद से गलती शुरू हो गयी। प्रारभ से ही भूल हो गयी।

मुल्ला नसरुद्दीन एक रात शराब पीकर घर लौट रहा है।

शराबी को एक की जगह अनेक चीजे दिखाई पडने लगती है। चीजे अनेक हो नही जाती। अगर तुमने कभी शराब पी है या भाग के नशे मे आ गए हो, तो तुम्हे पता होगा कि एक चीज दो दिखाई पडने लगती है, तीन दिखाई पडने लगती है, चार दिखाई पडने लगती है। जैसे-जैसे नशा बढता है–क्या होता है? जैसे-जैसे नशा बढता है, भीतर तुम्हारी चेतना कपने लगती है। उसकी जो थिरता है खो जाती है, जा चैन है वह खो जाता है, चेतना कपने लगती है। और जब चेतना कपने लगती है, तो उसके कपन के कारण एक चीज बहुत होकर दिखाई पडती है। जैसे चाद झील पर प्रतिबिम्ब बना रहा है झील शात है–अकप, तो एक चाद दिखाई पडता है झील मे। एक ककड फेक दो, झील मे लहरे उठ गई है, कम्पन हो गया, झील कप गई–अब एक चाद हजार चाद मे टूट गया। अगर तुम झील को बहुत ही कपा दो तो चाद दिखाई ही न पडेगा, बस चाद के टुकडे ही टुकडे पूरी झील पर फैल जाएगे चाद एक है, झील कप गई।

नशा तुम्हारी चेतना को कपा देता है। झील कप गई है–अब चीजे अनेक दिखाई पडने लगती हैं।

मुल्ला नसरुद्दीन घर आया है, नशे मे डूबा है। ताले मे चाबी डालने की कोशिश करता है, लेकिन ताले मे चाबी नही जाती। छेद और चाबी को मिला नही पाता। हाथ कप रहे है। एक पुलिसवाला रास्ते पर खडा देख रहा है। आखिर उसने कहा, "नसरुद्दीन, क्या मैं सहायता करू? ताले मे चाबी डाल दू?"

नसरुद्दीन ने कहा, "अगर सहायता ही करनी है तो जरा तुम मकान को सम्हाले रखो, तो मैं चाबी डाल लू।" नशाखोर को यह नही दिखाई पडता है कि मैं कप

रहा हू, उसे दिखायी पडता है कि मकान कप रहा है–'मकान को सम्हाले रखो!'

एक और दिन ऐसा ही नशा करके नसरुद्दीन घर लौटता था, एक वृक्ष से टक्कर हो गई। बडी मुश्किल मे पड गया। वृक्ष तो एक था, उसको दो दिखाई पड रहे थे। तो वह दोनो के बीच से निकलने की कोशिश करने लगा। और कोई उपाय भी नही था, तो दोनो के बीच से निकलने की कोशिश कर रहा था। जैसे ही कोशिश करता, सिर टकरा जाता। वृक्ष तो एक ही था। अनेक बार कोशिश की। तब वह जोर से चिल्लाया कि मारे गये, यह तो बडा जगल है। यह कोई एक वृक्ष नही है यहा, जिसमे से निकल जाम्रो, बहुत वृक्ष हैं।

बडी पुरानी कथा है। एक कुत्ता एक राजमहल मे प्रवेश कर गया। उस महल के राजा ने उस महल को सिर्फ दर्पणो से बनाया था। दीवाल पर दर्पण ही दर्पण थे। पूरा काच का ही बना था। कुत्ता मुसीबत मे पड गया। जहा देखा, अनेक कुत्ते दिखाई पडे। घबडा गया, यह तो कोई एकाध कुत्ता नही है, कुत्तो की पूरी सेना मालूम पडती है। और भागने का उपाय नही दिखता, चारो तरफ घेरे खडे है। और जैसा कि कुत्तो की आदत होती है, कि पहले उसने डराने की कोशिश की कि डर जाए ये लोग, लेकिन जितना उसने कुत्तो को डराया, उतना कुत्तो ने उसे डरवाया, क्योकि वे उसी के प्रतिबिम्ब थे। जैसे ही कुत्ता झपटा और भौका, हजारो कुत्ते झपटे और भौके। क्योकि वे वहा थे ही नही, वे उसी की छायाये थे। कुत्ता दपणो से टकराया, झपट्टा मारा। उसके प्रतिबिम्ब कुत्ते से टकराए। सिर लहूलुहान हो गया। सुबह कुत्ता मरा हुआ पाया गया। वहा कोई भी न था।

जहा कुछ भी नही है, वहा भी तुम्हारे भीतर के कम्पन झूठे अस्तित्व को निर्मित कर लेते है। उस झूठे अस्तित्व को ही हमने माया कहा है। माया बाहर नही है। तुम्हारे कपते हुए चित्त के कारण, जो है, वह तो एक है, लेकिन वह अनेक होकर दिखाई पड रहा है। और तुम्हारी कोशिश वही है जो मुल्ला नसरुद्दीन ने सिपाही से कही थी कि जरा तुम मकान को सम्हाल लो, तो मैं ताले मे चाबी डाल दू।

तुम्हारी भी कोशिश यही है कि कैसे मकान को थिर कर लिया जाये। कोई भी नही कर पाया। ज्ञानियो ने मकान की फिक्र छोड दी, अपने को थिर कर लिया–सब थिर हो जाता है। जरूरत है कि नशा उतर जाये। मकान तो थिर ही है, वह कभी हिला ही न था। यह अस्तित्व कभी हिला ही नही है। यह बिलकुल थिर है। यह अपने मे बिलकुल लीन है। यह स्वभाव मे डूबा है। तुम हिल गये हो। लेकिन तुम अस्तित्व को सम्हालने की कोशिश कर रहे हो।

मन द्वैत का सूत्र है, और अनेक का भी सूत्र है। मन से गुजरकर चीजे वैसे ही

हो जाती है जैसे सूरज की किरण को अगर तुम एक काच के टुकड़े से गुजरने दो। कई पहलुओ का काच का टुकडा ले लो—प्रिज्म उस टुकडे को कहा जाता है। उसमे तराशे हुए कई पहलू हैं। सूरज की किरण गुजरती है उससे जब आती है तो एक होती है, जब उससे बाहर निकलती है तो सात हो जाती है। इसलिए तो इन्द्र-धनुष निर्मित होता है। इन्द्रधनुष निर्मित इसलिए हो जाता है कि हवा मे वर्षा के दिनो मे पानी के कण लटके होते हैं। वे पानी के कण प्रिज्म का काम करते हैं। उन पानी के कणो मे से सूरज की किरण गुजरती है, टूटकर सात हो जाती है, सात रग दिखाई पडने लगते हैं।

जगत तुम्हारे मन से गुजरा हुआ इन्द्रधनुष है। किरण तो परमात्मा की एक है। उसकी रोशनी एक है। अस्तित्व का स्वभाव एक है। अस्तित्व एक है। लेकिन तुम्हारे मन की लटकी हुई बूद से, एक गुजरकर सात मे टूट जाता है, सब चीजे खड-खड हो जाती हैं, और मन कहता है यही सत्य है। और मन तुम्हे कभी लौट-कर नही देखने देता, जहा से सात पैदा हुए, जहा एक से सात का जन्म हुआ।

सारे ध्यान के प्रयोग मन से पीछे लौटने के प्रयोग हैं।

मन की तीसरी टेढी चाल है कि मन बडा तर्कनिष्ठ है। वह हर चीज के लिए तर्क देता है, और तर्क ऐसी सुगमता से देता है कि तुम्हे भी लगने लगता है कि ठीक ही तो बात है।

अस्तित्व तर्क से बहुत बडा है। और मन छोटे छोटे तर्क के आगन बना लेता है—साफ-सुथरे, सब ठीक-ठीक मालूम पडता है। लेकिन आगन के पार जो अस्तित्व है, वह अतर्क्य है। वह तर्क जैसा नही है। वह गणित का कोई प्रयोग नही है। वह गणित से ज्यादा काव्य है। काव्य से भी ज्यादा वह रहस्य की अनुभूति है।

तो मन कहता है, 'ईश्वर हो ही नही सकता। कहा है दिखाओ? क्योकि जो भी है, वह दिखाया जा सकता है। और तुम तो कहते हो ईश्वर ही ईश्वर है, वही सब जगह है—तो दिखाओ, मौजूद करो।' मन ने एक सवाल उठाया जिसका जवाब तुम न दे पाओगे, क्योकि ईश्वर दिखाया नही जा सकता, वह देखनेवाला है। वह बाहर दृश्य की तरह नही है, तुम्हारे भीतर द्रष्टा की तरह है। और मन ने एक सवाल उठाया जो कि बडी अडचन का है, वह कहता है, दिखा दो। न दिखा पाओगे तो मन हसेगा, और कहेगा मूढ हो, नासमझ हो, अज्ञानी हो, अधविश्वासी हो, जो दिखाया नही जा सकता उसको मानते हो। मन कहता है, हम तो अनुभव को मानते है, और जब तक अनुभव न हो जाये तब तक हम मानते नही।

मन ठीक ही कहता लगता है। तर्क मे कही भूल-चूक नही है। भूल-चूक है तो

इतनी बुनियादी है कि जब तक तुम मन से थोडे सरकोगे न, तुम्हारी समझ मे न आयेगी ।

मन कहता है कि दृश्य की तरह परमात्मा को दिखा दो। लेकिन परमात्मा का स्वभाव दृश्य की तरह नही है । परमात्मा का स्वभाव द्रष्टा का है, साक्षी का है। परमात्मा चैतन्य है, वस्तु नही है । चेतना को देखा नही जा सकता, चेतना मे लीन हुआ जा सकता है । चेतना को गणित से सिद्ध नहीं किया जा सकता, चेतना को तो रहस्य की एक अनुभूति मे अनुभव किया जा सकता है । चेतना को प्रयोगशाला मे पकडा नही जा सकता, अगर पकडने की कोशिश की तो तुम खो दोगे ।

एक जिन्दा आदमी को ले जाओ प्रयोगशाला मे, अग-अग काट डालो हड्डी मिलेगी, मास-मज्जा मिलेगी, चमडी मिलेगी, खून मिलेगा, एल्युमिनियम, लोहा, सब धातुए मिल जाएगी, बस एक चीज न मिलेगी--आत्मा, लाश मिलेगी, जीवन न मिलेगा । क्योकि तुमने काटा, उसी वक्त जीवन तिरोहित हो जाता है। ऐसे ही जैसे कि एक फूल का कोई विश्लेषण करे । तुम्हे मैं एक फूल दिखाऊ, कहू कि देखो, यह गुलाब का फूल कितना सुदर है, और तुम कहो, 'कहा है सौंदर्य ? गुलाबी रग दिखाई पडता है, मान लेते हैं, पखुडिया हैं, कोमल हैं, मान लेते है, गध है, मान लेते हैं-- लेकिन सौदर्य कहा ? सौंदर्य दिखाओ, प्रयोगशाला मे सिद्ध करो ।' तो फूल को तुम तोड डालो । जीवित पखुडिया मुरझा जाएगी, मृत हो जाएगी । जहा रस की धार बहती थी, वहा रस की धार सूख जाएगी । जहा से सुगध उठती थी, जल्दी ही सुगध तिरोहित हो जाएगी । फिर पखुडियो का तुम रासायनिक विश्लेषण कर लो, तो पाच-सात छोटी-छोटी बोतलो मे लेबल लगाकर तुम बता दोगे कि इसमे इतनी मात्रा मे फला पदार्थ है, इतनी मात्रा मे फला पदार्थ है । लेकिन ऐसी तो एक भी बोतल न होगी उनमे, जिसमे तुम कहो कि इतनी मात्रा मे सौदर्य है ।

मन तर्कनिष्ठ है । जीवन एक रहस्य है । जीवन कोई गणित नही है । जीवन किसी दुकानदार का हिसाब नही है । जीवन तो किसी प्रेमी की अनुभूति है । जीवन तो किसी कवि का स्वर है । जीवन तो किसी सगीतज्ञ की लहर है । जीवन सौदर्य जैसा है, काव्य जैसा है, प्रेम जैसा है। जीवन परम रहस्य है, और मन कहता है गणित ।

मन की चाल बडी टेढी-मेढी है । इसको खयाल मे ले ले, फिर कबीर का यह पद एकदम साफ होने लगेगा ।

'चलत कत टेढी-टेढ़ो रे'

कबीर कहते हैं, "ए मन, टेढा-टेढा क्यो चलता है, सीधा क्यो नही जाता ?" और मन बडा टेढ़ा-टेढ़ा चलता है !

तुमने कभी शराबी को चलते देखा है?—सीधा नही चल सकता, टेढा-टेढा चलता है, एक पैर इस दिशा मे, दूसरा पैर दूसरी दिशा मे। इसलिए तो अक्सर वह नाली मे गिरा हुआ पाया जाता है। तुम बीच सडक मे शराबी को गिरा हुआ न पाओगे, नाली मे गिरा हुआ पाया जाता है। टेढा-टेढा चलता है। टेढेपन ये हैं कि जहा रहस्य है, वहा तर्क उठाता है। तर्क बडी टेढो चीज है। तर्क से ज्यादा टेढा इस ससार मे कुछ भी नही है। क्योकि तर्क से तुम, जो है उसे सिद्ध कर सकते हो कि नही है। तर्क से, जो नहीं है उसे तुम सिद्ध कर सकते हो कि वह है। लेकिन ये हवाओ मे बनाये गये घर हैं, इनका अस्तित्व मे कोई अर्थ नही।

मुल्ला नसरुद्दीन का बेटा स्कूल से पढकर लौटा, विश्वविद्यालय से शिक्षित हुआ था। सबसे बडी उपाधि लेकर घर आया। तो जैसा कि अक्सर युनिवर्सिटी से लौटनेवाले बच्चो को जल्दी होती है दिखाने की कि वे कितना जानकर आए हैं, कितना सीखकर आये है, प्रभावित करने का मन होता है। और युनिवर्सिटी से लौटनेवाले सभी बच्चे मा-बाप को मूढ समझते है। साझ को खाना खाने बैठे थे, नसरुद्दीन की पत्नी ने लाकर दो अमरूद एक प्लेट मे रखे। बेटे ने कहा कि देखे, विश्वविद्यालय मे कैसी अद्भुत बाते सिखायी जाती है! मैं तर्क का स्नातक हू।' उसने अपनी मा को कहा कि 'इसमे, प्लेट मे कितने अमरूद है?' उसकी मा ने कहा, दो हैं। बेटे ने कहा, मैं सिद्ध कर सकता हू तर्क से कि तीन है। मा उत्सुक हुई। नसरुद्दीन तो बैठा रहा चुपचाप, देखता रहा। मा उत्सुक हुई। उसने कहा, सिद्ध करा। तो बेटे ने कहा कि देखो, यह अमरूद एक, यह अमरूद दो—दो और एक मिलकर कितने होते हैं? मा ने कहा कि बात तो ठीक है दो और एक मिलकर तीन होते हैं। मा सीधी, भोली-भाली—थोडी मुश्किल मे पड गई। बेटे ने नसरुद्दीन की तरफ देखा। नसरुद्दीन ने कहा कि बिलकुल ठीक! एक हम ले लेगे, दो तेरी मा खा लेगी, तीसरा तू खा लेना।

तर्क हवा है, उसे खाया नही जा सकता, न तर्क को जीया जा सकता है, न तर्क को भोगा जा सकता है। लेकिन तर्क मन पर बडा भारी है। और मन तर्क से चल रहा है। इसलिए जीवन से तुम वचित हो।

जीवन सीधा-सीधा है। उससे सरल और सुगम कुछ भी नही है। तर्क टेढा-टेढा है। इसलिए कबीर कहते हैं, 'चलत कत टेढौ-टेढौ रे'—सीधा क्यो नही चलता? साफ रास्ता है, इधर-उधर क्यो उतरता है? यहा-वहा की बहकी-बहकी बातें क्यो करता है?

अपने मन को समझने की कोशिश करना। जब तक तुम तर्क ही करते रहोगे

तब तक समझना, तुम टेढे-टेढे जा रहे हो, तब तक जो सीधे-सीधे मिलता था, उससे तुम वंचित रहोगे ।

मदिर के द्वार खुले हैं। राह सीधी-साफ है। जरा-भी कोई बाधा नही है। लेकिन मन तुम्हे यहा-वहां उतार ले जाता है। मन तुम्हे राह से उतार देता है। मन तुम्हे बेराह कर देता है, और इतनी कुशलता से करता है कि तुम्हे कभी खयाल भी नही आ पाता।

एक मित्र मेरे पास आये, कुछ दिन पहले। कहा कि 'मन बडा अशान्त है, और शाति अब एकदम आवश्यक है, नही तो मैं जी न सकूगा। आत्मघात तक का मन होता है।' धनी हैं, सब सुख-सुविधा है, राजनीति के बडे पदो पर रहे हैं। मैने उनसे पूछा, तो फिर प्रार्थना करो। कहने लगे, प्रार्थना मे मन नही लगता। 'ध्यान करो।' कहने लगे, ध्यान की बिलकुल इच्छा नही होती।

मन अशान्त है, लेकिन ध्यान मे मन नही लगता! मन अशान्त है तो भी मन की ही सुने जा रहे हो। मन आत्महत्या के करीब ले आया है। कहता हू, प्रार्थना करो, कहते हैं, चाह नही उठती मन मे। जो आत्महत्या के करीब ले आया है, उस पर भरोसा नही छूटता। मन अशान्त है, श्रद्धा उसी पर है! जिसने इतनी अशान्ति दी, मैं कहता हू इसे छोडो, इसकी मानना बद करो। वे कहते है कि मै मन के ऊपर जाने के लिए आपके पास नही आया हू, मैं तो सिर्फ मन की शान्ति चाहता हू।

अब यही बडा खेल है, और यही मन के तर्क उलझा देते हैं। मन कहता है, मन की शाति चाहिए। और मन की शाति कभी होती नही, क्योकि जब तक मन होता है तब तक शान्ति होती ही नही।

मन ही तो अशाति है। तो मन कभी शान्त होनेवाला है? तुमने कभी सुना कि कभी किसी का मन शात हो गया हो?

यह तो ऐसे ही है जैसे कि तुम चिकित्सक के पास जाकर पूछो कि मेरी बीमारी को स्वस्थ होने का कोई उपाय बता दे। तुम स्वस्थ होओगे, बीमारी स्वस्थ नही होएगी। तुम शात होओगे, मन शात नही होगा। और जब तक बीमारी है तब तक तुम स्वस्थ कैसे होओगे? और तुम पूछ रहे हो कि बीमारी को स्वस्थ करने की कोई औषधि दे दे।

सागर मे तूफान उठता है, पहाडो की तरह लहरे उठती है—उस क्षण मे सागर अशात है, तूफान है। क्या तुम पूछते हो कि जब सागर शान्त हो जाएगा, तब क्या होगा? तूफान रहेगा? शान्त होकर रहेगा? तूफान नही रहेगा। शाति का अर्थ

है तूफान का न हो जाना। शांति का अर्थ है मन का न हो जाना।

मन तूफान है। मन तुम्हारे भीतर उठी तरगे हैं, लहरे हैं। मन का ही सारा उपद्रव है। और तुम पूछते हो, 'उपद्रव कैसे शात हो?' उपद्रव शात होने का एक ही उपाय है कि उपद्रव न हो।

वे कहने लगे, "आप तो गहरी बाते करने लगे; मैं तो केवल मन की शाति के लिए आया था।"

मन से गहरे न जाओ, तो मन की शाति नही हो सकती। क्योकि मन के गहरे न जाओ तो तुम मन मे ही ग्रस्त रहते हो। उससे पीछे हटने का तुम्हारे पास उपाय नही है। पीछे हटने का उपाय बताया जाये, तो तुम कहते हो, मन को भाता नही। तुम बीमारी से पूछते हो कि औषधि भाती है या नही? बीमारी से पूछोगे तो औषधि भायेगी ही क्यो?

समझ लो कि तुम्हे बीमारी है कोई—क्षयरोग हो गया है। क्षयरोग के कीटाणु तुम्हे खाये जा रहे हैं। उन कीटाणुओ से पूछो कि औषधि भाती है? वे कीटाणु कहेगे, 'हमारी जान लेनी है?' क्योकि उन कीटाणुओ के लिए तो औषधि मौत है। उन कीटाणुओ का जीवन तुम्हारी मौत है।

विचार कीटाणुओ की तरह है। मन एक रोग है, महा रोग है। और जब कोई कहता है, ध्यान करो तो तुम कहते हो, मन को भाता नही। इसी मन से पूछते हो? और मन तो कहेगा कि नही भाता, क्योकि किसको अपनी मौत भाती है?

ध्यान मन की मौत है।

तो मन तुम्हे ध्यान से बचाएगा। वह हजार बहाने खोजेगा। वह कहेगा कि इतनी सुबह, इतनी सर्द सुबह, कहा उठकर जा रहे हो? थोडा विश्राम कर लो। रातभर वैसे तो नीद ही नही आई, और अब सुबह से ध्यान? वैसे तो थके हो, अब और थक जाओगे। शात पडे रहो। कल चले जाना। इतनी जल्दी भी क्या है? कोई जीवन चुका जा रहा है?

हजार बहाने मन खोजता है। कभी कहता है, शरीर ठीक नही है, तबीयत जरा ठीक नही। कभी कहता है, घर मे काम है। कभी कहता है, बाजार है, दुकान है। हजार बहाने खोजता है। ध्यान से बचने की मन पूरी कोशिश करता है। क्योकि ध्यान सीधा रास्ता है जो मदिर मे ले जाता है। वह यहा-वहा ले जाता है।

'चलत कत टेढौ-टेढौ रे।'

मन सीधा चल ही नही सकता। अगर तुम मेरी बात ठीक से समझो तो मन का अर्थ ही है टेढा टेढा चलना। टेढी चाल का नाम मन है। जैसे ही चाल सीधी

हुई कि मन गया। मन सीधी चाल में बचता ही नही। इसलिए सरलता से मन भागता है, जटिलता को चुनता है। जितनी जटिल चीज हो उतनी मन को रुचती है। जितनी कठिन चीज हो उतनी मन को रुचती है। हिमालय चढ़ना हो, जचता है। परमात्मा मे जाना हो, नहीं जचता, क्योंकि इतनी सरल घटना है कि वहा कोई चुनौती नही है, वहा कोई चैलेंज नही है। कठिन को जीतने मे मजा आता है मन को। सरल को जीतने का उपाय ही नही है। सरल को क्या जीतोगे?

परमात्मा से लोग वचित हैं—इसलिए नही कि वह बहुत कठिन है, इसलिए वचित हैं कि वह बहुत सरल है, इसलिए वचित नही हैं कि वह बहुत दूर है, इसलिए वचित हैं कि वह बहुत पास है। उसमे चुनौती नही है।

दूर की यात्रा पर तो मन निकल जाता है, पास की यात्रा मे यात्रा ही नही है—जाना कहा है?

तो जितना तुम्हारा मन किसी चीज मे जटिलता पाता है उतना ही रस लेता है, क्योंकि चाल टेढी-मेढी करने की सुविधा है। सीधे-सीधे में, साफ-सुथरे मे, मन कहता है, 'कुछ रस नही, क्या करोगे? बात इतनी साफ सुथरी है, कोई भी पहुच सकता है—तुम्हारी क्या विशिष्टता?'

इसलिए तुम्हे कहू, इसे ठीक से सुन और समझ लेना धर्म बडी सीधी चीज है, लेकिन मन के कारण पुरोहितो ने धर्म को बहुत जटिल बनाया, क्योकि जटिल की ही अपील है। तो उलटी-सीधी हजार चीजे धर्म के नाम से चल रही हैं। उपवास करो, शरीर को सताओ, शीर्षासन करके खडे रहो—उल्टा-सीधा बहुत चल रहा है। और वह इसलिए है क्योंकि तुम्हे जचता है। अगर मैं तुमसे कहू कि बात बिलकुल सरल है, बात इतनी सरल है कि कुछ करना नही है, खाली सिर्फ शात बैठकर भीतर देखना है—तुम मुझे छोडकर चले जाओगे। तुम कहोगे, 'जब कुछ करने को ही नही है, तो क्यो समय खराब करना? कही और जायें जहा कुछ करने को हो।'

सौ गुरुओ मे निन्यानवे जटिलता के कारण जीते हैं। वे जितने दाव-पेच तुम्हे बता सकते है, उतने बता देते है और दाव-पेच मे तुम उलझ जाते हो, मन बडा रस लेता है, पहुचते कभी भी नही। नही पहुचते तो गुरु कहते हैं 'पहुचना कोई इतना आसान है? जन्मो-जन्मो की यात्रा है।' नही पहुचते तो गुरु समझाते हैं कि यह तो कर्मों का बडा जाल है, यह कही इतने जल्दी होनेवाला है? कभी हुआ है ऐसा? जन्मो-जन्मो तक लोग चेष्टा करते है, तब होता है।' अब दूसरे जन्म मे इन्ही गुरुओ से मिलने का उपाय तो है नही। पिछले जन्म मे जिन गुरुओ ने जटिल साधनाए दी थी, उनसे मिले इस जन्म मे कि पूछ लो कि अब भी नही हुआ? वह बात

ही नही होती, क्योकि दोबारा मिलने का कोई उपाय नही। मिल भी लो तो पहचान नही होती। तुम खुद को भूल गये हो, तुम्हारे गुरु भी अपने को भूल गए है–इसलिए धधा चलता है।

जटिलता पर सारा खेल है।

तुम समझो इसे हीरे-जवाहरात बहुमूल्य हैं, क्योकि न्यून हैं। उनका मूल्य उनकी न्यूनता मे है, खुद मे कोई मूल्य नही है। कोहिनूर दो कौडी का नही है। क्या करोगे–खाओगे, पीओगे? समझ लो कि कोहिनूर हर सडक पर पडे हो, ककड-पत्थर की तरह पडे हो, फिर क्या करोगे? कोहिनूर की कीमत खत्म हो जाएगी। दुनिया-भर मे हीरे-जवाहरात जितने हैं उतने बाजार मे लाये नही जाते, क्योकि बाजार मे लाने से उनकी कीमत गिर जाएगी। बडे-बडे भडार हैं हीरे-जवाहरातो के, उनको रोककर रखा जाता है। और धीरे-धीरे बहुत कम सख्या मे हीरे-जवाहरात बाहर निकाले जाते है, क्योकि अगर उनको सारा का सारा निकाल दिया जाये तो उनकी कीमत ही मिट जाये इसी वक्त। उनकी कीमत उनकी न्यूनता में है।

कोहिनूर एक है, इसलिए मूल्यवान है। क्या कारण होगा इसके मूल्य का? इतना है कि इसको पाना कठिन है। चार अरब मनुष्य हैं और एक कोहिनूर है। तो चार अरब प्रतियोगी हैं और एक कोहिनूर है–बडा जटिल मामला है। चार अरब पाने की कोशिश कर रहे हैं, और एक कोहिनूर है! बहुत कठिन है। गाव-गाव, सडक-सडक, पहाड-जगल, सब जगह कोहिनूर पडे हो, कौन फिक्र करेगा? और कोई अगर अब बादशाह रणजीतसिंह या एलिजाबेथ अपने मुकुट मे लगायेगी तो लोग हसेगे कि इसमे क्या है, कोहिनूर तो गाव-गाव पडे हैं, बच्चे खेल रहे है।

न्यूनता का मूल्य है, क्योकि न्यूनता के कारण पाने मे जटिलता पैदा हो जाती है। कुछ चीजो के मूल्य बाजार मे बहुत ज्यादा रखने पडते हैं, इसलिए वे बिकती हैं। अगर उनके मूल्य कम कर दिये जायें, तो उनको खरीदार न मिले। यह बडे मजे का अर्थशास्त्र है। तुम सोचते होओगे कि चीजों के दाम कम हो तो ज्यादा खरीदार मिलेगे; कुछ चीजे ऐसी हैं कि उनके खरीदार तभी मिलते हैं, जब उनके दाम इतने हो कि ज्यादा खरीदार न उनको खरीद सके। रॉल्सरॉयस खरीदनी हो तो कितने खरीदार खरीद सकते हैं? उसका मूल्य इतना ऊचा रखना पडता है कि जो उसे खरीद ले, वह उसकी प्रतिष्ठा बन जाये कि रॉल्सरॉयस खरीद ली। वह प्रतिष्ठा का सिम्बल है, प्रतीक है। उसका मूल्य इतना है नही जितना मूल्य चुकाना पडता है। मगर लाग पागल हैं। और मन का यह पूरा खेल है।

अगर तुम्हे परमात्मा ऐसे ही घर के पीछे मिलता हो तो तुम्हारा रस ही खो

जाये। तुम कहोगे, यह तो जन्मो-जन्मो की बात है, ऐसे कही मिलता है? ऐसे परमात्मा अचानक एक दिन आ जाये और तुम्हें उठा ले कि 'भाई मैं आ गया, तुम बडी प्रार्थना वगैरह करते थे, शीर्षासन लगाते थे—अब हम हाजिर हैं, बोलो!' तुम फौरन आख बद कर लोगे कि यह सच हो ही नही सकता।

ऐसा हुआ कि मुल्ला नसरुद्दीन ने जाल फेका और एक मछली पकड ली। मछली इतनी बडी थी कि कभी सुनी भी नही गई थी, सिर्फ मछुओ की कहानियो मे कि मछुए एक-दूसरे को बताते हैं कि दस मन की मछली पकड ली, मगर कोई मानता नही। सब समझते हैं कि गप मार रहा है। और मछुओ से ज्यादा गपबाज दूसरे नही होते, क्योकि वे मछलियो की कहानिया बताते रहते हैं कि 'इतनी बडी मछली पकड ली, कि इतनी बडी मछली ठहरी हुई थी सागर के तट पर कि हम बैठकर उसकी पीठ पर रोटी पका आये, और मछली को पता न चला। जब तक मछली को पता चला तब तक हमारी रोटी पक गई, भोजन कर चुके, तब वह हिली—इतनी बडी थी!' एक बडी मछली पकड ली। भीड लग गई। नसरुद्दीन ने सब तरफ से उस मछली को जाकर देख लिया। सिर हिलाया और कहा कि नही, यह सच है ही नही। यह झूठ है। यह तो एक गप है। इसको कौन मानेगा? उसने कहा, "भाइयो मुझे सहायता दो, इसको सागर मे फेक देने दो। यह मछली है ही नही। यह एक झूठ है।"

अगर परमात्मा ऐसे ही आ जाये चुपचाप, और कहे कि मैं आ गया, तुमने याद किया था—तो तुम भरोसा न करोगे। तुम कहोगे कि यह एक झूठ है। कोई स्वप्न देख रहा हू। यह हो ही नही सकता।

तुम सरल को मान ही नही सकते। और मैं तुमसे कहता हू, परमात्मा ऐसा ही आता है। अगर तुम्हारे मन की टेढी-मेढी चाल न हो, अगर तुम सीधे-सरल होकर बैठ जाओ तो परमात्मा ऐसे ही आता है कि उसकी पगध्वनि भी नही सुनाई पडती। एक क्षण पहले नही था और एक क्षण बाद है। अचानक तुम उससे भर गये हो। उसके मेघ ने तुम्हे घेर लिया है। उसके अमृत की वर्षा होने लगी। तुम कभी यह भी न समझ पाओगे कि मेरी क्या योग्यता थी और परमात्मा आया, क्योकि योग्यता की बात तो तर्क की बात है। परमात्मा कुछ किसी योग्यता से थोडे ही मिलता है। तुम कभी समझ ही न पाओगे कि 'मेरी पात्रता क्या थी? मैंने क्या किया था जिसकी वजह से परमात्मा मिला?' क्योकि करने से थोडे ही परमात्मा मिलता है। वह तुम्हे मिला ही हुआ है, तुम्हारे करने के पहले मिला हुआ है, तुम्हारे होने के पहले मिला हुआ है। तुम उसे खो ही नहीं सकते। मन की टेढी-मेढी चाल है कि तुम्हे

लगता है, खो गया। फिर खोज का सवाल उठता है। जिसे कभी खोया नही, उसे तुम खोजने निकल जाते हो!

जिस दिन परमात्मा मिलता है, उस दिन प्रसाद-रूप, अकारण मिलता है। मिला ही हुआ है। तुम जरा बैठो। तुम दौड़ो मत। तुम थोडा मन को विसर्जित करो। तुम मन की मत सुनो। तुम मन के धुए से जरा अपने को मुक्त करो और पार ले जाओ। तुम जरा मन की घाटी से हटो।

थोडा-सा फासला मन से, और परमात्मा से सारी दूरी मिट जाती है। इसे हम ऐसा कह सकते हैं कि जितने मन के पास हो तुम, उतने परमात्मा से दूर, जितने मन से दूर, उतने परमात्मा के पास--बस ऐसा ही सीधा-साफ गणित है। जितने मन से दूर, उतने परमात्मा के पास। जिस दिन मन नही, उस दिन तुम परमात्मा हो।

परमात्मा को तुमने खोया नही है, मन को तुमने पा लिया है--यही तुम्हारी अड़चन है।

'चलत कत टेढौ-टेढौ रे।

नऊ दुवार नरक धरि मूंदै तू दुरगधि कौ बेढ़ौ रे।'

क्यो इतना तिरछा-तिरछा चलता है, और क्यो इतनी अकड ? क्योकि अकड के कारण लोग तिरछे चलते है। पैसा मिल जाये तो आदमी अकडकर चलता है, इलेक्शन मे जीत जाये तो देखो पैर जमीन पर नही पडते--तिरछा चलता है।

कबीर कह रहे हैं कि तेरी अकड का कोई कारण समझ मे नही आता, नाहक ही अकडा हुआ है। अगर सच्चाई कहनी है तो अकड का तो कोई भी कारण नही है। 'नऊ दुवार नरक धरि मूंदै'--तेरे ही नौ द्वारो के कारण नरक मे गिरेगा।

नौ द्वार हैं शरीर के नौ छिद्र--आख, कान, नाक, शरीर के नव छिद्र--जिनसे मन अपनी वासनाओ को ससार मे फैलाता है, जिन द्वारो से मन बाहर जाता है, पदार्थ से चिपटता है, दूसरे को पकडता है, परिग्रह बनाता है, लोभ, काम, क्रोध को पैदा करता है।

कबीर कहते हैं, 'नऊ दुवार नरक धरि मूंदै'--तेरे ही कारण और तेरे ही द्वारो के कारण नरक का द्वार खुलेगा। अकड किस बात की है? क्यो ऐसा तिरछा-तिरछा जा रहा है?

'तू दुरगधि को बेढौ रे'--और मैंने तुझसे कभी कोई सुगध उठते देखी नही। सिवाय दुर्गंध के तुझसे कभी कुछ उठा नही। तू दुर्गंध का घर है, फिर भी अकडा फिर रहा है!

इसे थोडा समझो।

अपने ही मन से बात करना, ध्यान का एक बड़ा गहरा प्रयोग है। जब तुम अपने मन से बात करने लगते हो तो फासला हो जाता है। जब तुम अपने मन से बात करते हो तो मन वहां, तुम यहां, तुम अपने मन से कहते हो, 'चलत कत टेढ़ो टेढ़ो रे'—फासला हो गया! तुम बोलनेवाले हो गये, मन सुननेवाला हो गया।

अपने मन से बात करना, ध्यान का एक गहरा प्रयोग है। कभी-कभी बैठकर बात करने से तुम बड़ा लाभ पाओगे। और मन के पास कोई जवाब नहीं है। अगर तुमने ठीक से बात की, और चीजें साफ रखीं, तो मन क्या कहेगा? मन के पास कोई जवाब नहीं है। 'तू दुरगंधि को बेढ़ो रे!' मन से सिवाय दुर्गंध के कभी कुछ नहीं उठता। और कभी अगर तुम्हें सुगंध मालूम पड़ती है तो तुम खोज करना, वह मन के पार से आती होगी, मन से नहीं आती। जैसे समझो क्रोध मन से उठता है, घृणा मन से उठती है, वैमनस्य, ईर्ष्या मन से उठती है, जलन, द्वेष, मत्सर मन से उठता है—सब उपद्रव मन से उठता है। अगर कभी तुम्हें मन से कोई ऐसी चीज भी उठती मालूम पड़ती हो जो दुर्गंध जैसी नहीं है, तो तुम ठीक से खोजना, तुम फौरन पाओगे कि वह मन के पार से आ रही है। जो प्रेम मन से उठता है, वह तो दुर्गंध-भरा ही होता है, वह तो घृणा का ही दूसरा रूप होता है। लेकिन एक ऐसा प्रेम भी है जो मन के पार से उठता है। और उसे तुम पहचान लोगे तत्क्षण। उसकी सुगंध ही और है! जब कभी कोई एक ऐसा प्रेम उठता है, जो कुछ भी नहीं मांगता, जो कुछ भी नहीं चाहता, जिसकी कोई अपेक्षा नहीं है—जैसा प्रेम बुद्ध की आंखों में दिखाई पड़े—वह प्रेम मन से नहीं आ रहा है, वह मन के पार से आ रहा है, उसमें फिर कोई दुर्गंध नहीं है, उसमें फिर घृणा का कोई पहलू नहीं है।

तुम बुद्ध के प्रेम को घृणा में नहीं बदल सकते। तुम्हारे प्रेम को घृणा में बदला जा सकता है। तो वह प्रेम मन से आ रहा है। तो क्या हुआ मापदण्ड? मापदण्ड यह हुआ कि जो भी चीज अपने से विपरीत में न बदली जा सके, वह मन के पार से आ रही है, यह क्राइटेरियन हुआ, यह निकस हुआ। इस पर तुम कस लेना।

तुम किसी को प्रेम करते हो एक स्त्री को प्रेम करते हो आज वह सुंदर है, कल बूढ़ी हो जाएगी—फिर भी प्रेम करोगे? ऐसा ही प्रेम करोगे? आज स्वस्थ है, कल बीमार हो जाये, कैन्सरग्रस्त हो जाये, कि कोढ़ आ जाये, सारा शरीर गलने लगे—फिर भी तुम ऐसा ही प्रेम करोगे? सिर्फ सोचो। तत्क्षण तुम जान लोगे कि नहीं कर पाओगे। आज स्त्री प्रसन्न है, तुम्हें पूछती है, कल गाली दे, अपमान करे—तब भी ऐसा ही प्रेम करोगे? आज तुम्हारे पीछे छाया की तरह चलती है, तुम्हारे अहंकार को भरती है, कल किसी और की तरफ प्रेम की नजर से देख ले—तब भी

ऐसा ही प्रेम करोगे ? कल किसी और के पीछे चलने लगे, किसी और की छाया बन जाये—तब भी तुम ऐसा ही प्रेम करोगे ? तो तुम्हारा प्रेम सशर्त है, उसमे कन्डीशन है, वह लेन-देन है । और अगर स्त्री ने किसी और को प्रेम कर लिया तो प्रेम करना दूर, तुम इसकी हत्या कर दोगे । तुम उसे गोली मार दोगे ।

तुम्हारा प्रेम घृणा मे बदल सकता है ।

जो चीज अपने से विपरीत मे बदल जाये, समझना कि मन से आ रही है, क्योकि मन के पास द्वैत है, मन के पार अद्वैत है । अगर तुम्हारा प्रेम घृणा मे न बदल सके, अगर तुम समझ लो कि यह सभव ही नही है कि मेरा प्रेम घृणा मे बदल जाये—तो खोजना गौर से, अपने को धोखा देने का कोई सार नही है, क्योकि किसी और को तुम धोखा नही दे रहे हो । तुम्हारी शाति अशाति मे बदल सकती है, तो समझ लेना मन का ही खेल है । तुम अगर ऐसी शाति को अनुभव करो जिसे कि कुछ भी न बिगाड सकेगा, जिसमे कोई विघ्न-बाधा न डाल सकेगा, तुम्हारी शाति ऐसी हो कि उसे अशाति मे बदलने का कोई उपाय न हो सकेगा, चारो तरफ तूफान चलता रहे तो भी तुम्हारी शाति अडिग बनी रहेगी—तो तुम समझ लेना कि कुछ मन के पार से आ रहा है । मन के पार से जो आता है, वह विपरीत मे बदल नही सकता, क्योकि उसका विपरीत है ही नही, वह अद्वैत से आ रहा है । उससे अन्य कोई है ही नही ।

कभी-कभी तुम्हे सुगध की खबर मिल सकती है—मन से भी । लेकिन वह सुगध मन की नहीं है । मन से तो दुर्गंध ही उठती है । और जो भी तुम मन से करोगे, तुम्हारा जीवन उतना ही दुर्गंध से भरता जायेगा ।

अगर तुम दुर्गंध से भर गये हो, तो चेतो ! कब तक मन पर भरोसा किये जाओगे ? काफी कर लिया । हर चीज की हद होती है ।

'चलत कत टेढौ-टेढौ रे ।'

'नऊ दुवार नरक धरि मूदै, तू दुरगधि कौ बेढौ रे ।' घर है तू दुर्गंध का । नौ द्वार खुलते है तुझसे नरक के, और अकडकर तू चलता है—कुछ समझ मे बात आती नही कबीर अपने मन से कहते है ।

'जे जारै तो होइ भसम तन'—और जब जलाया जायेगा तो शरीर के साथ, शरीर भस्म होगा, राख हो जाएगा, तू भी राख हो जाएगा । 'रहित किरम उहि खाई'—अगर कोई टुकडे बच गये शरीर के आग से, तो कीडे मकोडे खा लेगे । अकड किस बात की है ? किसलिए इतना सिर ऊचा किये चल रहा है ? ये पताकाए किसलिए फहरायी जा रही हैं ? झण्डा उठाने जैसा कुछ भी तो नही है ।

'सूकर स्वान काग को भखिन'—छोड देगी चेतना, उड जाएगा पखेरू, इस यात्रा पर निकल आएगा—तो तुझे सुअर, कुत्ते, कव्वे भक्ष्य बना लेंगे। 'तामै कहा भलाई'—कुछ बात समझ मे नही आती कि क्यो तू इतना अकडा है?

'फूटै नैन हिरदै नहिं सूझै, मति एकै नहिं जानी।' तेरे कारण पाया तो कुछ भी नही, खोया बहुत। और बडी-से बडी चीज जो खो दी है, मन के कारण, वह है—'फूटै नैन, हिरदै नहिं सूझै।' मन ने कब्जा कर लिया है, इतनी तीव्रता से कि हृदय को बिलकुल अलग ही तोड दिया है। मन की आख सजग है और हृदय की आख मन ने बिलकुल अधी कर दी—जैसे हृदय की आख पर तेजाब डाल दी हो।

'फूटै नैन, हिरदै नहिं सूझै।' तुझसे मिला तो कुछ नही, पाया तो कुछ नही—हृदय के नैन तूने फोड डाले। तूने कब्जा कर लिया है आखो पर। तू एकाधिकारी हो गया है—मोनोपोलिस्ट है। तू कहता है, हमसे ही देखो।

और मन समझाता है कि हृदय अधा है, देखना है तो हमसे देखो। मन कहता है, प्रेम अधा है, देखना है तो हमसे देखो, नही तो भटक जाओगे। और प्रेम एकमात्र आख है—मन अधा कहता है। मन तुम्हे हृदय की नही सुनने देता। जब तुम सुनते ही नही बडे-बडे लम्बे-लम्बे समय तक, तो धीरे-धीरे हृदय की आवाज धीमी-धीमी धीमी-धीमी पडती जाती है। और मन का शोरगुल इतना है कि वह आवाज सुनाई नही पडती। थोडा मन विदा हो, तुम्हारी थोडी दूरी बढ़े, तो पहली दफे पता तुम्हे चलेगा कि तुम्हारे भीतर हृदय भी है। और हृदय यानी एक अलग ही लोक, हृदय यानी एक नया ही आयाम, जीवन को जानने-पहचानने की एक नयी कीमिया। तुम नये ही हो जाओगे जब तुम हृदय से देखोगे। वही चीजे जो तुमने मन से देखी थी, वे ही चीजे जब तुम हृदय से देखोगे, तुम पाओगे बात ही बदल गई।

अगर तुम मन से परमात्मा को देखोगे तो पत्थर से ज्यादा दिखाई नही पडेगा। अगर हृदय से तुम पत्थर को देखोगे तो परमात्मा मे अन्यथा नही दिखाई पडेगा। जिन्होने पत्थर की मूर्तिया बनाई हैं परमात्मा की, उन्होने बनाई होगी हृदय से—उन्हे परमात्मा दिखाई पडा। तुम भी जाते हो उसी मदिर मे, तुम्हे पत्थर दिखाई पडता है।

पत्थर की मूर्तिया बनाने का बडा राज है। राज यही है कि अगर हृदय की आख हो, तो पत्थर दिखाई पडता ही नही, पत्थर रूपान्तरित हो जाता है। पत्थर एक ऐसे अलौकिक रूप से आविष्ठ हो जाता है कि कबीर ने कहा है, 'महिमा कही न जाये!' पत्थर तो तिरोहित हो जाता है, पत्थर मे प्रगट हो जाता है परमात्मा।

क्योकि वह सब जगह भरा है, जगह-जगह छिपा है—जरा खोदने की बात है। जैसे पानी जगह-जगह छिपा है, जरा खोदा कि कुआ बन गया। लेकिन वह खुदाई हो सकती है हृदय के उपकरणो से।

हृदय जोडता है, मन तोडता है। मन खड-खड करता है, हृदय अखड करता है। मन का सूत्र है विश्लेषण—एनालिसिस, हृदय का सूत्र है सश्लेषण—सिन्थीसिस। जहा चीजे खड-खड है, हृदय वहा अखड देखता है, और जहा चीजे अखड हैं, वहा मन खड-खड देखता है। हृदय जब परिपूर्ण रूप से सक्रिय होता है तो सारा अस्तित्व एक हो जाता है।

कबीर कहते हैं, पाया तो तुझसे कुछ भी नही। 'फूटै नैन, हिरदै नहि सूझै'—आख फोड दी तूने, दृष्टि मिटा दी तूने, और हृदय की सारी सूझ खो गई। प्रेम के पख काट डाले तूने, प्रार्थना का उपाय न छोडा—यही तेरी उपलब्धि है। 'मति एकै नहि जानी'—और प्रज्ञा की एक किरण तूने नही जानी है, और न तूने जानने दी।

मति का अर्थ है प्रज्ञा, परम ज्ञान, उसकी झलक। मन मे बहुत ज्ञान इकट्ठा कर लिया है, लेकिन उस ज्ञान मे मति की जरा भी झलक नही है। बहुत जानता है मन, और कुछ भी नही जानता। बडा सग्रह है ज्ञान का—शास्त्र, शब्द, सिद्धान्त, लेकिन प्रतीति का एक कण भी नही है। और प्रतीति ही एकमात्र प्रज्ञा है। अपना ही अनुभव एकमात्र ज्ञान है। तो मन तोते की तरह है रटन लगाये रखता है, दोहराता रहता है—बासा, उधार।

कबीर कहते हैं 'मति एकै नहि जानी।' इसके दो अर्थ हो सकते है कि मति की एक भी किरण भी न जानी, इसका एक अर्थ यह भी हो सकता है कि उस एक के सबध मे कुछ भी न जाना, बहुत के सबध मे जान लिया और एक के सबध मे कुछ भी नही जाना। और एक ही असली जानना है। उपनिषदो ने कहा है, 'जो उस एक को जान लेता है वह सब जान लेता है।'

'मति एकै नहि जानी।'

'माया मोह ममता सू बाध्यो, बूडि मुवौ बिन पानी।' इतनी ही तेरी कुशलता है कि—'माया मोह ममता सू बाध्यो'—स्वप्नो से बाध दिया तूने, सत्य से तोड दिया, मोह से बाध दिया तूने, ममता से बाध दिया, अहकार से—मैं और मेरा! सपने तूने सजो दिये। झूठा एक जगत निर्मित कर दिया चारो तरफ। और एक ऐसी स्थिति बना दी कहते है, कहावत है कि 'चुल्लूभर पानी मे डूब मरो'—कहते हैं उस आदमी से जिसको अब कोई बचने की जगह न रही, जिसने ऐसा अपराध किया है जीवन के साथ, जिसने ऐसा पाप किया है जीवन के साथ कि अब वह

चेहरा दिखाने योग्य न रहा, तो उससे हम कहते हैं, डूब मरो चुल्लूभर पानी में। चुल्लूभर पानी मे क्यो ? क्योकि तुम इतने क्षुद्र हो गये कि चुल्लूभर पानी काफी होगा। चुल्लूभर पानी तुम्हारे लिए सागर जैसा होगा—डूब मरो। तुम इतने क्षुद्र हो गये, यह मतलब है। इतने छोटे हो गये तुम कि अब तुम्हे कोई नदी, कोई सरोवर, सागर डूब मरने के लिए नही चाहिए, अपने ही चुल्लूभर पानी मे डूब सकते हो।

कबीर कहते हैं, लेकिन तेरी कृपा से ऐसी स्थिति आ गई कि 'बूडि मुवौ बिन पानी'—बिना ही पानी के डूब मरो, चुल्लूभर की भी कोई जरूरत नही है, पानी की जरूरत ही नही है, बस डूब मरो। तूने इतना क्षुद्र बना दिया, तूने इतना छोटा बना दिया—और विराट को, जिसकी कोई सीमा न थी, जिसका कही अन्त न आता था ! असीम को तूने ऐसी गति मे डाल दिया कि अब बिना ही पानी के मरने की अवस्था है।

'बूडि मुवौ बिन पानी !'

'बारू के घरवा मैं बैठो'—अकड किस बात की है तेरी ?

यह वार्तालाप बडा प्यारा है ! 'बारू के घरवा मैं बैठो'—बैठा है रेत के घर मे, जो अब गिरा, तब गिरा, हवा का जरा-सा झोका, और सम्हाले न सम्हलेगा।

शरीर की अवस्था ऐसी तो है कब गिर जाएगा क्या पता ! अभी है, क्षणभर बाद न हो जाये। एक क्षण का भी तो भरोसा नही है। एक पल के लिए भी हम आश्वस्त नही हो सकते कि यह कल भी बचेगा।

महाभारत मे छोटी-सी कथा है एक भिखारी ने भीख मांगी। युधिष्ठिर कुछ काम मे लगे थे, कहा, कल आ जाना। भीम पास मे बैठा था। उसने उठाया एक ढोल और जोर से बजाया, और भागा गाव की तरफ। युधिष्ठिर ने कहा, "तू यह क्या कर रहा है ? क्या हो गया है ?" उसने कहा, "मै गाव मे खबर कर आऊ कि मेरे भाई ने समय को जीत लिया, कल का आश्वासन दिया है। भिखारी से कहा है कि कल आ जाना। इसका मतलब कि कल हम यहा रहेगे। इसका मतलब कि कल तू भी रहेगा। मेरे भाई ने काल का जीत लिया है—इतनी बडी घटना घट गई है, तो मैं जरा ढोल पीटकर गाव मे खबर कर आऊ।"

युधिष्ठिर को बात समझ मे आ गई। दौडे, भिखारी को वापस ले आये और कहा, "क्षमा कर। कल का क्या भरोसा, तू अभी ले जा।"

'बारू के घरवा मैं बैठो, चेतत नही अयाना।' और अब तक चेतता नही। और ऐसा भी नही कि कोई पहली दफा बैठा, बहुत बार बैठ चुका बालू के घर मे, और बहुत बार घर गिर गया, मगर फिर-फिर बना लेता है।

'चेतत नहीं अयाना . ।' अयाना का अर्थ है अब तक, अभी तक । अभी तक चेतता नहीं !

'कहै कबीर एक राम भगति बिन बूडे बहुत सयाना ॥' और सयाने होने की अकड मत कर, क्योंकि एक 'राम भगति बिन बूडे बहुत सयाना'–बडे-बडे ज्ञानी डूब गये हैं। सिर्फ एक ही सहारा है जो बचाता है, वह है परमात्मा से प्रेम, राम-भक्ति ।

अकड मत रख कि तू बहुत जानता है। ऐसे जाननेवाले बहुत डूब मरे हैं। यह बडा प्यारा वचन है 'बूडे बहुत सयाना !' (मन बडा सयाना है, हर चीज मे सलाह देने को तैयार है–वहा भी जहा कुछ जानता नही, हर बात मे गुरु बनने की तैयारी है। मन शिष्य नहीं बनना चाहता, गुरु बनने को सदा तैयार है। कूडा-कर्कट इकट्ठा कर लेता है यहा-वहां से ।)

तुम जरा अपने मन को देखो । जो भी तुम जानते हो, वह कहीं-न-कही से इकट्ठा कर लिया है–सब उधार, सब बासा, सडा, झूठन फेंकी लोगो की–उसको इकट्ठा किये बडे अकडे और सयाने बने बैठे हो ।

ऐसा हुआ कि सूफी फकीर जुन्नैद एक गाव से गुजरता था । वह बडा पडित था, बडा जानकार था । और जानकारो की बडी मुसीबत है कि वे जानते हैं तो दूसरे को जनाना चाहते हैं कि कोई मिल जाये जिसको सिखा दे । ऐसा हुआ, उस दिन कोई न मिला । अधार्मिक गाव रहा होगा । कई को पकडने की कोशिश की जुन्नैद ने, लेकिन लोगो ने कहा कि अभी जरा दूसरे काम से जा रहे हैं, जब फुर्सत होगी तब आएगे । या लोग जानते रहे होगे इस पडित को । कोई न मिला तो एक छोटा बच्चा मिल गया । वह एक दीया लिये जा रहा था एक मजार पर चढाने को, तो जुन्नैद ने उसे कहा, "सुन बेटे यह दीया तूने ही जलाया ?" उस लडके ने कहा, "निश्चित मैंने ही जलाया ।" "तो तू क्या यह बता सकता है कि ज्योति जब तूने जलाई थी तो कहा थी ? और जब तूने जलाई तो कहा से आई–किस दिशा से ?" उस लडके ने कहा कि देखो ! फूक मारकर उसने दीया बुझा दिया, और कहा कि 'अब ज्योति कहा गई, आप ही बता दो, आपके सामने ही गई–तब मैं बता दूगा कहा से आई ।'

जुन्नैद को पहली दफा होश आया कि बडी-बडी ज्ञान की मैं बातें करता हू कि ससार कहा से आया, किसने बनाया, और यह ज्योति सामने ही मेरी आखो के लीन हो गई और मैं नही बता सकता, कहा गई ! उसने झुककर पैर छुए उसे बच्चे के । और जुन्नैद ने लिखा है कि उसी दिन मैंने पडित होने का त्याग कर दिया । ज्ञान

कचरा है । क्या बकवास मैंने भी लगा रखी है ? छोटी-छोटी बात का पता नही, बडी-बडी बात कर रहा हू ! अपना पता नही, ससार की बात कर रहा हू । खुद की कोई खबर नही, खुदा की चर्चा चला रहा हू !

जुन्नैद उसी दिन परिवर्तित हो गया ।

जुन्नैद ने कहा, अब हम सिखाने नही निकलते, अब सीखने निकलते हैं । वह शिष्य हो रहा । वह बडा विनम्र आदमी हो गया । उसकी विनम्रता अनूठी थी । उसने हर किसी से सीखा । उससे लोगो ने पूछा, तो उसने इस बच्चे को पहला अपना गुरु बताया । दूसरा गुरु एक चोर को बताया ।

लोगो ने कहा, चोर और गुरु !

उसने कहा, हा एक रात गाव मे मैं देर से पहुचा । सारा गांव तो सोया हुआ था, धर्मशाला बन्द हो चुकी थी, एक चोर एक अधेरी गली मे मुझे मिल गया । उसने कहा कि देखो अब इस रात के अधेरे मे तुम्हें कही कोई जगह न मिलेगी, विश्राम न मिलेगा । मेरे घर तुम आ सकते हो, लेकिन मैं तुम्हे बता दू, क्योकि तुम फकीर हो, मैं चोर हू—अपना धधा बिलकुल अलग-अलग, और फकीर से झूठ क्या कहना ! सच-सच बता देता हू, नही तो कही पीछे तुम पछताओगे कि कहा चोर के घर मे रुक गये । मुझे कोई एतराज नही है, और मुझे कोई डर नही है कि तुम मुझे बदल लोगे । मैं पक्का चोर हू । तुम्हे अगर डर हो कि मैं तुम्हे बदल लूगा, तुम कही और ठहर जाओ ।

जुन्नैद ने कहा है कि मैंने सोचा, मन मे मेरे भय तो आया था, चोर पहचान गया । मन मे एक बात तो आई थी कि चोर के घर रुकना ?—ठीक नही है, क्योकि सत्सग सोचकर करना चाहिए । लेकिन जब चोर ने कहा कि 'मैं पक्का चोर हू, तुम मुझे न बदल पाओगे । इसलिए मुझे उसकी चिन्ता नही है । हा, तुम्हे अगर डर हो कि मेरे पास रहकर मेरा रग तुम्हे लग जाएगा, तुम अगर कच्चे फकीर हो, तो कही भी ठहर जाओ । तुम्हारी मर्जी । चोट लग गई । क्योकि उसने कहा, 'कच्चे फकीर !'

जुन्नैद रुक गया और फिर महीनेभर तक रुका रहा । चोर अनूठा आदमी था । रोज साझ चोरी के लिए निकलता, रोज बडी आशा से भरा हुआ निकलता, और जुन्नैद से बडी बाते कहता कि आज महल मे ही प्रवेश करनेवाला हू, तो देखना, तिजोरी ही उठा लाऊगा । और रात जब लौटता, तब भी उदास न दिखाई पडता । दरवाजा जब जुन्नैद खोलता और पूछता, लाये, तो वह कहता, आज तो नही लगा दाव, लेकिन कल पक्का है । ऐसे महीना बीत गया, दाव लगा ही नही । मगर उस

आदमी की आंख की चमक न गई। उसकी आशा न खोई। उसने कभी भी निराशा प्रगट न की। वह हताश न हुआ। फिर जुन्नैद उसे छोडकर चला गया।

बाद मे जुन्नैद जब परमात्मा की खोज मे डूबा, और रोज दिन बीतने लगे और परमात्मा की कोई झलक न मिली, तो एक दिन उसने तय कर लिया कि बस अब बहुत हो गया, अगर आज मिलता है परमात्मा तो ठीक, अगर नही मिलता तो समझ लेगे, है ही नही। तभी उसे चोर की याद आई, और उसने कहा कि उसने कहा था, 'कच्चे फकीर! और मैं पक्का चोर!' और वह चोर साधारण सपत्ति खोज रहा है, लेकिन निराश नही है, और मैं परम सपत्ति को खोजने निकला हू, और इतनी जल्दी निराश हो गया!

जुन्नैद ने कहा, फिर मैं जाग गया। और फिर उस चोर ने मेरा साथ दिया, उसकी स्मृति ने मेरा साथ दिया। और जब तक मैंने परमात्मा न पा लिया तब तक मैं चोर के सहारे ही चला। इसलिए दूसरा मेरा गुरु वह चोर।'

ऐसे उसने नौ गुरु गिनाये। उसने सबसे सीखा।

जब तक तुम मन का भरोसा किये हो, मन बडा सयाना है। उसे सीखने की जरूरत नही है, वह सीखा ही हुआ है। वह जानता ही है, और जो जानता ही है उसे जनाना मुश्किल। जो जागा हुआ पडा हो, और सोने का बहाना कर रहा हो, उसे जगाना मुश्किल है। जिसको पहले से ही यह भ्रान्ति हो कि हम जानते हैं, उसको जगाओगे कैसे? वह पहले ही अपने ज्ञान से भरा है और ज्ञान कौडी का नही है, सब उधार है, तोता-रटत है, सीख लिया है, कही प्राण उससे भीगे नही है। बाहर-बाहर है ज्ञान। अतस अछूता रह गया है। भीतर गहन अज्ञान है, अधेरा है। रोशनी उधार है और बाहर है। रोशनी किसी और की, तुम्हारी रोशनी नही हो सकती। दीया किसी और का, तुम्हारे काम नही पड सकता।

बुद्ध ने अतिम क्षणो मे कहा है, 'अप्प दीपा भव!' अपने दीये हो जाओ। कब तक शास्त्रो के दीये लिये फिरोगे? वे तो बुझे दीये हैं। शब्दो के दीये कब तक काम आएगे?

'कहै कबीर एक राम भगति बिन बूडे बहुत सयाना।' कहते है, 'चलत कत टेढौ-टेढौ रे।' और तेरे जैसे बहुत ज्ञानी डूब गये। अकड मत! यह झण्डा मत उठा। तिरछा-तिरछा मत चल। तेरे सयानेपन मे कुछ सार नही है। बचे तो केवल वे—'कहै कबीर एक राम भगति बिन बूडे बहुत सयाना।'—बचे तो केवल वे, जिन्होने राम का सहारा ले लिया।

(राम के सहारे का अर्थ है जिन्होने एक का सहारा ले लिया। और वह एक

तुम्हारे भीतर छिपा है। जिन्होने विचारो से दृष्टि हटा ली और चैतन्य की तरफ उन्मुख हो गये, जो स्रोत की तरफ लौट गये, जो गगोत्री मे पहुच गये—जहां से सब आया है, जहा से सब फैलाव हुआ है, जो उस मूल उद्गम पर पहुच गये, और वह उद्गम तुम्हारे भीतर है—'कस्तूरी कुडल बसै !'

विराम है द्वार राम का

चौथा प्रवचन

दिनांक १४ मार्च, १९७५; प्रातःकाल, श्री रजनीश आश्रम, पूना

घर घर दीपक बरै, लखै नहि अंध है ।
लखत लखत लखि परै, कटै जमफव है ।।

कहन सुनन कछु नाहिं, नहिं कछु करन है ।
जीते-जी मरि रहै, बहुरि नहि मरन है ।।

जोगी पड़े बियोग, कहैं घर दूर है ।
पासहि बसत हजूर, तू चढ़त खजूर है ।।

ब्राह्मन बिच्छा देत सो, घर घर घालिहै ।
मूर सजीवन पास, तू पाहन पालिहै ।।

ऐसन साहब कबीर, सलोना आप है ।
नहीं जोग नहि जाप, पुन्न नहि पाप है ।।

प्रभु तो पास है। पास कहना भी ठीक नहीं, क्योंकि पास से पास में भी थोड़ी दूरी बनी रहती है। इसलिए यही उचित है कहना कि प्रभु दूर नहीं है। वस्तुत तो प्रभु तुम्हारा आत्यन्तिक होना है।

जैसे, कली और फूल मे क्या फासला है? कली होनेवाला फूल है। अभी कली है अभी फूल हो जाएगी। कली मे फूल छिपा है, फूल मे कली छिपी है। कली और फूल किसी एक ही घटना के दो कदम है। जो कली मे छिपा है वही फूल मे प्रगट हो जाएगा। जो कली मे बद है वही फूल मे खुल जाएगा।

ऐसे ही तुम्हारा और प्रभु का नाता है। तुम अगर कली हो तो वह फूल है। तुम अगर बीज हो तो वह वृक्ष है। तुम्हारा होना और उसका होना दो बाते नहीं, किसी एक ही बात के दो चरण हैं।

इसे बहुत ठीक से समझ लेना जरूरी है। यह समझ मे इतना गहरे बैठ जाये, इतना गहरे बैठ जाये कि तुम्हारे रोए-रोए मे यह प्रतीति होने लगे, तो प्रभु को पाने मे फिर जरा भी देर नहीं। अगर यह प्रतीति समग्र हो जाये, अगर श्वास-श्वास, धड़कन धड़कन यह अहसास कर ले कि मैं कली हू, वह फूल है, यह धारणा इतनी सघन हो जाये कि इससे भिन्न धारणा की कोई जगह ही तुम्हारे भीतर न बचे—तो इसी क्षण कली फूल हो जाये, इसी क्षण बीज टूट जाये, अकुर निकल आये, क्षण की भी देरी न हो।

लेकिन यह प्रतीति आवश्यक है। और इस प्रतीति के होने मे सबसे बड़ी बाधा तुम्हारा मन है। तुम्हारा मन कहेगा, यह हो ही कैसे सकता है? और बड़ी से बड़ी बाधा तुम्हारे आसपास तुम्हे घेरे हुए पडितो का जाल है। वे भी कहेगे, यह कैसे हो सकता है? उन्होने तो इससे उलटी ही बात तुम्हें सिखायी है। उन्होने तुमसे यह नहीं कहा है कि परमात्मा तुम्हारे निकट है, उन्होने तो तुमसे यही कहा है कि तुमसे ज्यादा निन्दनीय और कोई भी नहीं, तुम ऐसे निन्दित हो कि परमात्मा तुम्हारे निकट हो ही कैसे सकता है? उन्होने तो सिर्फ तुम्हे नरक का

आभास दिलाया है, स्वर्ग का नही। और हजारो हजारो साल के शिक्षण-दीक्षण ने तुम्हारे मन मे यह बात गहरे मे जमा दी है कि तुम सिर्फ निन्दा के पात्र हो। नरक के अतिरिक्त तुम्हे अपने होने के लिए और दूसरा उपाय नही दिखायी पडता। और तुम जितना अपने को निन्दित समझोगे, उतना ही परमात्मा दूर है, कली खिल नही सकती। तुम्ही कली को न खिलने दोगे। तुम्हारा निन्दा का भाव ही कली के खिलने मे सबसे बडी बाधा बन जायेगी। और उन्होने कैसी सरल सीधी बातो का निन्दित कर दिया है कि बडी कठिनाई है।

कल एक युवक आया। युवक है, तो स्वभावत वासना जगेगी, कुछ आश्चर्य-जनक नही है, न जगे तो ही आश्चर्यजनक है। युवक हो और अगर वासना न जगे तो उसका अर्थ यही हुआ कि कही न कही शरीर मे, मन मे कुछ कमी रह गई, कही कोई बात चूक गयी। वासना तो स्वाभाविक है। लेकिन वह युवक अपने को बहुत निन्दित और दलित मान रहा है, आत्मग्लानि से भरा है। वह कहता है, "मेरे मन मे बडे पाप उठ रहे हैं। कैसे पाप से छुटकारा हो ?"

जिस चीज को तुमने पाप कह दिया, उससे छुटकारा कभी भी न हो सकेगा। क्योकि जिस चीज को तुमने पाप कह दिया, उतने ही मे मामला समाप्त नही हो गया, उसके कारण तुम पापी हो गये। और पापी परमात्मा के निकट कैसे हो सकेगा ?

थोडा-सा भोजन मे रस है, तो पाप। थोडा कपडा पहनने मे रस है, तो पाप। थोडी ज्यादा देर सो जाते हो सुबह, तो पाप। सब तरफ से पाप खडा कर दिया निन्दको ने। जहर फैलानेवालो का बडा लम्बा इतिहास है। उन्होने सब तरफ तुम्हे निन्दित कर दिया है। उसके पीछे कारण है।

तुम जितने निन्दित हो जाओ, उतने ही पण्डित पूजित हो जाते हैं। यह गणित है। जितने निन्दित हो जाओ, उतना ही पण्डित पूजित हो जाता है। क्योकि वह सुबह पाच बजे उठता है और तुम नही उठ पाते। वह ब्रह्ममूहूर्त मे उठता है। वह उपवास करता है, तुम नही कर पाते। त्यागी त्याग करता है, तुम नही कर पाते। लेकिन तुम जानकर चकित होओगे कि सौ मे से निन्यानवे त्यागी इसलिए त्याग कर रहे हैं कि उनका त्याग एक अस्त्र है, जिससे वे तुम्हे निन्दित करते हैं। उनका त्याग उनके अहकार की एक व्यवस्था है। उपवास मे मजा उन्हे भी नही आता, लेकिन उपवास के कारण भोजन करनेवालो को नरक मे भेजने की जो सुविधा उनके मन मे आ जाती है, वही उपवास का रस है।

उपवास मे किसको रस आएगा ? भूख तो पीडा देगी। यह बिलकुल स्वाभा-

विक है। लेकिन अगर मेरे एक दिन उपवास करने से लाखो लोगो की तरफ मैं निन्दा से देखने का मौका पा सकता हू, तो रस आ जायेगा।

सौ मे से निन्यानवे ब्रह्मचारी सिर्फ इसलिए ब्रह्मचारी हैं कि उसके कारण तुम सभी पापी हो जाते हो।

मेरे एक मित्र हैं। उनके पास बडा मकान है। उस नगर मे उससे बडा मकान किसी के पास नही था। फिर एक पडोसी ने और बडा मकान बना लिया। उनका मकान उतना का उतना ही रहा, कोई रत्तीभर फर्क न आया, पर वे उदास और दुखी हो गए। उनके घर मे मैं मेहमान था, तो वे बडे चिन्तित थे। मैंने कहा, "मेरी समझ मे नही आता। तुम्हारा मकान ठीक वैसा का वैसा है।" उन्होने कहा, "कैसे वैसा का वैसा रहेगा? पडोस मे देखते नही, बडा मकान खडा हो गया? जब तक इससे बडा मकान मेरा न हो जाये, तब तक चित्त मे अब शाति नही।"

दूसरे को निन्दित करना हो तो एक ही उपाय है कि तुम जिस बात की निन्दा करते हो, उसको स्वय न करो। और सरल-से उपाय हैं कि कोई आदमी विवाह नही करता तो गैर-विवाहित रहकर विवाहित लोगो की निंदा करता है। सारी दुनिया विवाहित लोगो को निन्दित हो जाती है। उसके अहकार की कोई सीमा नही रहती।

अब यह युवक, जो मेरे पास कल आया, वह कहता है, "बडे पाप मे पडा हू, इससे छुटकारा दिलाये।"

पाप कहा है? जो स्वाभाविक है उससे कोई पाप नही। और ध्यान रखने की बात तो यह है कि अगर तुमने पाप समझा तो कभी छूट न पाओगे। अगर छूटना चाहा तो कभी छूट न पाओगे। और अगर तुमने प्रभु की अनुकम्पा समझी इसे भी, तो इसके द्वारा भी तुम प्रभु को पास ले आये, दूर न किया। जरा सूक्ष्म है, ठीक से समझ लेना। अगर तुमने कहा, पाप है तो कितनी बाते घट रही हैं, तुम्हे पता नही है। किसी चीज को पाप कहा तो तुम पापी हो गये। किसी चीज को पाप कहा तो पूरी प्रकृति पापी हो गयी, क्योकि उसी प्रकृति से वह पाप जन्मा है। और किसी चीज को अगर पाप कहा तो बहुत गौर से देखना, परमात्मा भी पापी हो गया, क्योकि उसके बिना इस जगत मे कुछ भी नही घट सकता है। वही बनाता है, और पाप बनाता है—पापी हो गया।

जार्ज गुरजियेफ कहा करता था कि सभी धर्म परमात्मा के खिलाफ हैं। और यह बात सच है। क्योकि, जितनी चीजो को तुम पाप कह रहे हो, उतने ही अशो मे परमात्मा की भी निन्दा कर रहे हो।

अगर तुमने एक चीज की भी निन्दा की तो तुमने उसके साथ पूरे अस्तित्व को निन्दित कर दिया। और यह सब उसी का खेल है। ये सब उसी के रूप हैं। वह भी निन्दित हो गया। फासला बहुत भारी हो गया। अब तुम कभी न पहुच पाओगे। और अगर तुमने अपनी वासना को भी उसका खेल समझा. उसने ही दिया है तो जरूर कोई राज होगा। शायद यही राज हो कि वासना मे तुम्हे फेके और तुम न फिको, वासना मे तुम्हे धकाये और तुम उबर आओ, वासना मे तुम्हे उतारे और तुम अतिक्रमण कर जाओ—यही राज होगा।

लेकिन तब यह पाप नही है, तब यह शिक्षण हुआ। तब यह पाप नही है, तब यह परमात्मा की अनुकम्पा हुई। जैसे कि सोने का आग मे फेको तो निखरकर वापस आता है, ऐसे परमात्मा तुम्हे ससार मे फेकता है कि तुम निखरकर वापस आ जाओ। आग की निन्दा मत करो। परमात्मा की अनुकम्पा को खोजो। तत्क्षण तुम पाओगे, वह पास है—कली खुलने लगी!

बुरे से बुरे मे भी उसी का हाथ जिसने देख लिया, वही साधू है। लेकिन जिनका तुम साधू कहते हो, वे अच्छे से अच्छे मे भी बुराई खोज लेते है।

एक साधू मुझे मिलने आये। वे थोडे चकित हुए। जिस मकान मे मैं रहता था उन दिनो, बडा बगीचा था उसके आसपास, बडे फूल खिले थे। उन्होने कहा, "आप?"—और मैं पौधो को पानी दे रहा था।—"आप और फूलो मे आपका रस है?"

फूल मे तो कोई पाप नही दिखाई पडता। लेकिन उन्होने कहा, "आप, और फूलो मे रस? आप जैसे व्यक्ति को तो सभी राग-रग से विमुक्त होना चाहिए।"

फूल भी राग-रग है! है ता। अगर बहुत गौर से देखो तो फूल भी कामवासना का ही हिस्सा है।

अगर तुम वैज्ञानिक से पूछो तो वह बतायेगा फूल खिलता है, तो फूल मे जो मध्य मे छिपे हुए कण हैं, वे कण उसके वीर्यकण हैं। मधुमक्खियो, मक्खियो और तितलियो के पखो मे लगाकर उन कणों को वह दूसरे फूलो के पास भेज रहा है। वह फूल खुद तो नही चल सकता, इसलिए मादा को नही खोज सकता, तो उसने एक तरकीब निकाल ली है। वह तरकीब बडी कुशल है वह मधुमक्खी को आकर्षित कर लेता है। मधुमक्खी उस पर बैठती है तो उसके पैरो मे उसके पराग के कण लग जाते है। मधुमक्खी के माध्यम से वह अपने वीर्यकण भेज रहा है। मधुमक्खी फिर मादा फूल पर बैठेगी और वीर्य-कण छूट जाएगे—दो का मिलन हो जाएगा।

गौर से देखो तो फूल भी कामवासना है। अगर गौर से देखो इस ससार में तो तुम्हे कामवासना के अतिरिक्त कुछ भी दिखाई न पडेगा। सब जगह नर-मादा का खेल है। इसलिए जिन्होने धर्म की बडी गहरी खोज की है, जैसे कि हिन्दुओ ने बडी गहरी खोज की है, तो हिन्दुओ ने अपने सभी परमात्मा के रूप के साथ नारी रूप को सयुक्त रखा है। तो राम के साथ सीता है, साथ ही नही, राम से भी ज्यादा महत्त्वपूर्ण है। इसलिए हिन्दू सीता-राम कहते हैं, राम-सीता नही कहते, सीता को पहले रखते हैं। वे राधा-कृष्ण कहते हैं, राधा को पहले रखते हैं।

जैनो को यह बात बहुत अखरती रही है कि तुम अपने भगवान के साथ स्त्री को क्यो खडा किये हो?

महावीर अकेले खडे हैं। महावीर ने विवाह किया था, लडकी हुई थी उनके, दामाद था। लेकिन महावीर को माननेवाला जो कट्टरपथी सम्प्रदाय है–दिगबर, वह कहता है, 'उन्होने कभी विवाह किया ही नही। महावीर और विवाह करे? पाप! असम्भव है! यह कपोलकल्पित है। यह अफवाह है विरोधियो की उडाई हुई।'

राम और सीता को जैन नमस्कार भी नही कर सकता, क्योकि कठिनाई सीता की वजह से है। राम की कोई अडचन नही है, कर लेता, लेकिन यह सीता माता जो साथ मे खडी है, यह बरदाश्त के बाहर है।

लेकिन पूरे जीवन का खेल नर और मादा शक्ति का खेल है। सारी प्रकृति नर और मादा शक्ति का मिलन है।

तो क्यो तुम पाप समझते हो? उस युवक को मैंने कहा, "छोडो यह खयाल, अन्यथा मरोगे, मुश्किल मे पडोगे। पाप की तरह देखते क्यो हो? जो है उसके ऊपर तुम अपनी व्याख्या क्यो आरोपित करते हो कि यह पाप है? फिर पाप के कारण, पापी हो गये। फिर अपराध का भाव पैदा होता है, गिल्ट पैदा होती है।"

मनस्विद् कहते हैं कि समस्त धर्मों ने आदमी का शोषण किया है–एक तरकीब से। वह तरकीब है कि आदमी को अपराधी सिद्ध कर दिया है। अपराधी आदमी डरता है। डरा हुआ आदमी घुटने टेककर प्रार्थना करता है। अपराधी आदमी डरता है, यज्ञ हवन करता है। अपराधी आदमी डरता है, पडित को, पुजारी को दान देता है। अपराधी आदमी डरता है, धर्मशाला, मदिर बनाता है। वह जो अपराध उसके भीतर है कि इतने पाप किये हैं, इतके उत्तर मे कुछ तो पुण्य कर लू, नही तो परमात्मा के सामने क्या कहूगा? बडी मुश्किल मे पड जाऊगा। पाप ही पाप है, और दूसरे पलडे पर पुण्य बिलकुल नही है–तो थोडा पुण्य कर लू।

इसलिए पहले धर्मगुरु समझाता है कि तुम कितने पापी हो, फिर समझाता है, अब कुछ करो, इन पापो को मिटाओ। इससे सारा धर्म का शोषण चलता है।

वस्तुत जिन्होने धर्म को जाना है-बुद्ध पुरुषो ने—उन्होने तुम्हे पापी नही कहा। उन्होने तो कहा कि तुम परमात्मा हो। उपनिषदो ने तुम्हे पापी नही कहा। उन्होने तो कहा कि तुम ब्रह्म स्वरूप हो। उन्होने तो कहा कि तुम्हारे भीतर वही छिपा है जो आत्यन्तिक है। तुम खालिस सोना हो। थोडी मिट्टी यहा-वहा से लग भी गई होगी, तो क्या घबडा रहे हो ? क्या डर का कारण है ?

मिट्टी कितनी ही तुमसे लग जाये, तुम मिट्टी नही हो सकते। तुम महानतम नरक मे भी चले जाओ, तो तुम्हारी अन्तर्ज्योति न बुझेगी, जलती ही रहेगी। महापाप से घिर जाओ, तो भी तुम्हारे उद्धार का उपाय समाप्त नही हो गया है। तुम एक क्षण मे वहा से छलाग लगा सकते हो। तुम अपने को खो न सकोगे।

तुम्हारे होने मे ही परमात्मा छिपा है। तुम कितने ही उससे दूर निकल जाओ, जरा तुम मुडोगे, और उसे तुम पीछे खडा हुआ पाओगे। ऐसे ही जैसे कि कोई सूरज की तरफ पीठ करके चले, चलता रहे, हजारो मील चलता रहे—क्या तुम सोचते हो, सूरज उससे हजारो मील दूर हो जाता है ? जिस क्षण वह लौटकर देखेगा, सूरज को पीछे पायेगा। सूरज तो फिर भी दूर है, जिस सूरज की कबीर बात कर रहे हैं, जिस सूरज की मैं बात कर रहा हू—तुम कही भी भागोगे, तुम उससे भाग न सकोगे, क्योकि तुम ही वही हो।

सबसे बडी उद्घोषणा जो तुम्हे अपने जीवन मे कर लेनी है, वह यह है कि मेरे भीतर छिपा परमात्मा है। इस उद्घोषणा के साथ ही तुम्हारे पाप धुल जाएगे। इस उद्घोषणा के साथ ही काटे झड जाएगे। इस उद्घोषणा से तुम पाओगे कि अधेरा खुद तुमसे डरने लगा। और मजा तो तभी है जब पाप तुमसे डरे। तुम पाप से डरो, मजा नही है—जीवन रुग्ण हो गया। मजा तो तभी है, जब तुम जहा जाओ, वहा रोशनी पहुच जाए। तुम अधेरे से भागो, यह बात शोभा नही देती।

इसलिए कबीर के ये वचन तुम्हे बडे क्रान्तिकारी मालूम पडेगे, हैं भी, जलते हुए अगारे हैं। जिस हृदय को इन्होने छू लिया, उस हृदय को रूपान्तरित कर दिया। इन वचनो से जो बच जाये, वह अभागा है।

एक-एक शब्द को गौर से सुनना।

'घर घर दीपक बरै, लखै नहिं अध है।'

कबीर कह रहे है, घर-घर मे जल रहा है उसका दीया। घर-घर मे उसी का नूर है। घर-घर यानी शरीर-शरीर, जल रही है उसी की ज्योति। बडी मजे की

बात है, फिर भी तुम्हे दिखाई नहीं पडती ! कैसे अधे हो !

और यह अधापन भी साधारण अधापन नही है। यह अधापन ऐसा नही है कि आख तुम्हारे पास न हो। तुम बने हुए अधे हो। आख तुम्हारे पास है, और बद किये बैठे हो। अधे भी होते तो क्षमा के योग्य थे। क्या करोगे? आख ही नही होगी तो तुम भी क्या करोगे? पर आख है। भीतर की आख कभी भी अधी नही होती। क्योकि भीतर की आंख का अर्थ केवल होता है, होश की क्षमता। वह तो सभी मे है। चैतन्य तो सभी मे है। वही भीतर की आख है, लेकिन तुम बद किये बैठे हो। न केवल तुम बद किये बैठे हो, बल्कि तुमने बडी श्रद्धा कर ली है अपने अधेपन पर।

मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन मेरे पास आया। एक तो चश्मा वह लगाये हुए था, दो हाथ मे लिये हुए था। मैंने पूछा कि मामला क्या है, इतने चश्मे? उसने कहा कि एक पास देखने के लिए, एक दूर देखने के लिए और तीसरा दो को खोजने के लिए। मैंने कहा, "तुम एक काम करो एक चश्मा और खरीदो, तीन कम हैं।"

उसने कहा, "चौथा किसलिए?"

मैंने कहा, "तुम सोचकर आओ।"

रातभर सोचता रहा, सुबह आकर उसने कहा, "बहुत सोचा लेकिन कुछ समझा नही। तीन मे बात खतम हो जाती है, चौथे की कुछ समझ मे नही आती।"

मैंने कहा, "भीतर कैसे देखोगे? उसकी तो याद ही नही आती। दूर का इन्तजाम कर लिया। दोनो चश्मो को खोजने का भी इन्तजाम कर लिया। सब इन्तजाम तुमने कर लिया—लेकिन बाहर का। भीतर का भी कुछ ख़याल है?"

और भीतर ही जल रही है रोशनी। और जब तक तुम्हे अपने भीतर की रोशनी न दिखायी पडे, तब तक तुम्हे किसी की भी भीतर की रोशनी न दिखायी पडेगी। जब तक तुम अपने को शरीर मानोगे, दूसरे भी तुम्हे शरीर जैसे ही दिखाई पडेंगे। क्योकि दूसरे का बोध तुम्हारे आत्मबोध से ऊपर नही जा सकता। जिस दिन तुम्हे भीतर का जलता हुआ प्रकाश दिखाई पडेगा, उसी क्षण तुम्हे सभी घर मे दीये दिखाई पड जाएगे। ऐसा ही नही कि मनुष्यो मे, पशुओ मे, पक्षियो मे, पौधो मे भी तुम्हे जलती हुई आग दिखाई पडेगी।

सब रोशन है, सारा जगत रोशन है। यहा रोशनी के सिवाय कुछ है ही नही। प्रत्येक चीज रोशनी से बनी है। रोशनी मूल आधार है।

'घर-घर दीपक बरै, लखै नहिं अध है।' पर बडे अद्भुत अधे हो तुम कि घर-घर जो दीया जल रहा है, और दूसरो के घरो मे ही नही, तुम्हारे घर मे भी जो

दीया जल रहा है, वह भी तुम्हें दिखाई नही पडता।

एक आध्यात्मिक अधापन है। तुम भीतर देखते ही नही। तुम भीतर देखने की कला ही भूल गये हो। तुम इतने समय तक बाहर देखते रहे हो कि तुम्हारी आखें जड हो गयी हैं, वे भीतर की तरफ मुडती ही नही।

पक्षाघात जैसे हो जाता है, पेरेलिसिस जैसे हो जाती है, जैसे एक आदमी बैठा ही रहे वर्षों तक और पैरो का न चलाये—तो फिर न चला सकेगा, फिर पैर जड हो जाएगे, पक्षाघात हो जाएगा।

एक आदमी आखो को बद किये बैठा रहे कई वर्षों तक अधेरे मे, तो आखे फिर रोशनी को देखने मे समर्थ न रह जाएगी। क्योकि प्रत्येक चीज सक्रिय रहने से सतेज रहती है, निष्क्रिय होने से क्षमता खो देती है।

तुम्हारी भीतर की तरफ देखने की क्षमता जग खा गई है, तुमने उसका उपयोग ही नही किया। और इसलिए तुम अध जैसे मालूम पड रहे हो। अधे तुम हो नही। अधे तुम हो नही सकते। और अगर तुम्हे लगता हो कि तुम अन्धे हो, और अगर तुमने यह मान लिया कि तुम अन्धे हो, तो तुम्हारी मान्यता ही तुम्हारी मृत्यु हो जायेगी।

लेकिन बडे मजे की बात है! लोग आते है, वे पूछते हैं कि 'ईश्वर कहा है? आप हमे दिखा दे।' वे यह नही पूछते कि हो सकता है, ईश्वर तो हो और हमारे पास देखने की कला न हो। हमे देखने की कला सिखा दे, वे यह नही पूछते। वे पूछते हैं, 'ईश्वर कहा है? अगर है तो दिखा दे।'

उन सभी को यह भ्राति है कि जैसे अगर ईश्वर हो, तो तुम्हे दिखाई पड ही जाएगा, तुम्हारे देखने की क्षमता की जैसे कोई जरूरत ही नही है। जैसे अधा कहे, प्रकाश को दिखा दे—कैसे दिखाइयेगा प्रकाश अधे को? बहरे का कैसे सुनवाइयेगा सगीत? नासापुट जिसके जड हो गये हो, उसे कैसे गध का बोध दिलवाइयेगा? सारा जगत भरा हो सुगध से, पर जिसकी नाक मे पक्षाघात लग गया है, तो क्या कोई उपाय है? और वैसा आदमी अगर जिद कर ले कि जब तक परमात्मा न दिखेगा, तब तक मैं मान न सकूगा, तो वैसा आदमी सदा के लिए अधा रह जाएगा। क्योकि वह यह कह रहा है कि मैं मानूगा तभी जब दिखाई पड जायेगा।

यही श्रद्धा के सूत्र का अर्थ है।

श्रद्धा का अर्थ है जिसे मानने के लिए तर्क के पास कोई कारण न हो, जिसे मानना बिलकुल असम्भव मालूम पडे, जिसे मानना बिलकुल ही अतर्क्य हो—उसे मान लेना। जो दिखाई न पडता हो, जिसका स्पर्श न होता हो, जिसकी गध न

आती हो, और जिसको मानने के लिए कोई भी आधार न हो—उसे मान लेने का नाम है श्रद्धा।

लेकिन श्रद्धा बहुमूल्य सूत्र है। वह अंत नही है, शुरुआत है। जिसे तुम मान लेते हो, उसकी खोज की सम्भावना शुरू हो जाती है। वैज्ञानिक हाइपोथीसिस निर्मित करते हैं। श्रद्धा हाइपोथीसिस है। हाइपोथीसिस का मतलब होता है कि पहले वैज्ञानिक एक सिद्धान्त तय करता है, क्योकि बिना सिद्धान्त तय किये तुम जाओगे कहा, खोजोगे कैसे, क्या खोजोगे ? खोज की शुरुआत ही न हो सकेगी। वह सिद्धान्त सिर्फ प्रारम्भ है, वह कोई अन्त नही है। लेकिन उससे द्वार खुलता है, उससे सम्भावना निर्मित होती है—फिर कोई आदमी खोजने निकलता है। हो सकता है वह मिले, हो सकता है न मिले। क्योकि अधेरे मे तुमने जो तय किया था, उसके मिलने की कोई जरूरत नही है। लेकिन एक बात पक्की है हो सकता है, तुमने जो तय किया था वह न मिले, लेकिन कुछ मिलेगा।

परमात्मा को तुम अभी जानते नही, कोई पहचान नही, कभी देखा नही, कभी मिलन नही हुआ। श्रद्धा का अभी तो इतना ही अर्थ हो सकता है कि हम एक परिकल्पना स्वीकार करते है, और हम खोज मे लगते है—शायद जो परिकल्पना है वैसा सिद्ध हो, न हो। लेकिन एक बात पक्की है कि खोज शुरू हो जायेगी। और जिसकी खोज शुरू हो गई, अन्त ज्यादा दूर नही है। और एक बात यह भी पक्की है कि अज्ञानियो ने जितने ढग से परमात्मा को माना है, अन्तिम अर्थ मे वे कोई भी सही सिद्ध नही होती, वे सभी परिकल्पनाये असिद्ध होती हैं। जो प्रगट होता है, वह सभी परिकल्पनाओ से ज्यादा अनूठा है। जो प्रगट होता है, वह तुम्हारी सभी मान्यताओ से बहुत ऊपर है। जो प्रगट होता है, तुमने उसे सोचा था दीया, लेकिन जो प्रगट हाता है वह महासूर्य है। किसी की परिकल्पना परमात्मा के सबध मे कभी सही सिद्ध नही होती, हो भी नही सकती।

छोटा-सा मन है, छोटा-सा आगन है—कितना बडा आकाश उस आगन मे समायेगा ? छोटे-छोटे हाथ हैं। इन छाटे-छाटे हाथो से उस विराट को छूने की कोशिश—कितना विराट तुम छू पाओगे ? बूद जैसी क्षमता है, सागर को खोजने निकले हो—कितना सागर तुम अपने मे ले पाओगे ?

लेकिन श्रद्धा के बिना यात्रा शुरू नही होती। श्रद्धा का कुल इतना ही अर्थ है कि साहस की हम तैयारी करते है, हम ज्ञात से न बधे रहेगे, अज्ञात में उतरने के लिए हमारी हिम्मत है, हम डरे-डरे अपने घर मे कैद न रहेगे, हम खुले आकाश के महा अभियान पर निकलते हैं।

एक बात पक्की है कि तुम जो भी मानकर निकलोगे, वह तुम कभी न पाओगे, क्योंकि तुम अभी जानते नही तो ठीक मान कैसे सकोगे ?

सम्यक् श्रद्धा तो ज्ञान से घटित होगी। लेकिन सम्यक् श्रद्धा के पहले एक परिकल्पित श्रद्धा है, हाइपोथेटिकल है। वैज्ञानिक भी उसके बिना काम नही कर सकता, तो धार्मिक तो कैसे कर सकेगा ?

तो, श्रद्धायें दो प्रकार की हैं। एक श्रद्धा है साहस का नाम, जो अज्ञान से बाहर लाती है, द्वार बनती है। वह कोई उपलब्धि नही है, वह केवल प्रस्थान है, शुरुआत है। और दूसरी श्रद्धा है जो ज्ञान के बाद हृदय मे आरोपित होती है। उस दूसरी श्रद्धा को फिर डिगाने का कोई उपाय नही है। पहली श्रद्धा डिगायी जा सकती है। पहली श्रद्धा ऐसी है जैसे नया-नया लगाया गया रोपा, उसे कोई बच्चा भी उखाड ले सकता है। नये रोपे की तो बडी सुरक्षा करनी पडती है, चारो तरफ बागुड लगानी पडती है, देखभाल रखनी पडती है। एक बार वृक्ष की अपनी जडे जमीन को पकड लेती हैं, एक बार वृक्ष जमीन के साथ एक हो जाता है, फिर बागुड की कोई जरूरत नही। फिर बच्चे उसे न उखाड पाएगे। फिर कोई उसे नुकसान न पहुच पाएगा। फिर तो वृक्ष बडा हो जाएगा। फिर तो सैंकडो लोग उसके नीचे बैठकर छाया पा सकेंगे।

इसलिए प्राथमिक रूप से जब श्रद्धा मे कोई उतरता है तो बडी सावधानी की जरूरत है, क्योंकि चारो तरफ अन्धो की भीड है। वह तुमसे कहेगी, 'क्या मान रहे हो ? क्या कर रहे हो ? पागल हो गये ? दिमाग तो ठीक है ?' वह अन्धो की भीड बच्चो की तरह है, वह तुम्हारे पौधे को उखाड दे सकती है।

प्राथमिक चरण मे श्रद्धा को ऐसे ही बचाने की जरूरत पडती है, जैसे स्त्री गर्भिणी होती है और अपने गर्भ को बचाती है, सभलकर चलती है, एक-एक पैर सभालकर उठाती है—कही गिर न पडे। क्योंकि अब एक ही जीवन नही, दो जीवन दाव पर लग गए है। ऐसे ही जिस दिन तुम्हारे जीवन मे श्रद्धा का बीज आरोपित होता है—तुम गर्भ से भर गये, अब परमात्मा ने तुम्हारे भीतर पहला रूप लिया है।

बीज वृक्ष की क्या खबर दे सकता है ? बीज तो ककड-पत्थर जैसा मालूम पडता है। इससे फूलो का क्या नाता जोडोगे ? तो पहली श्रद्धा कभी भी अन्तिम श्रद्धा की कोई झलक नही दे सकती। लेकिन पहली श्रद्धा के बिना अन्तिम श्रद्धा के आने का कोई उपाय नही। और पहली श्रद्धा ही तुम्हारी जीवन-चिन्तना का ढग बदलेगी, शैली बदलेगी। पहली श्रद्धा का अर्थ होता है अब तुम यह न पूछोगे कि परमात्मा है या नही। अब तुम यह पूछोगे कि 'मेरी आख कैसे सुधर जाये कि

अगर वह हो तो उसे मैं देख लू, और अगर न हो तो उसके न होने को देख लू। लेकिन आख मेरी कैसे सुधर जाये ?' तुम्हारी सारी वृत्ति अब परमात्मा है या नही, इससे सबधित न रही, अब इससे सबधित हो गयी कि मेरी देखने की क्षमता कैसे साफ हो जाये। होगा तो देख लेगे, न होगा तो न-होना देख लेगे। लेकिन अब बिना देखे न रहेगे। जिसने यह तय कर लिया कि अब अधे न रहेगे, अब आख चाहिए, बिना देखे न रहेगे, अब दर्शन चाहिए—वह पहली श्रद्धा को उपलब्ध हुआ।

'घर-घर दीपक बरै, लखै नहिं अध है। लखत लखत लखि परै, कटै जमफद है।' और जिसने देखने की कोशिश की—'लखत लखत लखि परै'—ऐसा देखते-देखते एक दिन दिखाई पड जाता है, क्योंकि वह तो मौजद है, सिर्फ आख की कमी है। ये शब्द बडे बहूमूल्य हैं—'लखत लखत लखि परै।' ऐसा देखते ही रहोगे, खोजते ही रहोगे, टटोलते ही रहोगे—इस कोने, उस कोने, इस दिशा मे, उस दिशा मे, इस आयाम, उस आयाम, रुकोगे न, देखते रहोगे, खोजते ही रहोगे—तो देखते-देखते-देखते एक दिन अचानक आख खुल जाती है।

आख तो है, सिर्फ उपयोग न करने से बद पडी है। अधे तुम हो नही। अधा कोई भी नही है। अधे भी अधे नही है। अधे को भी परमात्मा दिखाई पड सकता है क्योंकि बाहर की आख का कोई सवाल नही है, भीतर की ज्योति की बात है।

'लखत लखत लखि परै, कटै जमफद है।' और जैसे ही वह दिखाई पड जाता है, वैसे ही मृत्यु का पाश कट जाता है। फिर मरनेवाला कोई भी न बचा। जिसने परमात्मा की एक झलक भी पा ली, उसने अमृत की झलक पा ली।

परमात्मा यानी अमृत। तुम यानी मृत्यु। तुम जब तक समझते हो कि तुम ही हो, परमात्मा नही, तब तक तुम मृत्यु के फदे मे हो। जिस दिन तुमने पाया कि मैं नही हू, परमात्मा है, उसी क्षण—'कटै जमफद है।'

लेकिन देखते-देखते-देखते दिखाई पडता है। ऐसे ही जैसे कभी तुम भरी दुपहरी मे लम्बी यात्रा करके घर लौटे, धूप से आखे चकमका गई हैं धूप ने आखो को थका डाला है, धूप ने आखो को बुरी तरह आक्रमित किया है—क्योंकि धूप हमला करती है आख पर, हर क्षण बाहर की रोशनी आख पर चोट करती है—थके-मादे, धूप से थके-हारे तुम घर लौटे हो, अधेरा मालूम पडता है घर मे, कुछ दिखाई नही पडता, आखें इतनी थक गयी हैं और धूप की इतनी आदी हो गयी है कि यह जो धीमी-सी शान्त रोशनी है घर के भीतर यह दिखाई नही पडती। लेकिन अगर तुम शान्त होकर, शिथिल होकर लेट गये, बैठे रहे थोडी देर—'लखत-लखत लखि परै'—धीरे-धीरे आख शान्त रोशनी के लिए राजी हो जाती है, फिर से पा लेती है अपनी

ऊर्जा–विश्राम से। धूप ने थकाया था, वह थकान मिट जाती है। धीरे धीरे कमरे में रोशनी ज्यादा होने लगती है। कमरा वही है, रोशनी उतनी ही है, सिर्फ तुम्हारी आख बदल रही है। अब आख की क्षमता प्राप्त हो रही है। अब कमरे मे तुम्हे परिपूर्ण रोशनी दिखाई पडने लगती है।

चोर अधेरे घर मे भी देख लेता है। तुम अपने घर मे न चल सको, और चोर तुम्हारे घर मे बडी शान से चल लेता है। तुम दिन मे भी चलते हो तो चीजो से टकरा जाते हो, तुम्हारे पराये घर मे जहा चोर कभी नही आया, वहा वह इतना देखकर चलता है, सम्हलकर चलता है कि तुम्हारी जमायी हुई चीजो से नही टकराता। अधेरे मे चोर को धीरे-धीरे दिखाई पडने लगता है।

अधेरे मे भी देखने से दिखाई पडने लगता है, तो भीतर तो बडी शान्त रोशनी है, अधेरा नही है। लेकिन जो लोग भी ध्यान मे पहली दफा उतरते हैं, उनको यही प्रतीत होता है कि भीतर अधेरा है। लोग मुझसे आकर कहते है कि 'आप कहते है रोशनी, हम आख बद करते हैं, सिवाय अधेरे के कुछ दिखाई नही पडता।'

तुम रोशनी से थके हुए आये हो, जन्मो-जन्मो तक धूप से आक्रान्त–थोडा समय चाहिए। 'लखन लखन लखि परै।' थोडा बैठो भीतर, थोडा विश्राम करो। जल्दी मत करो। अभी तुम्हारी आखो का भीतर की रोशनी के साथ तालमेल बिठाना पडेगा। जब तालमेल बैठ जायेगा, तब तुम देख पाओगे। तब एक अनूठी रोशनी का दर्शन होता है, जो रोशन तो है लेकिन जलाती नही।

यहूदियो की बडी पुरानी कथा है कि हजरत मूसा जब सिनाई के पर्वत पर गये तो अचानक उन्होने आवाज सुनी कि जूते उतार दे, क्योकि यह पवित्र भूमि है। तो डरकर उन्होने जूते उतार दिये। आगे बढे तो उन्होने एक झाडी मे आग को जलते देखा। वे बडे हैरान हो गये। वह बडा चमत्कारी अनुभव था। आग तो जल रही थी और झाडी जल नही रही थी। आग मे तो लपटें निकल रही थी, झाडी हरी की हरी थी।

यहूदियो को बडी मुश्किल हुई यह समझाने मे कि इसका क्या मतलब होगा। इसका मतलब बाहर की किसी कथा से नही है, इसका मतलब भीतर की आग से है। भीतर एक ऐसी आग है जो जलती है और जलाती नही। एक बडी ठढी रोशनी है, ठढी आग–बरफ जैसी ठढी, और आग जैसी उज्ज्वल। जब तुम भीतर जाओगे तो बाहर की रोशनी से इस रोशनी का गुणधर्म अलग है। इसलिए तुम्हारे पास नयी आखे चाहिए जो इसे देख सके। और तुम्हे अपनी आखो को धीरे-धीरे-धीरे समायोजित करना होगा।

ध्यान की सारी प्रक्रियाए और कुछ भी नही हैं, सिवाय इसके की तुम्हारी बाहर देखने के लिए जो आदत बनी है आखो की, उसमें एक नयी आदत को प्रवेश करवा दें कि तुम भीतर देखने मे धीरे-धीरे कुशल हो जाओ। कुछ करना नही है। अगर तुम शात बैठकर रोज भीतर देखते रहो, कितना ही अधेरा हो, अधेरे को ही देखते रहो—अधेरे को भी देखते-देखते-देखते तुम एक दिन पाओगे कि अधेरा कम होने लगा, एक धीमी-सी रोशनी आने लगी। अगर तुम देखते ही गये, देखते ही गये, तो एक नयी रोशनी का जगत प्रारम्भ हो जाता है।

'लखत-लखत लखि परै, कटै जमफद है।'

'कहन सुनन कछु नाहि, नही कछु करन है।'

कबीर कहते हैं, न तो कुछ कहने को है उस सबध मे, क्योकि जो भी कहो, वह गलत हो जाता है, जो भी कहो वह गलत है। क्योकि भाषा तो बाहर की है और अनुभव भीतर का है—तालमेल नही बैठता। जो भी कहो गलत हो जाता है। सब शास्त्र गलत हो गये। सब ज्ञानी गलत हो गये। सिर्फ पडित को खयाल होता है कि वह जो कह रहा है वह सही है, ज्ञानी को तो पक्का ही खयाल होता है कि वह जो कह रहा है वह सही नही है। वह कह रहा है इसलिए नही कि वह सोचता है कि कह सकेगा, वह कह रहा है इसलिए कि तुम बिना कहे न सुनोगे। तुम कहने से भी नही सुन पाते, तो बिना कहे तो सुनना बहुत असम्भव है।

ज्ञानी के वचन भीतर की बात कहने के लिए नही है, जो बाहर भटक रहे हैं, उनको भीतर बुलाने के लिए हैं। ज्ञानी के वचन तो ऐसे हैं जैसे मदिर का घटा होता है कुछ कहता नही, सिर्फ बुलाता है। हर मदिर के सामने घटा टगा है। मस्जिद के पास सुबह अजान देने के लिए मुल्ला चढ जाता है। ज्ञानी के वचन तो अजान की तरह है—कुछ कहता नही, सिर्फ जो सोये हैं, उनको जगाता है, पुकारता है, बुलाता है। एक निमत्रण है ज्ञानी के वचन मे, सत्य की अभिव्यक्ति नही।

इसे ठीक से समझ लेना। पडित भर को यह खयाल होता है कि वह जो कह रहा है वह ठीक कह रहा है, क्योंकि उसे पता नही है कि ठीक क्या है। उसे शब्दो का ही पता है। जिसे सत्य का पता है वह भलीभाति जानता है कि कोई शब्द सत्य को प्रकट करने मे समर्थ नही है। वह चेष्टा ही असभव है।

वह तो ऐसा ही है, समझो कि कोई सौंदर्य को गणित की भाषा मे प्रगट करना चाहे—कैसे करियेगा? सौंदर्य और गणित का कोई मेल ही नही बैठता। अगर सौंदर्य को प्रगट करना हो तो काव्य की भाषा चाहिए। और वह भी कोई साधारण सौंदर्य हो तो काव्य की भाषा काम आ जायेगी, अगर कोई असाधारण सौदर्य हो

तो काव्य भी ठिठककर खडा हो जाएगा, कविता भी मूक हो जाएगी।

अगर प्रेम की बात कहनी हो तो बाजार की भाषा मे नही कही जा सकती। बाजार की भाषा प्रेम के लिए नहीं है, शोषण के लिए है। बाजार की भाषा बाजारू है। प्रेम की भाषा हृदय की है। और वह भी छोटा-मोटा प्रेम हो तो थोडा-सा डगमगाकर कुछ कहा जा सकता है, लेकिन वह भी ऐसा ही होगा जैसे छोटे बच्चे तुतला रहे हो। अगर प्रेम परमात्मा से हो, भक्ति हो, फिर कुछ कहने का उपाय नही, वहा तो मौन ही एकमात्र भाषा है।

सारी भाषा बाहर की है। भीतर की कोई भाषा नही है, हो ही नही सकती।

पूछा जा सकता है कि हजारो-हजारो साल से ज्ञानी भीतर जा रहे हैं, अब तक भीतर की भाषा विकसित क्यो नही हुई? कोई नयी घटना तो नही है। उस भीतर के देश मे न मालूम कितने लोग गये हैं! न मालूम कितने लोग वहा से डूबकर और सिक्त होकर आये हैं! मालूम कितनो ने भीतर के उस अतर्ध्यान मे लीनता पायी है! अब तक भीतर की भाषा विकसित क्यो नही हो सकी? कारण है। भाषा की जरूरत होती है जहा दो हो। भीतर तो तुम अकेले ही होते हो। अकेले मे तो भाषा की कोई जरूरत नही होती। भाषा की जरूरत होती है जहा दो हो, जहा द्वैत हो, अद्वैत मे तो भाषा का कोई सवाल ही नही उठता। जहा अकेले ही हैं, वहा किससे बोलना है, किसको बोलना है? तो भीतर तो आदमी जाकर बिलकुल गूगा हो जाता है। कबीर कहते है, 'गूगे केरी सरकरा, खाये और मुसकाये।' गूगा खा लेता है शक्कर, और मुस्काता है।

वैसे ही भीतर का अनुभव है कि वहा एक ही बचता है, और वह एक भी इतने अपरिसीम आनद-उत्सव मे लीन हो जाता है कि कौन खोजे भाषा और किसके लिए खोजे? जब बाहर आता है भीतर से, तब अडचन शुरू होती है—बाहर खडे है लोग, इनको बताना मुश्किल हो जाता है। तो कबीर कहते हैं, 'कहन सुनन कछु नाहिं'—न तो कुछ कहने को है, न कुछ सुनने को है। कहना-सुनना दोनो छोडकर, मार्ग पकडना है 'होने' का। बहुत कहा गया, बहुत सुना गया है—कुछ भी हुआ नही। 'होने' का एकमात्र मार्ग है।

'नही कछु करन है'—करने को भी कुछ नही है।

इसलिए मैं कहता हू, ये बडे क्रातिकारी वचन हैं। कोई करने की बात नही है। क्या करोगे उसे पाने के लिए? जिसे पाया ही हुआ है, उसे पाने के लिए क्या करोगे? जो भीतर छिपा ही है, मौजूद है, जो तुम्हारे साथ ही चला आया है, जो तुम्हारी अन्तरसम्पदा है—उसे पाने के लिए क्या करोगे? उसे जितना तुम पाने की

कोशिश करोगे, उतनी ही अड़चन खड़ी होगी। जैसे कोई अपनी ही खोज मे निकल जाये—भटकेगा। दूसरे की खोज, समझ मे आती है, अपनी ही खोज—कहा खोजोगे? हिमालय जाओगे? मक्का-मदीना, काशी, गिरनार—कहा जाओगे?

एक दिन बाजार मे लोगो ने देखा कि नसरुद्दीन अपने गधे पर बैठा तेजी से भागा जा रहा है। भीड मे से कुछ लोग चिल्लाये, "नसरुद्दीन, कहा जा रहे हो?" लेकिन उसने कहा कि अभी समय नही, जल्दी मे हू। और वह भी भागते हुए, गधे पर उसने चिल्लाकर कहा कि अभी समय नही है, बहुत जल्दी मे हू। घटेभर बाद वापस लौट रहा था—बहुत उदास, तो लोगो ने पूछा, "मामला क्या था? इतनी जल्दी क्या थी?" उसने कहा कि मैं अपने गधे को खोजने जा रहा था और इतनी जल्दी मे था कि यही भूल गया कि मैं गधे पर ही बैठा हू। जल्दी के कारण इतनी भी फुर्सत न मिली कि मैं ठीक से देख लू।

बहुत बार ऐसा हो जाता है कि तुम चश्मा लगाये हो और चश्मा खोज रहे हो, चश्मे ही से चश्मा खोज रहे हो। और जल्दी मे अक्सर हो जाता है। कभी अगर तुम्हे जल्दी ट्रेन पकडनी है, तो तुम्हे पता होगा कि जो बटन सदा अपने ही काज मे लगती थी, वह दूसरे काज मे लग जाती है।

एक होटल मे आग लग गयी। बडी घबडाहट फैल गयी। विक्षिप्तता आ गई लोगो मे। भयकर आग थी, बामुश्किल लोग बाहर निकल पाये। नसरुद्दीन भी होटल मे ठहरा हुआ था। वह नीचे बढा, शान से सीढिया उतरते हुए आया और उसने कहा, "क्या मर्द होकर, और इस तरह शोरगुल मचा रहे हो? एक मुझको देखो। जब मैंने देखा कि आग लग गई, तो उस वक्त मैं चाय पी रहा था। तो पहले तो मैंने अपनी चाय पूरी की, फिर अपनी टाई बाधी। टाई की गाठ ठीक न लगी थी तो आइने के पास जाकर गाठ ठीक की। एक मैं आदमी हू, और एक तुम नामर्द की तरह चिल्लाये भागे जा रहे हो।"

भीड ने कहा, "वह तो ठीक है, लेकिन आप पायजामा क्यो नही पहने हुए है?"

वे बिना ही पायजामा के खडे थे!

जल्दी मे होश खो जाता है, तुम वही खोजने लगते हो, जिसे तुमने कभी खोया नही था। और आदमी बडी जल्दी मे है। मौत पास खडी है, वह घबडाहट और एक जल्दबाजी पैदा करती है।

पूरब के लोग इतनी जल्दी मे नही है। इसलिए पूरब के लोग कभी-कभी आत्मा को खोज लेते हैं, पश्चिम के लोग नही खोज पाते, क्योकि वे और भी जल्दी मे हैं।

पश्चिम मे एक बडा दुर्भाग्य घटित हो गया। वह दुर्भाग्य यह था कि ईसाई,

यहूदी और मुसलमान, तीनो ने एक ही जन्म का सिद्धात मान लिया—बस यह एक ही जन्म, जन्म और मृत्यु, सत्तर साल बस! इस अनत यात्रा मे कुल सत्तर साल का वक्त है—बहुत कम, करने को बहुत ज्यादा, समय बहुत कम। इसलिए पश्चिम एक हडबडाहट मे है, सदा भागा हुआ है, तेजी है, और तेजी को बढाये जाता है। ये जो जेट और अतरिक्ष-यान पैदा हो रहे हैं, अगर इनको कोई किसी दिन गौर से समझेगा कि ये भीतर के जल्दबाजी के परिणाम है। गति को बढा रहे है—स्पीड, ताकि समय बडा हो जाये गति के माध्यम से।

अगर तुम बैलगाडी मे चलते हो तो जहा पहुचने मे तुम्हे दो दिन लगेगे, वहा तुम दस मिनट मे हवाई जहाज से पहुच जाते हो—तो तुमने दो दिन बचा लिये।

समय बहुत कम है, और समय को बचाना है, तो जितनी स्पीड हो जाये हर चीज मे, उतना ज्यादा समय बच जाएगा। ऐसा खयाल है, बचता नही है। क्योकि, जो समय बचता है, उसको भी तुम स्पीड मे ही लगाते हो ताकि वह और बच जाये। अन्तत तुम पाते हो कि दौडे बहुत, पहुचे कही भी नही।

ऐसा हुआ कि अमरीका मे पहली दफा ट्रेने चलाई गईं, ट्रेन की पटरिया डाली गईं, तो एक आदिवासी कबीले मे भी पहली दफे ट्रेन गुजरनेवाली थी। अमरीकी प्रेसिडेट उसका उद्घाटन करने गया। स्टेशन पर पेड के नीचे एक आदिवासी लेटा हुआ सारा दृश्य बडे मजे से देख रहा है, बीच बीच मे अपने हुक्के से दम लगा लेता है, फिर अपने लेटकर वही देख रहा है—ऐसे जैसे दुनिया मे कुछ करने को नही है। प्रेसीडेट उसके पास गया और उसने कहा कि तुम्हे शायद पता नही कि यह बडी ऐतिहासिक घटना है इस ट्रेन का गुजरना। उस आदिवासी ने पूछा, इससे क्या होगा? तो प्रेसिडेट ने उसे समझाने के लिए कहा कि तुम लकडिया काटकर शहर जाते हो बेचने—कितने दिन लगते हैं? उसने कहा कि दो दिन जाने मे लगते हैं, एक दिन बेचने मे लग जाता है, दो दिन लौटने मे लगते हैं—सप्ताह मे पाच दिन लग जाते हैं और फिर दो दिन घर आराम करना पडता है, फिर जाना पडता है। अभी ये आराम के दिन हैं—दो दिन।

प्रेसीडेट ने कहा, "अब तुम समझ सकोगे। ट्रेन से तुम घण्टेभर मे पहुच जाओगे, और दिनभर मे बिक्री करके रात घण्टेभर मे घर वापस आ जाओगे।" सोचा था प्रेसिडेट ने कि आदिवासी बहुत प्रसन्न होगा, वह थोडा उदास हो गया। उसने कहा, "फिर छह दिन, बाकी दिन क्या करेगे? यह तो बहुत झझट हो गई।"

समय कम है तो बचाओ। बचाने का अर्थ है, गति को तेज कर लो, सब चीजो मे गति कर लो। सब चीजो मे गति हो जाती है, एक हडबडाहट पैदा हो

जाती है, भीतर एक तनाव पैदा हो जाता है। तुम सदा भागे-भागे हो, जहा हो वहा नही हो। तुम्हे कही और आगे होना था, वहा तुम अभी पहुंचे नही हो। जब तुम वहा पहुचोगे, तब तुम वहां नही हो। तुम सदा अपने से आगे भागे जा रहे हो। इस प्रकार चित्त बहुत अशान्त और बेचैनी से भर जाता है। ऐसी हडबडी मे कैसे तुम स्वय को पा सकोगे? क्योकि स्वय का पाने के लिए एक स्थिति चाहिए—जैसे कही नही जाना, कुछ नही करना, सिर्फ आख बद करके बैठे रहना है, अपने मे डूबना है। इसलिए पूरब मे तो कभी-कभी आत्मज्ञान की घटना घट जाती है, पश्चिम मे बहुत मुश्किल हो गयी है। और पूरब मे घट जाती है, क्योकि पूरब को खयाल है कि जल्दी कुछ भी नही है। यह जन्म ही नही, अनत जन्म हैं। यात्रा लम्बी है। समय बहुत है। विश्राम किया जा सकता है।

जिसने विश्राम की कला सीख ली, जिसने विराम का राज समझ लिया, वह परमात्मा को उपलब्ध हो जायेगा। यह बात तुम्हे बडी बेबूझ लगेगी। श्रम से कभी किसी ने परमात्मा को नही पाया। श्रम से ससार पाया जाता है, बाहर की वस्तुए पायी जाती हैं, विश्राम से परमात्मा पाया जाता है, भीतर का अस्तित्व पाया जाता है।

बाहर कुछ पाना हो तो दौडना, नही तो न पा सकोगे। इसीलिए तो भारत नहीं पा सका, बाहर की दुनिया मे गरीब रह गया। पूरब बाहर की दुनिया मे कुछ भी नही पा सका, मुश्किल से जी रहा है। पश्चिम ने बाहर की दुनिया मे अबार लगा लिये, इतनी चीजे इकट्ठी कर ली कि अब यही समझ मे नही आता है कि इनका उपयोग करो कैसे, इनका उपयोग क्या हुआ? पूरब दरिद्र रह गया, पश्चिम अमीर हो गया।

बाहर की दुनिया मे कुछ करना हो तो बडी सक्रियता चाहिए। क्योकि बाहर की दुनिया तुम्हे मिली ही हुई नही है, उसे पाने के लिए चेष्टा करनी पडेगी। और भीतर की दुनिया मे कुछ करना हो तो विश्राम चाहिए, परम विश्राम चाहिए। क्योकि वहा तो मिला ही हुआ है, वहा कुछ करना नही है, सिर्फ विश्राम की अवस्था लानी है ताकि चित्त के तनाव तुम्हे बाहर न खीचे, ताकि चित्त की तरगे तुम्हे उलझाये न, चित्त निस्तरग हो जाये—तो अचानक तुम गिर गये उस गहन खाई मे जिसका नाम परमात्मा है।

'कहन सुनन कछु नाहिं, नही कछु करन है। जीते-जी मरि रहै बहुरि नहिं मरन है ॥' और यही बात है, जिसको मैं विश्राम कह रहा हू, उसको कबीर जीते-जी मरना कह रहे हैं। आखिर रात जब तुम नीद मे सोते हो तो करते क्या हो?—थोडी

देर को मर जाते हो। नींद रोज-रोज का छोटा-छोटा मरना है, और मृत्यु लम्बी देर के लिए मरना है। फिर पैदा हो जाओगे। जैसे रात सोओगे, सुबह जग जाओगे—ऐसे ही इस शरीर में मरोगे, दूसरे शरीर में पैदा हो जाओगे। अन्तर केवल परिमाण का है, गुण का नहीं है। इसलिए निद्रा मृत्यु जैसा है और मृत्यु निद्रा जैसी है।

'जीते-जी मरि रहै'—तो फिर जीते-जी मरने की क्या कला होगी? वह यही होगी कि जब तुम्हें मौका मिले, आंख बन्द करके मर रहो बाहर की तरफ, जैसे बाहर नहीं है, जैसे तुम नींद में खो गये। होश में रहते हुए नींद में खो जाओ। जागे-जागे बाहर की तरफ मर जाओ। बाहर मिट जाये, तुम बाहर के लिए मिट जाओ—सिर्फ भीतर रह जाये, एकमात्र अस्तित्व भीतर का बचे।

'जीते-जी मरि रहै, बहुरि नहिं मरन है।' और जिसने ऐसे मरने की कला सीख ली, फिर वह कभी नहीं मरता। फिर तो वह मरते समय भीतर जीता है। फिर तो मरते समय भी वह भीतर जागता है। फिर तो मौत को भी वह देखते हुए गुजरता है। फिर मृत्यु में भी वह होश को कायम रखता है। क्योंकि होश भीतर की बात है। तुम्हें एक दफा भीतर जाना आ गया, तो मरते वक्त तुम रोओगे, चिल्लाओगे, चीखोगे नहीं, तुम आंख बंद कर लोगे, चुपचाप भीतर डूब जाओगे। और यह जो भीतर डूबना है, अगर तुम्हें मौत में आ गया, फिर कैसी मौत!

शरीर मरेगा, मन मरेगा, तुम नहीं मरोगे। वह जाननेवाला, जागनेवाला जागा ही रहेगा, जीवित ही रहेगा—वही अमृत है।

'जीते-जी मरि रहै, बहुरि नहिं मरन है।' फिर न उसका कोई जन्म है, न मृत्यु, वह आवागमन के पार हो गया।

'जोगी पड़े वियोग, कहै घर दूर है।' कबीर बड़ा मजेदार व्यंग कर रहे हैं। वे कह रहे हैं, 'जोगी पड़े वियोग!'

योगी का अर्थ होता है जो मिले ही हुए हैं—वे वियोग कर रहे हैं! परमात्मा से जो मिले ही हुए हैं, वे भी रो रहे हैं और पूछ रहे हैं कि परमात्मा कहां है!

'जोगी पड़े वियोग।' वियोग कभी हुआ ही नहीं उससे। योग की बात ही करनी बेकार है। जिससे कभी हम दूर ही नहीं हुए, उसको पास लाने का क्या कारण है?

मछली ने कभी सागर छोड़ा है? वह सागर में ही पैदा होती है, सागर में ही लीन होती है। परमात्मा में हम जी रहे हैं, उसी में श्वास लेते, उसी में उठते बैठते, चलते, भटकते, पाते—सब उसी में घट रहा है। खोते भी हैं, तो भी उसी के भीतर हैं, पाते हैं तो भी उसी के भीतर हैं। उससे बाहर होने का कोई उपाय नहीं है।

मछली तो कभी-कभी छलांग लगाकर तट पर भी आ सकती और तड़प सकती है, लेकिन परमात्मा के बाहर होने का कोई उपाय नही, क्योंकि उसके बाहर कोई तट ही नही है। वह तटहीन सागर है। उससे बाहर जाने की कोई जगह नही है, क्योकि उसके बाहर कुछ नही है, वही सब कुछ है।

कबीर बड़ी गहरी मजाक कर रहे है। कह रहे है, 'जोगी पड़े वियोग'—जो जुड़े ही हुए हैं, वे विरह का गीत गा रहे हैं, वे कह रहे है, कब होगा मिलन ? रो रहे हैं, छाती पीट रहे हैं। यह विधि, वह विधि कर रहे है, त्याग, तप, यज्ञ, चला रहे हैं।

'जोगी पड़े वियोग, कहै घर दूर है।'—कि घर बहुत दूर है। 'पासहि बसत हजूर, तू चढत खजूर है।'—और वे तुम्हारे पास ही बैठे हैं, उनको खोजने के लिए आप खजूर पर चढ रहे है। नाहक गिरोगे, हाथ-पैर तोड लोगे। बहुत-से योगी खजूर पर चढ़कर गिरते हैं। खजूर पर चढने का मतलब ही है कि गिरने का उपाय करना। इसलिए बड़ा प्रसिद्ध शब्द है—'योग-भ्रष्ट', वह खजूर पर चढने से होता है। कोई जरूरत ही न थी खजूर पर चढने की, और भ्रष्ट होने की। सिर्फ योगी ही भ्रष्ट होते हैं। तुमने किसी और को भ्रष्ट होते देखा ? जो जमीन पर चल रहा है, वह भ्रष्ट किसलिए होगा ? वह गिरेगा कैसे ? खजूर पर चढे कि अड़चन आई।

दूर नही है परमात्मा, खजूर पर नही बैठा है। वह कोई पागल नही है कि खजूर पर बैठे। लेकिन अहकार को चढने मे मजा आता है, खजूर चढने मे खास-कर, क्योंकि और किसी झाड पर चढना आसान है—कुछ सहारे है, कुछ शाखाए रहती हैं, कुछ पकड सकते हो। खजूर तो बिलकुल सर्कस का काम है। उस पर तो बडी कुशलता हो, बडा अभ्यास किया हो, योग-साधना की हो, तभी कोई चढ सकता है। बडे सयम की जरूरत है खजूर पर चढने मे, और आखिरी-आखिरी पहुचकर भी आदमी गिर जाता है।

मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन चढा। खजूर पक गये थे और उससे न रहा गया। डरा तो बहुत, क्योंकि अभ्यास न था कोई। मगर पके फल ! रस बहने लगा। रुक न सका। सुरक्षा करने के लिए उसने कहा, "हे परमात्मा ! अगर सही-सला-मत पहुच गये और फल पा लिये, तो चार आने चढाऊगा, नकद चार आने ! ध्यान रखना, अपने भक्त की फजीहत न करवा देना।"

वह चढा, याद करते हुए परमात्मा को। पहुच गया। जब बिलकुल फल करीब आ गये तो उसने कहा कि फल चार आने के मालूम ही नही पडते। चार आने मे इतनी मेहनत और चार आना चढ़ाना ? दो आना काफी है। ऐसा मन मे उठा

कि दो आना काफी है। और पहुच भी गये, ऐसी कोई जरूरत भी नही है सुरक्षा की। जब फल हाथ मे ही आ गये, तो उसने सोचा कि 'अरे, मैं तो सोचता था, पके हैं, आधे तो कच्चे है। एक आने से चल जाएगा।' और जब वह बिलकुल तोड़ने के ही करीब था फल, तो उसने सोचा कि 'चढ़े तो हम और पैसा तुम्हे चढाये ?'

इसी चिन्ता मे पैर चूक गया, भडाम से नीचे गिरा। ऊपर आकाश की तरफ मुह करके कहा कि 'हद हो गयी, जरा मजाक भी नही समझते ! अगर फल पा लिये ही होते तो चार आने क्या, आठ आना चढा देता !'

चढने मे एक चुनौती है और अहकार के लिए चढाई बडी प्रीतिकर है। जो अहकार चढाता है फिर वही अहकार गिराता भी है।

चढकर भी जाओगे कहा ? खजूर कोई मार्ग थोडे ही है जो कही पहुचता है। अन्तत अन्त आ जायेगा। फिर क्या करोगे ?

सब योग-विधिया आखीर मे उस जगह आ जाती है, जहा से आगे जाने का कोई उपाय नही। विधि का अन्त आयेगा ही। साधना की एक सीमा है। परमात्मा की कोई सीमा नही है, और साधना की सीमा है। तो तुम साधना से असीम को कैसे पा सकोगे ?

नही, कुछ करने से नही पाया जाता परमात्मा, न करने से पाया जाता है। इसको कबीर 'सहज योग' कहते हैं। इसलिए कबीर बार-बार दोहराते है, 'साधो सहज समाधि भली।'

सहज का मतलब है नाहक चढो मत खजूर, शात जीवन को जीयो, सहजता से जीयो, स्वाभाविकता से जीयो, सरलता से जीयो, व्यर्थ की उलझने मत खडी करो। न तो कोई नाक बन्द करने की जरूरत है, न कोई शीर्षासन करने की जरूरत है। कोई खजूर नही चाहिए—'पासहि बसत हजूर तू चढत खजूर है।।'

'बाह्मन दिच्छा देत सो घर घर घालिहै। मूर सजीवन पास, तू पाहन पालिहै।।'

कबीर कहते है, ब्राह्मणो से जिन्होने दीक्षा ली, वे भटकेंगे। ब्राह्मण यानी पडित—जिसने जाना नही और जिसे जानने का खयाल है, जो बिना जाने ज्ञानी हो गया है, वह अज्ञानी से भी बदतर है। क्योकि, अज्ञानी कम-से-कम दूसरे को न भटकायेगा। अज्ञानी कम-से-कम डरेगा कि मुझे पता नही। अज्ञानी कम-से-कम विनम्र होगा। लेकिन ब्राह्मण, पडित ? वह तो जानता ही है, और वह दूसरो को भटकाता है। वह दूसरो को दीक्षा दे रहा है। वह लोगो को कह रहा है कि चलो इस मार्ग पर। कोई वेद के मार्ग पर, कोई कुरान के मार्ग पर, कोई बाइबल के मार्ग

घर—पंडित अनन्त हैं, और वे दूसरे लोगो को भी चला रहे हैं ।

जीसस ने कहा है, 'अगर अंधे अंधे को चलाये तो क्या होगा ?' कबीर ने जवाब दिया है, 'अंधा अंधा ठेलिया, दोनहि कूप पडत ।'—अंधे ने अन्धे को चलाया, दोनो ही कुए मे गिरे—गुरु और शिष्य दोनो, उस्ताद शागिर्द दोनों ।

'बाह्मन दिच्छा देत सो घर घर घालिहै ।'—और जिन्होने पंडितो से दीक्षा ली, वे विनष्ट हो गये ।

काशी के पंडित अगर कबीर से नाराज थे तो अकारण नही । और काशी मे ही—पंडितो के घर मे—कबीर बैठे थे ।

'घर घर घालिहै'—उससे घर-घर का नाश हो गया है । जिन्होने पंडितो से दीक्षा ले ली है, उनका विनाश हो गया है । विनाश का इतना ही अर्थ है कि जो जानते नही थे, उनके मार्ग पर तुम चलने लगे ।

ज्ञानी को खोजना । लेकिन उसमे कठिनाई है । पंडित को पाना सदा आसान है । वह जन्म के साथ ही तुम्हे उपलब्ध रहता है । अगर तुम जैन घर मे पैदा हुए, तो जैन पंडित तुम्हे शिक्षा दे रहा है, जन्म के साथ ही । अगर तुम मुसलमान घर मे पैदा हुए, मुसलमान मौलवी तुम्हे शिक्षा दे रहा है, जन्म के साथ ही । उसे तुम्हे खोजने के लिए नही जाना पडता, वह तुम्हारी गर्दन को खुद ही पकड लेता है, इसके पहले कि तुम्हे होश आये ।

लेकिन ज्ञानी को तुम्हे खोजने जाना पडेगा । ज्ञानी को तो तुम्हे सजग-सचेत होकर पाने के लिए यात्रा करनी पडेगी । और जरूरी नही है कि ज्ञानी तुम जिस सम्प्रदाय मे पैदा हुए हो, वहा मौजूद हो, अक्सर तो सम्प्रदाय मे ज्ञानी नहीं होता । क्योकि जैसे ही कोई ज्ञानी होता है, सम्प्रदाय उसे निकाल बाहर कर देता है । क्योकि ज्ञानी खतरनाक है ।

जीसस यहूदी घर मे हुए, लेकिन यहूदियो ने निकाल बाहर कर दिया । बुद्ध हिन्दू घर मे पैदा हुए, लेकिन हिन्दुओ ने निकाल बाहर कर दिया ।

ज्ञानी तो हमेशा सम्प्रदाय के बाहर निकाल दिया जायेगा । क्योकि अगर ज्ञानी बचे, तो पंडितो का क्या होगा ? और जहा सूरज जल रहा हो, वहा बुझे दीयो के पास कौन आयेगा ? तो पंडित कभी ज्ञानी को बरदाश्त नहीं कर सकता । ज्ञानी की मौजूदगी पंडित के पूरे व्यवसाय को जड से काट देती है । इसलिए पंडित तो सदा सम्प्रदाय मे मिलेगा, ज्ञानी सदा सम्प्रदाय के बाहर मिलेगा । और वही अडचन है । तुम अपने सम्प्रदाय मे खोजो कि कोई हिन्दू ज्ञानी मिल जाये—हिन्दू ज्ञानी कभी हुआ ही नही, कोई मुसलमान ज्ञानी मिल जाये—मुसलमान ज्ञानी कभी हुआ

हो नही । ज्ञानी कही मुसलमान और हिन्दू होता है ? ज्ञानी सिर्फ होता है, उसका कोई विशेषण नही है ।

तब तुम्हे अडचन होगी । उसके लिए तो तुम्हे सम्प्रदाय की दृष्टि छोडनी पडेगी । तुम्हे अपनी बधी धारणाये हटानी पडेंगी । अगर तुम्हे आखवाला गुरु चाहिए तो तुम्हे अपने सम्प्रदाय के सारे वस्त्र छोडने पडेगे, तभी तुम उसे पा सकोगे । नही तो तुम्हे कोई अन्धा गुरु मिल जाएगा ।

'बाह्मन दिच्छा देत सो, घर घर घालिहै । मूर सजीवन पास तू पाहन पालिहै ।' और जो परमात्मा पास था, पडित ने तुझे उसकी जगह पत्थर पकडा दिये । तू पत्थर पूज रहा है । परमात्मा पास था । पडित की दीक्षा ने तुझे पत्थर पकडा दिये । और पत्थरो की पूजा चल रही है । कुछ हर्जा नही है पत्थर की पूजा मे, अगर पत्थर मे परमात्मा दिखाई पड रहा हो । लेकिन जिसको पत्थर मे परमात्मा दिखायी पड जायेगा, वह पत्थर मे पूजने जायेगा ? फिर तो सब जगह उसी की पूजा है, उसका तो सारा जीवन उसी की अर्चना हो जायेगा । फिर तो मदिर विराट है । फिर तो पौधे मे भी वही है । फिर तो मस्जिद मे भी वही है और मदिर मे भी वही है । तो अगर मस्जिद पास हो, तो तुम मदिर काहे के लिए जाओगे ? मस्जिद मे ही चले जाओगे । मस्जिद भी जाने की क्या जरूरत ?

सुना है मैंने कि बायजीद जब बूढा हो गया—एक मुसलमान फकीर । सत्तर साल लोगो ने उसे सदा मस्जिद मे जाते देखा । एक दिन अचानक वह मस्जिद नही आया । वह बीमार हो तो जाता, कोई भी स्थिति मे कभी वह मस्जिद मे आने से नही चूका था । एक दिन नही आया तो मस्जिद के लोगो ने समझा कि मर गया होगा, और कोई कारण नही हो सकता, क्योकि बीमार कितना ही वह हो, वह आता ही है । वे पहुचे उसके घर, वह अपने झोपडे के सामने खजडी बजाकर गीत गा रहा था । वे बडे नाराज हो गये । उन्होने कहा, "बुढापे मे क्या नास्तिक हो गये या सठिया गये ?" बायजीद ने कहा कि जब तक मिला नही था, तब तक आते थे, अब जब मिल गया तो सभी तरफ वही है । अब मस्जिद के सिवाय और काई जगह ही नही है । वही सब जगह मस्जिद है । अब किसके लिए आना ? अब तक खोजते थे, अब खोजना न रहा, अब उत्सव शुरू हुआ । अब तो नाचेंगे, गायेगे । अब काई माग न रही । अब वह सब तरफ मौजूद है ।

'मूर सजीवन पास, तू पाहन पालिहै ।'—वह पास बैठा है और तू मदिरो मे पूजा करने जा रहा है ?

'ऐसन साहब कबीर, सलोना आप है । नही जोग नहिं जाप, पुन्न नहिं पाप है ।।'

कबीर कहते हैं, ऐसा है वह साहब कबीर का! 'ऐसन साहब कबीर, सलोना आप है।'—खुद तो बहुत सुदर-सलोना है ही, उसके सलोनेपन की क्या बात! उसके सौन्दर्य की क्या चर्चा करे! उसके रूप का क्या वर्णन! खुद तो बहुत रूपवान, बहुत सुदर है ही, उसने तुम्हे भी सुदर बनाया है। तुम्हे उसने अपने से कम सुदर नही बनाया।

'ऐसन साहब कबीर, सलोना आप है। नही जोग नहिं जाप, पुन्न नहिं पाप है॥' तुम्हारे लिए न तो जोग की जरूरत है, न जाप की जरूरत है, और न कही पुण्य की कोई जरूरत है, न पाप की कोई जरूरत है। जिसने तुम्हे बनाया, वह पुण्य और पाप के बाहर है, तुम भी बाहर हो। और जिसने तुम्हे बनाया, तुम जिसकी कृति हो, उसके हस्ताक्षर तुम पर हैं—तुम कैसे पापी हो सकते हो? तुम कैसे बुरे हो सकते हो?

कहावत है, फल से वृक्ष जाना जाता है। तो तुमसे परमात्मा जाना जायेगा, क्योकि तुम उसके श्रेष्ठतम फल हो इस पृथ्वी पर। इस सृष्टि मे मनुष्य उसका श्रेष्ठतम फल है। तो तुम कैसे पापी हो सकते हो? जिन्होने तुम्हे कहा, तुम पापी हो, उन्होने तुम्हारे जीवन से परमात्मा का सबध बिलकुल तुडवा दिया। तो कबीर कहते हैं, 'ऐसन साहब कबीर'—कबीर के साहब ऐसे हैं, खुद तो प्यारे, सुदर, अनूठे, अद्वितीय हैं—उनसे तुम भी पैदा हुए हो।

बाइबिल मे कहा है कि परमात्मा ने अपनी ही शकल मे आदमी को बनाया, बनाया है, लेकिन तुम्हे अपनी शकल का पता ही नही।

'नही जोग नहिं जाप'—न तो कोई जप करने की जरूरत है, न कोई जोग करने की जरूरत है, न तो पुण्य करने की जरूरत है, न पाप से भयभीत होने की जरूरत है। क्योकि उस परम की निकटता मे न तो पाप बचता है, न पुण्य बचता है।

यह आखिरी बात थोडी समझ लेने जैसी है।

पापी और पुण्यात्मा मे बहुत फर्क नही है। इतना ही फर्क है, जैसे एक आदमी पैर पर खडा है और एक आदमी सिर पर खडा है। तुम अगर शीर्षासन कर लो तो कुछ फर्क हो जाएगा?—तुम ही रहोगे सिर के बल खडे रहोगे। अभी पैर के बल खडे थे। क्या फर्क होगा तुममे?—उलटे हो जाओगे। पुण्यात्मा सीधा खडा है, पापी सिर के बल खडा है—वह शीर्षासन कर रहा है। और शीर्षासन करने मे कष्ट मिलता है, तो पा रहा है। पुण्यात्मा कुछ विशेष नही कर रहा है। और पापी कुछ पाप का फल आगे पायेगा, ऐसा नही है, पाप करने मे ही पा रहा है। सिर के बल खड़े होओगे, कष्ट मिलेगा। और पुण्यात्मा पैर के बल खडा है, इसलिए सुख पा रहा है। इसमें कोई भविष्य में कोई सुख मिलेगा, स्वर्ग मिलेगा—ऐसा कोई

सवाल नहीं है। तुम अगर ठीक-ठीक चलते हो रास्ते पर, तो सकुशल घर आ जाते हो, बस। अगर तुम उलटे-सीधे चलते हो, शराब पीकर चलते हो—गिर पड़ते हो, पैर मे चोट लग जाती है, फ्रैक्चर हो जाता है। कोई जमीन तुम्हारे पैर मे फ्रैक्चर नहीं करना चाहती थी, तुम्ही उलटे-सीधे चले।

पापी उलटा-सीधा चल रहा है, थोड़ा डावाडोल चल रहा है, पुण्यात्मा थोड़ा सम्हलकर चल रहा है। लेकिन कबीर कहते हैं कि जो अपने भीतर चला गया, वह तो स्वय परमात्मा हो गया—वहा न कोई पाप है, न कोई पुण्य है। उसकी चाल का क्या कहना!

ध्यान रखो, पाप से दुख मिलता है, पुण्य से सुख मिलता है। पाप रोग की तरह है, पुण्य स्वस्थ होने की तरह है। लेकिन भीतर जो चला गया, वह न तो दुख मे होता है, न सुख मे, वह आनन्द मे जीता है। आनन्द बड़ी और बात है। आनन्द का मतलब है सुख भी गये, दुख भी गये। क्योकि जब तक दुख रहते हैं, तभी तक सुख रहते है। और जब तक सुख रहते हैं, तब तक दुख भी छिपे रहते है, वे जाते नहीं। पापी के लिए नरक, पुण्यात्मा के लिए स्वर्ग, और जो भीतर पहुच गया, उसके लिए मोक्ष। वह स्वर्ग और नर्क दोनो के पार है।

पुण्य और पाप, दोनो ही बन्धन है। पाप होगा लोहे की जजीर, पुण्य होगा सोने की जजीर—हीरे-जवाहरातो से जड़ी। पर क्या फर्क पड़ता है? पापी भी बधा है, पुण्यात्मा भी बधा है। पापी दुख पा रहा है, पुण्यात्मा सुख पा रहा है, लेकिन दोनो को अभी उसकी खबर नहीं मिली जो दोनो के पार है। दोनो द्वैत मे जी रहे हैं। भीतर जिसने स्वय को जाना, जिसने साहब को जाना, जिसने अपने सलोने रूप को पहचाना, जिसने अपने निराकार, निर्गुण को देखा, जिसने अपनी अद्वैत प्रतिष्ठा पायी—उसके लिए न तो कोई पुण्य है, न कोई पाप है। वह द्वन्द्व के बाहर हो गया—वह निर्द्वन्द्व है। वह द्वैत के पार उठ गया—वह अद्वैत है।

और यह साहब बहुत दूर नहीं है। पास भी कहना उचित नहीं है। साहब तुम्हारे भीतर है। भीतर कहना भी उचित नहीं है। साहब तुम्ही हो। 'ऐसन साहब कबीर!'

'कस्तूरी कुडल बसै!'

★ ★ ★

धर्म और सम्प्रदाय में भेद

पांचवां प्रवचन

दिनांक १५ मार्च, १९७५, प्रातःकाल, श्री रजनीश आश्रम, पूना

साधो देखो जग बौराना।
साँची कहौं तो मारन धावै, झूठे जग पतियाना॥

हिन्दू कहत है राम हमारा, मुसलमान रहमाना।
आपस में दोउ लड़े मरतु हैं, मरम कोई नहिं जाना॥

बहुत मिले मोहि नेमी धरमी, प्रात करै असनाना।
आतम छोड़ि पखाने पूजें, तिनका थोथा ग्याना॥

आसन मारि डिम्भ धरि बैठें, मन में बहुत गुमाना।
पीपर पाथर पूजन लागे, तीरथ बर्त भुलाना॥

माला पहिरे टोपी पहिरे, छाप तिलक अनुमाना।
साखी सबदै गावत भूलै, आतम खबर न जाना॥

घर घर मंत्र जो देत फिरत है माया के अभिमाना।
गुरुवा सहित सिष्य सब बूड़े, अंतकाल पछिताना॥

बहुतक देखे पीर औलिया, पढ़ें किताब कुराना।
करैं मुरीद कबर बतलावैं, उनहू खुदा न जाना॥

हिन्दू की दया मेहर तुरकन की, दोनों घर से भागी।
वह करैं जिबह वाँ झटका मारैं, आग दोउ घर लागी॥

या विधि हँसी चलत है हमको, आप कहावैं स्याना।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, इनमें कौन दिवाना॥

धर्म क्या है ?

शब्दो मे, शास्त्रो मे, क्रियाकाण्डो में, या तुम्हारी अन्तरात्मा मे, तुममे, तुम्हारी चेतना की प्रज्वलित अग्नि मे ?

धर्म कहा है ?

मदिरो मे, मस्जिदो में, गुरुद्वारो मे ?

आदमी के बनाये हुए मदिर-मस्जिदो मे धर्म हो कैसे सकता है ? धर्म तो वहां है जहा परमात्मा के हाथ की छाप है। और तुमसे ज्यादा उसके हाथ की छाप और कहा है ? मनुष्य की चेतना इस जगत मे सर्वाधिक महिमापूर्ण है। वही उसका मंदिर है, वही धर्म है।

धर्म है व्यक्ति और समष्टि के बीच प्रेम की एक प्रतीति--ऐसे प्रेम की जहा बूद खो देती है अपने को सागर मे और सागर हो जाती है, जहा सागर खो देता है अपने को बूद मे और बूद हो जाता है, व्यक्ति और समष्टि के बीच ध्यान का ऐसा क्षण जब दो नही बचते, एक ही शेष रह जाता है, प्रार्थना का एक ऐसा पल, जहां व्यक्ति तो शून्य हो जाता है, और समष्टि महा व्यक्तित्व की गरिमा से भर जाती है। इसलिए तो हम उस क्षण को ईश्वर का साक्षात्कार कहते हैं। व्यक्ति तो मिट जाता है, समष्टि मे व्यक्तित्व छा जाता है, सारी समष्टि एक महा व्यक्तित्व का रूप ले लेती है।

धर्म व्यक्ति और समष्टि के बीच घटी एक अनूठी घटना है, लेकिन ध्यान रहे--सदा व्यक्ति और समष्टि के बीच, व्यक्ति और समाज के बीच नही। और जिनको तुम धर्म कहते हो, वे सभी व्यक्ति और समाज के संबध हैं। अच्छा हो, तुम उन्हे सम्प्रदाय कहो, धर्म नही। और सम्प्रदाय से धर्म का उतना ही सबध है जितना जीवन का मुर्दा लाश से। कल तक कोई मित्र जीवित था, चलता था, उठता था, हसता था, प्रफुल्लित होता था, आज प्राण-पखेरू उड गये, लाश पडी रह गयी--उस व्यक्ति की हसी से, मुस्कराहट से, गीत से, उस व्यक्ति के मनोभाव से, उस व्यक्ति

के उठने, बैठने, चलने से, उस व्यक्ति के चैतन्य से, इस लाश का क्या संबंध है? पक्षी उड़ गया, पिंजरा पड़ा रह गया--वह जो आज आकाश में उड़ रहा है पक्षी, उससे इस लोहे के पिंजरे का क्या संबंध है? उतना ही संबंध है धर्म और सम्प्रदाय का।

धर्म जब मर जाता है, तब सम्प्रदाय पैदा होता है। और जो सम्प्रदाय में बंधे रह जाते हैं, वे कभी धर्म को उपलब्ध नहीं हो पाते। धर्म को उपलब्ध होना हो तो सम्प्रदाय की लाश से मुक्त होना अत्यन्त अनिवार्य है। अगर तुम समझदार होते तो तुम सम्प्रदाय के साथ भी वही करते, जो घर में कोई मर जाता है तो उसकी लाश के साथ करते हो। तुम मरघट ले जाते, दफना आते, आग लगा देते। लाश को कोई सम्हालकर रखता है? लेकिन तुम समझदार नहीं हो और लाश को सदियों से सम्हालकर रखे हो--लाश सड़ती जाती है, उससे सिर्फ दुर्गंध आती है। उससे पृथ्वी पर कोई प्रेम का राज्य निर्मित नहीं होता, सिर्फ घृणा फैलती है, जहर फैलता है।

धर्म तो एक है, लाशें अनेक हैं, क्योंकि धर्म बहुत बार अवतरित होता है और बहुत बार तिरोहित होता है--हर बार लाश छूट जाती है। तीन सौ सम्प्रदाय हैं पृथ्वी पर, और सब आपस में कलह से भरे हुए हैं। सब एक-दूसरे की निन्दा और एक-दूसरे को गलत सिद्ध करने की चेष्टा में संलग्न हैं, जैसे घृणा ही उनका धंधा है।

तुम्हारे मंदिरों, मस्जिदों, गुरुद्वारों से अब प्रेम के स्वर नहीं उठते, प्रार्थना की बांसुरी नहीं बजती, सिर्फ घृणा का धुआं उठता है। यह हो सकता है कि तुम घृणा के धुएं के इतने आदी हो गये हो कि तुम्हें पता ही नहीं चलता, या तुम्हारी आंखें उस धुएं से इतनी भर गई हैं कि अब आंखों से आंसू नहीं गिरते, या तुम इतने अंधे हो गये हो कि आंख ही तुम्हारे पास नहीं कि जिससे आंसू गिर सकें।

लेकिन धर्म मरता है। थोड़ी हैरानी होगी, क्योंकि धर्म तो शाश्वत है--धर्म कैसे मर सकता है? निश्चित ही धर्म शाश्वत है, लेकिन इस पृथ्वी पर उसका कोई भी रूप शाश्वत नहीं है। जैसे तुम तो बहुत बार पैदा हुए, मरोगे, तुम्हारे भीतर जो छिपा शाश्वत है, वह कभी पैदा नहीं होता, कभी नहीं मरता। लेकिन तुम? तुम तो आओगे, देह धरोगे, यह देह मरेगी, फिर और देह धरोगे, वह भी मरेगी। थोड़ी देर सोचो, अगर आदमियों ने यह किया होता कि जितने लोगों ने अब तक देह धरी हैं, सबकी लाशें बचा ली होतीं, अगर तुम्हारी अकेले एक व्यक्ति की सब लाशें बचा ली होतीं, तो पृथ्वी पूरी तुम्हारी ही लाशों से भर जाती। क्योंकि तुम कभी पक्षी थे, कभी पशु थे, कभी पौधे थे। हिन्दू कहते हैं, चौरासी करोड़ योनियों से तुम गुजरे हो। अगर एक योनि से एक बार गुजरे हो--जो कि कम-से-कम है,

जिसके लिए बहुत ज्ञानवान होना जरूरी है कि एक बार मे ही छुटकारा हो जाये, एक ही योनि से—अगर हम न्यूनतम मान ले कि तुम एक योनि से एक बार गुजरे हो तो तुम्हारी चौरासी करोड लाशे अगर सम्हालकर रखी जाती होती, ता जमीन भर जाती, पट जाती उनसे।

तुम्हारी ज्योति बहुत दीयो मे जली है। ज्योति उड जाती है, दीये को सम्हाल कर रखते जाओ, मुश्किल मे पड जाओगे। जिस जगह पर तुम बैठे हो, एक-एक इच जगह पर करोडो लाशे गडी है। क्योकि कितने लोग हैं! कितनी आत्माये है! और कितने वर्तुल सबने लिये हैं!

ज्योति चली जाती है, लाश को हम दफना आते हैं। धर्म के साथ ऐसा नही हो पाया—ज्योति तो चली जाती है, लाश रह जाती है। लाश को हम सम्हाल लेते हैं। लाश सूक्ष्म है, इसलिए दुर्गंध का भी पता उन्ही को चलता है जिनके पास बडे तीव्र नासापुट है। लाश इतनी सूक्ष्म है कि कबीर जैसी आखे हो, तो ही दिखाई पडती है।

इसीलिए धर्म पर सम्प्रदाय इकट्ठे हो जाते हैं और जब भी कोई नया दीया आविर्भूत होता है—सनातन की ज्योति को लेकर, तब मरे हुए सारे सम्प्रदाय उसके विरोध मे खडे हो जाते हैं। क्योकि वह एक नया प्रतियोगी है, और प्रतियोगी असाधारण है। उसके साथ जाता भी नही जा सकता, क्योकि वह जीवित है, तुम मुर्दा हो। इसलिए सारे सम्प्रदाय धर्म के दीये को बुझाने मे सलग्न रहते हैं। इस-लिए तो महावीर पर पत्थर फेके जाते है, बुद्ध का अपमान किया जाता है, जीसस को सूली दी जाती है, मन्सूर की गर्दन काटी जाती है। वे जा प्रतिष्ठित सम्प्रदाय है, वे जब भी धर्म की ज्योति जगेगी, तभी भयभीत हो जाते है—खतरा पैदा हुआ। क्योकि यह एक ज्योति उन सबका मिटा देने के लिए काफी है।

इस सबध मे कुछ बाते समझ ले तो कबीर के सीधे-सादे पद बडी गहन गरिमा से भर जाएगे, उनमें से बडा सुवास उठेगी।

पहली बात—

धर्म भी वैसे ही पृथ्वी पर आता है, जैसे आत्मा आती है। जब भी कोई व्यक्ति तैयार हो जाता है, और दीया पूरा निर्मित हो जाता है, तत्क्षण ज्योति उतर आती है। इसलिए हिन्दू अपने धर्मपुरुषो को अवतार कहते है। अवतार का मतलब है अवतरित होना, ऊपर से नीचे आना। यह अवतार शब्द बडा महत्वपूर्ण है!

बुद्ध चालीस वर्ष तक अवतार नही थे। एक रात अचानक सब घट गया, दूसरे दिन सुबह वे अवतार हो गये। क्या हुआ उस रात?—दीया चालीस वष से तैयार

हो रहा था, जब दीया परिपूर्ण तैयार हो गया, ज्योति उतर आई।

हम इतना ही कर सकते हैं, पृथ्वी पर, दीया तैयार कर सकते हैं, ज्योति तो इस पृथ्वी पर है ही नही। ज्योति तो आती है अज्ञात से। ज्योति तो आती है अनन्त से। ज्योति तो आती है सनातन, शाश्वत से। जब भी कोई दीया पूरी तरह तैयार हो जाता है, तब ज्योति उतर आती है। तुम केवल स्थिति पैदा कर दो परमात्मा के उतरने की, और तुम्हारे भीतर परमात्मा उतर आयेगा।

अवतरण का अर्थ है ऊपर से उतरता है धर्म। पृथ्वी पर हम दीये बनाते है, ज्योति ऊपर से आती है। फिर जब दीया टूट जाता है तो टूटे खण्डहर को तुम बचा लेते हो, ज्योति तो फिर ऊपर चली जाती है। जो ऊपर से आयी थी, वह तुम्हारे कारण रह भी नही सकती, वह जिसके कारण आई थी, वह दीया टूट गया—वह बुद्ध के साथ ही विलीन हो जाती है। लेकिन बुद्ध के पदचिह्न छूट जाते हैं रेत पर। उन्ही पदचिह्नो की पूजा चलती है। कहा तो बुद्ध के चरण, कहा तो उन चरणो से बहती हुई अनन्त धारा ऊर्जा की—कि जिनमे भी साहस था झुकने का, वे झुके और सदा के लिए तृप्त हो गये, कि जिनमे भी हिम्मत थी बुद्ध के चरणो को छू लेने की, उन्होने छुआ, और जैसे पारस छू गया और लोहा सोना हो गया—कहा तो वे चरण, और कहा फिर रेत पर छोडे हुए सूखे चिह्न! फिर उन चिह्नो की पूजा चलती है और उन चिह्नो की पूजा मे भी अर्थ हो सकता है, लेकिन केवल उन्ही के लिए जिन्होने बुद्ध के चरण देखे थे। इसलिए पहली पीढी उन चरणो मे भी बुद्ध के वास्तविक चरणो की झलक पाती है। स्वाभाविक है। जिन्होने असली चरण देखे थे, चरण-चिह्नो को देखकर भी याद जगती है, याद का दीया जलता है। चरण-चिह्नो को देखकर भी भीतर वे सब यादे हरी हो जाती हैं जो बुद्ध के चरणो के पास घटी थी।

लेकिन दूसरी पीढी, जो सिर्फ कहानिया सुनेगी उसके लिए चरण-चिह्न तो सिर्फ रेत पर बने चरण-चिह्न होगे। इसलिए बुद्ध के चरण चिह्नो मे और बुद्धुओ के चरण-चिह्नो मे क्या फर्क होगा? कोई फर्क न होगा।

पहली पीढी ने तो जीवन्त घटना देखी थी। पहली पीढी का तो अन्तस्तल डोला था। पहली पीढी ने तो नृत्य किया था अवतरित ऊर्जा के साथ, थोडी देर साथ चली थी, थोडी देर का संग-साथ हो गया था! और जैसे कोई फूलो की बगिया मे गुजर जाये, तो भी वस्त्र वास पकड लेते हैं फूलो की—ऐसे ही बुद्ध के पास रहकर पहली पीढी ने तो थोडी-सी वास पकड ली थी। लेकिन दूसरी पीढी आयेगी, दूसरी पीढी के लिए तो बुद्ध के चरण-चिह्न कुछ भी अर्थ न रखेंगे। अर्थ औपचारिक होगा।

सम्प्रदाय औपचारिक है। पिता पूजते है, बेटा भी पूजेगा। पिता पूजते हैं तो

बेटे को भी पुजवायेंगे। पिता जो करते हैं, वह बेटे को भी करने के लिए बाध्य करेंगे। जो पिता ने अपने निर्णय से किया था, वह बेटा पिता के निर्णय से करेगा। इस प्रकार सब मर गया।

पिता तो बुद्ध के पास गए थे अपने बोध से, खींचा था बुद्ध ने, इसलिए गये थे, भीतर कोई पुकार उठी थी, भीतर कोई आमन्त्रण मिला था, तो गए थे। बेटे पर आरोपण होगा, आमन्त्रण नहीं। न तो बुद्ध हैं पुकारने को, न बेटे को बुद्ध का कोई पता है। कथाए है, कहानिया है, जिन पर बेटा भरोसा भी नहीं कर सकता, क्योंकि बाते ही कुछ ऐसी हैं कि जब तक जानो न, भरोसा नहीं होता। बेटे की यह मजबूरी है। जिसने जाना नहीं अवतरण को, जिसने देखी नहीं वह ज्योति जो आकाश से आती है, जिसने केवल पृथ्वी की ज्योतिया ही देखी है—उसके पास कोई उपाय भी तो नहीं है कि भरोसा करे। सदेह स्वाभाविक है। उसके सदेह को पुरानी पीढी दबाएगी। पुरानी पीढी भी एक मुसीबत मे है—उसने देखा है। और कौन बाप न चाहेगा कि उसका बेटा भी भागीदार हो जाये उस परम अनुभव मे! कौन मा न चाहेगी कि उसका बेटा भी उस परम की दिशा मे यात्रा पर निकल आए! क्योंकि, जो भी हमने जाना है, हम चाहते है, हमारे प्रियजन भी जान ले। जो हमने पीया और तृप्त हुए, हम चाहते हैं, हमारे प्रियजन क्यो प्यासे क्षुधातुर मरे!

तो बाप की भी मजबूरी है कि वह चाहता है कि बेटे को दिखला दे। बेटे की मजबूरी है कि जो उसने देखा नहीं, जो निमन्त्रण उसे नहीं मिला, वह उसे कैसे देख ले? इन दोनो के बीच सम्प्रदाय पैदा होता है। बाप थोपता है करुणा से, बेटा स्वीकार करता है भय से। बाप ताकतवर है, जो कहता है मानना पडेगा, न मानो तो मुसीबत मे डाल सकता है। बाप कहता है अपने प्रेम से, बेटा स्वीकार करता है अपनी निर्बलता से। इन दोनो के बीच मे सम्प्रदाय पैदा होता है।

पहली पीढी के पास तो थोडी-सी धुन होती है। गीत तो बद हो गया, प्रतिध्वनि गूजती रहती है। दूसरी पीढी को न गीत का पता है, न प्रतिध्वनि का। जिसने गीत ही न सुना हो, उसे प्रतिध्वनि का कैसे पता चलेगा? जो मूल से ही चूक गया हो, उसके लिए प्रतिलिपिया काम न आएगी। और कितना ही समझाओ बात समझाने की नहीं है। कबीर कहते हैं, 'लिखालिखी की है नहीं, देखादेखी बात।' देखी तो हो सही है, नहीं देखी तो परमात्मा से बडा झूठ इस ससार मे दूसरा नहीं है। देखा तो उससे बडा कोई सत्य नहीं है। देखा तो वही एकमात्र सत्य है, सभी सत्य उसमे लीन हो जाते हैं। नहीं देखा तो परमात्मा सरासर झूठ है। सब चीजें सत्य हैं। रास्ते के किनारे पर पडा पत्थर भी सत्य है, परमात्मा झूठ है।

'लिखालिखी की है नहीं, देखादेखी बात ।'

लेकिन दूसरी पीढ़ी कैसे देखे ? बाप ने देखी होगी, लेकिन जिसने देखी है सिर्फ, जिसने बुद्ध को देखा है, लेकिन जो बुद्ध नहीं हो गया, वह केवल कहानियां कह सकता है, वह दिखा नहीं सकता। वह स्मरण कर सकता है। स्मरण मधुर है, बड़े रससिक्त है, लेकिन उसके स्मरण बेटे के लिए क्या करेंगे ? इसलिए तो हिन्दुओं के पास किताबें है जिनका नाम है 'स्मृति', जिनका नाम है 'श्रुति'। श्रुति का मतलब है सुना, किसी ने कहा, वह सुना। स्मृति का अर्थ है किसी की याददाश्त है, उसने बताया। इसलिए हिन्दुओं के पास इतिहास नहीं है, पुराण है। पुराण का मतलब है कि हमने एक ऐसी महिमा की घटना देखी है कि हम उसे सिद्ध भी करना चाहें दूसरी पीढ़ी को, तो हम इतिहास की तरह सिद्ध भी न कर सकेंगे।

क्या सिद्ध करोगे ? बुद्ध का जन्म सिद्ध हो सकता है, उसके गवाह मिल सकते है। बुद्ध राजा के बेटे थे, यह सिद्ध हो सकता है, उसके प्रमाण मिल सकते हैं। चालीस वर्ष तक के प्रमाण मिल जाएंगे बुद्ध के। लेकिन चालीसवें वर्ष में जो घटना घटी, उसका क्या प्रमाण है ? उसका कौन गवाह है ? किस क्षण में गौतम सिद्धार्थ, गौतम सिद्धार्थ न रहा, 'गौतम बुद्ध' हो गया ? उस क्षण का कोई भी तो गवाह नहीं है। उसको इतिहास कैसे बनाओगे जिसका कोई गवाह नहीं है ? इसलिए हम इतिहास कहते ही नहीं उसको, हम कहते है, पुराण, हम कहते है, कहानी है।

कहानी हाथ में रह जाती है। पीढ़ी दर-पीढ़ी हम उस कहानी को दोहराते है। जैसे-जैसे बुद्ध से दूरी बढ़ती जाती है वैसे-वैसे ही हम कहानी को सही बताने के लिए अतिशयोक्तियों से भरने लगते हैं। सिद्ध करने के लिए नयी पीढ़ियों के सामने कि एक महिमावान पुरुष हुआ था, धर्म उतरा था पृथ्वी पर हम कपोलकल्पित बाते जोड़ने लगते है। कारण है कपोलकल्पित बातों को जोड़ने का, क्योंकि मूल घटना का कोई भी प्रमाण नहीं है। इसलिए हम उस मूल घटना को बड़ी कपोल-कल्पनाओं के घेरे में खड़ा कर देते है, ताकि तुम मूल की बात ही न पूछ सको। हम बड़ा जाल खड़ा कर देते है। वह जाल ही सम्प्रदाय है। और दूसरी पीढ़ियां मानती है, क्योंकि और पीढ़ियां मानती थी, क्योंकि पिता मानते थे, इसलिए बेटा मानता है।

यह लाश है। इसमें सब मर जाता है। इस मरी हुई लाश को जो ढो रहा है, वह कबीर को न समझ पाएगा। और मजा तो यह है कि यह कोई बुद्ध के साथ हो, राम के साथ हो, कृष्ण के साथ हो, तो ठीक है, कबीर के साथ भी वही हो

गया। कबीर-पंथी लाश ढो रहे हैं।

आज मैं तुमसे जो कह रहा हू, कल मेरे साथ भी यही हो जाएगा। तुम अपने बच्चो को जरूर कहना चाहोगे जो मैंने तुमसे कहा है। तुम बाटना चाहोगे।

अभी दो दिन पहले ही एक मित्र आये। पति-पत्नी दोनो सन्यासी हैं। पत्नी को गर्भ है। तो वे चाहते थे कि उनके गर्भ के बच्चे को अभी सन्यास दे दू। बडा प्रेम है! बडा भाव है! लेकिन ऐसे ही तो सम्प्रदाय निर्मित होता है। वह गर्भ के बच्चे को तो कोई पता ही नही। उसकी तो स्वीकृति भी नही। वह तो अभी बेहोश है। उनके प्रेम को कोई दोष नही दे सकता। यह प्रीतिकर है कि पिता और मा सोचे कि उनका बच्चा भी सन्यस्थ हो। लेकिन इस बच्चे को तो कुछ भी पता नही है। और अगर यह बच्चा सन्यासी बना दिया जाये तो आरोपण होगा, कल यह ढोयेगा सन्यास को। तुमने तो अपनी प्रफुल्लता से लिया था, तुमने तो अपने आनन्द से लिया था, तुमने तो किसी स्वाद से लिया था, तुमने तो निर्णय किया था, तुम्हारा तो यह सकल्प और समर्पण था, लेकिन इस बेटे पर तो आरोपण होगा। अगर यह छोडेगा तो अपराध अनुभव करेगा कि माता-पिता ने सन्यास दिलवाया और मैं छोडता हू, तो गिल्ट, अपराध पैदा होगा, अगर पालन करेगा तो झूठ होगा, क्योकि मन मे तो कोई भाव नही है। साम्प्रदायिक व्यक्ति ऐसी ही दुविधा मे फसा होता है। अगर न माने, न करे तो अपराध पकडता है--क्योकि मैं धोखा दे रहा हू पिता को, मा को, लम्बी परम्परा को, न मालूम कितने लोगो ने आशाये बाधी हैं, उन सबको मैं तोड रहा हू, धोखा दे रहा हू। तो अगर कोई अपने सम्प्रदाय को छोड दे तो ग्लानि होती है, मन अपराध से भरता है, अगर पकडे रखे तो कोई आनन्द नही आता, कोई नृत्य पैदा नही होता--बोझ की तरह ढोता है।

साम्प्रदायिक व्यक्ति बडी दुविधा मे जीता है।

मगर यह स्वाभाविक है। जिस दिन यह समझ लिया जायेगा पृथ्वी पर कि यह स्वाभाविक है, उस दिन यह बद हो जाएगा। और जो व्यवहार हम लाश के साथ करते है, वही व्यवहार हमे सम्प्रदाय के साथ करना चाहिए। बहुत प्रेम है, माना, बचाने का मन होता है, लेकिन पिता मर जाते है तो क्या करोगे? पति मर जाता है तो क्या करोगे? बेटा मर जाता है तो क्या करोगे? मन होता है कि छाती से लाश चिपका लें, मगर कितनी देर चिपकाये रखोगे? अगर लाश को ज्यादा देर चिपकाया तो तुम भी लाश हो जाओगे। उसकी दुर्गंध तुम्हे भी दुर्गंध से भर देगी। आज नही कल, अपने को समझाकर लाश से छुटकारा लेना पडता है। पीडा होती

है। इतना रस था, इतना प्रेम था, इतना लगाव था, आज उसी को जलाने जाते हैं। लेकिन जाना ही पडता है। कष्ट से, दुख से, रोते हुए, जार-जार सताप से, लेकिन जलाने जाना ही पडता है।

जो लाश के साथ होता है, वही धर्म के साथ होना चाहिए—जब धर्म मर जाये। रोते हुए जाओ, दुखी जाओ, लेकिन उसे विदा दे दो। और जब तक पृथ्वी पर लोग सम्प्रदायो को विदा देने की हिम्मत नही जुटाते, तब तक लाशे बढती जाएगी, दुर्गंध फैलती जायेगी।

मदिर, मस्जिद, चर्च मरघट हो गए हैं। वहा बडे महिमावान पुरुषो की लाशें पडी हैं, यह बात सच है, लेकिन लाश लाश है।

दूसरी बात, जब भी धर्म का अवतरण होता है किसी व्यक्ति मे, जब कोई व्यक्ति आधार बनता है धर्म की ज्योति को उतार लेने का, जब कोई व्यक्ति इतना सबल हो जाता है अपनी शान्ति मे कि परमात्मा को उतरना पडता है उसमे, जब कोई इतना गहन हो जाता है अपने समर्पण मे कि अनन्त को आ करके छूना पडता है उसे, जब किसी की प्यास परम हो जाती है और जब किसी का रोआ-रोआ उसकी व्याकुलता से भर जाता है—तो उस पर वर्षा होती है परमात्मा की। जब यह घटना घटती है तब यह घटना इतने गहन निबिड अन्तस्तल मे घटती है कि वहा शब्दो की कोई पहुच नही, वहा भाषा का कोई स्थान नही, वहा कोई तरग भी नही पहुचती। वहा सब निस्तरग है। वहा ज्योति अकम्प जलती है।

उस भीतर की घटना को जब बाहर बताने आना पडता है, तब सम्प्रदाय पैदा होता है। लेकिन वह भी होगा। ज्ञानी बिना बताये नही रह सकता, क्योकि जो जाना है, उसे बाटना ही होगा, जो पाया है उसे बाटना ही होगा।

दुख का स्वभाव है कि तुम चाहो तो बचा सकते हो। आनन्द का स्वभाव है कि तुम उसे बचा नहीं सकते, तुम्हे बाटना ही होगा। दुखी आदमी एक कोने मे बैठ सकता है, आनदित आदमी नही बैठ सकता। वह चाहेगा कि मित्रो को इकट्ठा कर ले, भोज द दे, आज पूर्णिमा की रात है, तारो के नीचे नाच ले, जो उसे मिला है, थोडा-सा बाट दे। आनन्द बटना चाहता है। जैसे फूल जब सुगध से भर जाता है तो खिल जाता है, सुवास लुट जाती है, बादल जब जल से भर जाता है तो बरस जाता है—ऐसे ही जब आनन्द की घटना भीतर घटती है, उसे सम्हालना असम्भव है, उसे कभी कोई नही सम्हाल पाया। दुखी आदमी चुप हो जाये, एकान्त मे बैठ जाये, गुहा मे छिप जाये, आनदित आदमी कितनी ही बडी गुहा मे बैठा हो, उतरकर वापस ससार मे आ जाता है। दुखी महावीर जगल जाते

हैं। आनंदित महावीर बाजार मे लौट आते हैं। दुखी बुद्ध भाग जाते हैं महल से, आनंदित बुद्ध गाव-गाव भटकते हैं बाटने को। दुखी आदमी पलायन करता है। जब आनन्द की घटना घटती है, तो वह उतर आता है ठेठ वहा जहा भीड है, जहा लेनेवाले हैं, जहा प्यासे लोग हैं। जहां पृथ्वी प्यास से तडफ रही है, वहा बादल बरसने को जाता है।

पर कठिनाई भीतरी है। जो जाना है, वह नि शब्द मे जाना है। कहना होगा शब्द मे, क्योंकि सुननेवाले शब्द को समझ सकेंगे, नि शब्द को नही। इसलिए कुरान, गीता, बाइबिल, इजील, तालमुद, अवेस्ता--इनका जन्म होता है। फिर लोग इन किताबो को ढोते रहते हैं, फिर इन किताबो मे खोजते रहते हैं। इन किताबो मे धर्म नही है। ये किताबें धर्म से पैदा हुई हैं, मगर इन किताबो में धर्म नही है। और जिन्होने समझा कि इन किताबो मे ही है, वे भटक गये, उनको फिर कभी भी न मिलेगा। ये किताबें तो इशारा हैं, ये तो मील के पत्थर हैं। ये तो कहती हैं, 'और आगे!' बस, सब किताबे इतना ही कहती है, 'और आगे! यहा मत रुको और आगे। चलो, बढो--और आगे।' सब मील के पत्थर हैं, जहा तीर लगा है, 'और आगे।'

कोई किताब मजिल नही है, क्योंकि शब्द कैसे मजिल हो सकता है? नि शब्द मजिल है। परम मौन मजिल है।

बडी अडचन हो जाती है। जाना था नि शब्द मे, जाना जा सकता है केवल नि शब्द मे, बताया शब्द में। लोग शब्द को पकड लेते हैं। उनकी भी कठिनाई है--जाहिर है, साफ है, क्योंकि जो उनको बताया गया, वह पकड लेते हैं। और कठिनाई बडी सूक्ष्म और जटिल है।

जब बुद्ध बोलते है तो शब्द में तो सत्य नहीं होता, लेकिन बुद्ध के ओठो को छूकर जो शब्द निकलते हैं, उनमे सत्य की झनकार होती है। शब्द तो तुम जो उपयोग करते हो वही बुद्ध करते हैं, लेकिन शब्दो का गुणधर्म बदल जाता है। जब बुद्ध बोलते हैं तो सिर्फ शब्द नही बोले जा रहे हैं, बुद्ध की आखें भी कुछ कह रही हैं, बुद्ध के हाथ भी कुछ कह रहे हैं, बुद्ध का पूरा व्यक्तित्व कुछ कह रहा है। जब बुद्ध शब्द बोल रहे हैं तब शब्द तो सिर्फ एक छोटा अश है, बुद्ध का पूरा होना उसमे समाविष्ट है। तो बुद्ध जब शब्द बोलते है तो निर्जीव शब्द भी जीवन की प्रतीति ले लेते हैं, साधारण-से शब्द भी हीरो की चमक ले लेते हैं। उस क्षण मे तुम शब्द को अपने भीतर ले जाते हो बुद्ध का सारा व्यक्तित्व उस शब्द के आसपास एक वायुमण्डल की तरह तुम्हारे भीतर आता है। लेकिन गीता मे जब

तुम पढोगे, तो किताब पर छपे स्याही के अक्षर हैं, वहां कृष्ण की मौजूदगी नहीं है। जब तुम धम्मपद मे पढोगे तो कागज और स्याही है, वहा बुद्ध के ओठ, बुद्ध की आखें, बुद्ध के हाथ, बुद्ध का होना, वहा कुछ भी नही है।

ऐसा ही समझो कि अगर तुमने सगीत की किताबें देखी हो, चिह्नो मे सगीत लिखा होता है। सगीत मे और सगीत की किताब मे जहा चिह्न बने होते हैं सगीत के, उसमे जितना फर्क है—उतना ही फर्क बुद्ध के वचन और धम्मपद मे है, कृष्ण के वचन और गीता मे है। कहा बुद्ध के वचन—उनके भीतर की ज्योति से ज्योतिर्मय, उनके भीतर की सुवास से आन्दोलित; उनके भीतर की गध को लेते हुए, क्योकि उनसे डूबकर आ रहे हैं, उनके गहनतम से आ रहे है। शब्द नि शब्द को कह नही सकते, लेकिन नि शब्द मे से डूबकर आये हैं तो नि शब्द की थोडी-सी ध्वनि उन शब्दो मे मौजूद होती है। वही ध्वनि प्रभावित करती है, शब्द प्रभावित नही करते।

शब्द तो मैं भी वही बोल रहा हू, जो तुम बोलते हो। मेरे शब्दो के कारण तुम मेरे पास नही आ सकते, क्योकि एक भी शब्द तो नया नही है जो तुम नही जानते। तुम मेरे पास किसी और कारण से हो। शब्द के पास-पास कुछ और भी घट रहा है। शब्द के आस-पास कुछ और भी घट रहा है। भला तुम उसे ठीक से समझ भी न पाओ, लेकिन तुम्हारा हृदय उसे पहचानता है। भला तुम उसे पकडकर मुट्ठी मे बाध भी न पाओ, किसी को बता भी न पाओ, लेकिन कही अन्तस्तल मे कोई भनक पैदा होती है और तुम जानते हो कि जो मैं कह रहा हू वह शब्दो मे ही नही है। वही तुम्हे छूता है, वही तुम्हे आन्दोलित करता है।

कई बार तुम्हे अडचन होती होगी। तुम मेरे शब्द सुनते हो, ठीक वही शब्द तुम जाकर दूसरे को कहते हो—तुम हैरान हो जाते हो कि वह तुमसे प्रभावित ही नही हो रहा है। बात क्या है? यह भी हो सकता है, तुम मेरे शब्दो को सुधार भी ले सकते हो, मुझसे भी अच्छा कर ले सकते हो—क्योकि मैं कोई शब्दो मे बहुत कुशल नही हू, व्याकरण कोई ठिकाने की नही है—तुम उसे सुव्यवस्थित कर ले सकते हो, लेकिन तुम हैरान होओगे कि बात क्या है, वही मैं कह रहा हू?

शब्दो मे कुछ भी नही है। शब्द तो निर्जीव है, जीवन तो तुम्हारे भीतर से डाला जाये, तो ही डाला जाता है।

बुद्ध से जो प्रभावित हुए, उन्होने शब्द सग्रहीत कर लिये। स्वभावत इतने बहुमूल्य शब्द बचाये जाने जरूरी हैं। फिर पीढी-दर-पीढी उन शब्दो का अनुस्मरण चलता है, पाठ चलता है। तुम भी थोडे हैरान होओगे कि कबीर के वचनो मे ऐसा कुछ खास तो नही दिखाई पडता, क्योकि तुम्हे कबीर का एहसास नही है।

बुद्ध के वचनो मे भी तुम्हे कुछ खास न दिखाई पडेगा। ऐसा क्या खास है? बडे कवि हुए हैं, उनके वचनो मे ज्यादा कुछ है। बडे लेखक हैं, बडे वक्ता हैं—उनके बोलने की कुशलता और! न तो बुद्ध, न कबीर, न मुहम्मद कोई वक्ता हैं, न तो कोई लेखक हैं, भाषा की कुशलता है ही नही—फिर क्यो इतने लोग प्रभावित हुए? कैसे इतनी क्रान्ति घटित हुई? नही, कबीर नही हैं क्रान्ति के कारण, कबीर की भाषा भी नही है, कबीर के भीतर जो ज्योति आकाश से उतरी है, जो अवतरण हुआ है—वही। सारा राज वहा है, सारी कुजी वहा छिपी है जादू की, सारा चमत्कार वहा है। लेकिन वह तो खो जाता है कबीर के साथ, थोथे शब्द रह जाते हैं, जैसे चली हुई कारतूस। चली हुई कारतूस को तुम सम्हाले रहते हो। सोचते हो, 'कितना बडा धडाका हुआ था! कारतूस तो वही है, सम्हाल लो।' लेकिन चली हुई कारतूस को सम्हालकर भी क्या करोगे?

कुरान, बाइबिल, इजील, तालमुद, अवेस्ता, धम्मपद—सब चली हुई कारतूस हैं। चल चुकी, धडाका हो चुका, अब तुम नाहक ढो रहे हो। अब इसके बल पर तुम किसी युद्ध मे मत उतर जाना। यह चली हुई कारतूस अब किसी काम न आयेगी।

इससे अडचन हाती है। इससे बडी अडचन होती है। सम्प्रदाय शब्दो से घिर जाता है, धर्म नि.शब्द है। सम्प्रदाय शास्त्रो से घिर जाता है, धर्म का कोई शास्त्र नही। शून्य ही उसका शास्त्र है। मौन ही उसकी वाणी है।

और तीसरी बात, जब कभी अवतरण होता है धर्म का, परमात्मा का, तो उस व्यक्ति के माध्यम से बहुत-सी घटनाये घटती है। वह व्यक्ति बहुत तरह की विधियो का उपयोग करता है—तुम्हे सहायता पहुचाने को, तुम्हे मार्ग पर चलाने को।

बुद्ध ने भिक्षुओ को पीत वस्त्र दिये। पीले वस्त्र प्रतीक है, प्रतीक है मृत्यु के। कबीर जा कह रहे हैं कि जीते-जी जो मर जाये वही बचेगा। जैसे पीला हो जाता है पत्ता तो उसका अर्थ है कि मौत करीब आ रही है, पत्ता मरने के करीब है। फिर जब बिलकुल पीला हो जाता है तो मर गया। फिर वह किसी भी क्षण वृक्ष से टूट जाता है—न वृक्ष को पता चलता है, न पत्ते को पता चलता है मौत घट गई। पीले पत्तो को देखकर बुद्ध का स्मरण आया—पीत वस्त्र उपयोगी होगे। वह तुम्हे याददाश्त दिलाएगे कि मर जाना है, कि इस जीवन मे जीना नही है, मर कर जीना है, पीले पत्ते की तरह जीना है—जो लटका है, अब गया, अब गया, अब गया! किसी भी क्षण हवा की जरा-सी लहर—और पीला पत्ता गया! ऐस जीना है। क्योकि मौत किसी भी क्षण घट सकती है। मौत के प्रति जागे हुए जाना है। मौत को स्वीकार करके जीना है।

इसलिए बुद्ध ने अपने भिक्षुओ को पीले वस्त्र दिये । भिक्षु अब भी पीले वस्त्र पहने हुए हैं । लेकिन प्रतीक जड हो गया । अब उसमे कोई जीवन नही है । उन्हे कुछ पता भी नही है कि वे क्यो पीले वस्त्र पहने हुए हैं ।

मैंने तुम्हे गैरिक वस्त्र दिये हैं । जैसे बुद्ध को पीला पत्ता मौत का सूचक मालूम पडता है, ऐसे ही दूसरे छोर से गैरिक रग दो बातो का प्रतीक है एक तरफ तो सुबह उगते हुए सूरज का रग है—एक नये जीवन का आविर्भाव, दूसरी तरफ साझ को डूबते हुए सूरज का भी रग वही है । एक तरफ, ससार की तरफ से मर जाना है, परमात्मा की तरफ जीना है । एक तरफ सुबह, एक तरफ साझ—दोनो एक साथ ।

गैरिक रग अग्नि का रग है, और अग्नि से गुजरे बिना कोई भी निखरता नही । तुम्हारी आत्मा का स्वर्ण निखरेगा अग्नि से गुजरकर । गैरिक वस्त्र अग्नि का रग है, उसका अर्थ है कि यह पूरा जीवन अग्निशिखा है । यहा से तुम्हे शुद्ध होकर *गुजरना है, अन्यथा तुम स्वीकार न हो सकोगे ।*

बहुत पुकारे जाते है, बहुत कम चुने जाते हैं । हजार यात्रा करते हैं, एक पहुचता है । अगर तुमने जीवन को पूरा मौका दिया कि तुम्हे जला डाले, तुमने अपने को बचाने की कोशिश न की, तुम स्वर्ण की तरह अग्नि मे पड गये और सब तरह से तुमने जलने दिया अपने को—एक बात पक्की है कि सोना नही जलता, कचरा ही जलता है । तुम्हारे भीतर जो सोना है, वह बच रहेगा, जो कचरा है, वह जल जाएगा ।

गैरिक वस्त्र चिता का रग है, तो उसमे वह बात तो छिपी ही है जो पीत वस्त्रों मे छिपी है, कि तुम जीवन को मरकर जीना—जैसे प्रतिपल तुम चिता पर चढे हो, आग की लपटे उठ रही है तुम्हारे चारो तरफ, तुम्हारे गैरिक वस्त्र आग की लपटे बनी रहे तुम्हारे चारो तरफ, तुम ऐसे जीयो जैसे चिता पर बैठा हुआ आदमी जी रहा हो किसी भी पल सब जल जायेगा, राख पडी रह जायेगी ।

लेकिन यही खतरा है । पीछे लोग पीले वस्त्र पहने हुए चलते रहते है जड प्रतीक हाथ मे रह जाता है, अर्थ खो जाता है—तब सम्प्रदाय निर्मित हो जाता है । तब तुम पहनते हो पीले वस्त्र, या गैरिक वस्त्र, या माला—लेकिन वह जडता हो जाती है । अब उसमे कोई अर्थ नही है । अब तुम्हारे हृदय का उससे कोई सबध नही है । अब तुम पहने हो क्योंकि पहनना है । अब तुम पहने हो क्योंकि सदा से लोग पहनते रहे है । अब तुम पहने हो क्योकि न पहनोगे तो लोग क्या कहेगे ! अब और बातो का कसिडरेशन है । अब और बातो का विचार है । लेकिन मूल बात, मूल अर्थ खो गया ।

अब हम समझने की कोशिश करे कबीर के वचनो को।

'साधो देखो जग बौराना।' कहते हैं, देखो, सारा जगत पागल हो गया है, और पागल इसलिए हो गया है कि धर्म की जगह सम्प्रदाय मे जी रहा है, जीवित धर्म को तो भूल गया है, मृत धर्म को पकड़ लिया है।

'साची कहौ तो मारन धावै, झूठे जग पतियाना॥'

बड़े आश्चर्य की बात है, कबीर कहते हैं, कैसा पागल है यह ससार कि अगर सच कहू तो मुझे मारने लोग आते हैं, अगर झूठ कहू तो पतियाते हैं! (पतियाना अर्थात् विश्वास करना)

सम्प्रदाय झूठ है, धर्म सत्य है। और जब भी तुम धर्म की बात करोगे, लोग मारने आएगे, और जब भी तुम झूठ की बात करोगे, लोग पतियाएगे। जब भी तुम सम्प्रदाय की बात करोगे, लोग कहेगे वाह, वाह! क्योकि तुम उन्ही की मान्यताओ की बात कर रहे हो, तुम उन्ही के अहकार की तृप्ति कर रहे हो। जब भी तुम धर्म की बात करोगे, लोग खड़े हो जाएगे, दुश्मन की तरह। क्योकि अब तुमने कुछ ऐसी बात कही जो उनके विपरीत है।

धर्म सदा सम्प्रदाय के विपरीत है। ज्ञानी सदा पुरोहित के विपरीत है। प्रबुद्ध व्यक्ति सदा पडित के विपरीत है।

'साधो देखो जग बौराना।
साची कहौ तो मारन धावै, झूठे जग पतियाना॥'
'हिन्दू कहत है राम हमारा, मुसलमान रहमाना।'

परमात्मा किसी का भी नही है। तुम परमात्मा के हो सकते हो, वह समझ मे आता है, लेकिन तुम उलटा काम करते हो--तुम परमात्मा को अपना बना लेते हो। परमात्मा के हो जाओ, क्योकि तुम बूद हो, वह सागर है, समर्पण कर दो अपना। लीन हो जाओ विराट मे, समझ मे आता है। लेकिन लीन तो कोई नही होता, लोग उलटे परमात्मा पर ही कब्जा कर लेते हैं। बूद सागर पर कब्जा कर रही है। मुट्ठी मे आकाश बाधने की कोशिश चल रही है।

'हिन्दू कहत है राम हमारा, मुसलमान रहमाना।'

दावेदारी बन गयी है। धर्म तो सिखाता है समर्पण, सम्प्रदाय करता है दावेदारी। धर्म तो सिखाता है कैसे तुम मिटो, और सम्प्रदाय इस जगत मे सबसे असम्भव बात करवाता है कि तुम परमात्मा के ऊपर भी कब्जा कर लो, तुम दावेदार हो जाओ। परमात्मा तुम्हारा रक्षक है, लेकिन सम्प्रदाय कहता है, तुम परमात्मा की रक्षा करो—कही मुसलमान आकर मदिर की मूर्ति न तोड दे, कही

मस्जिद मे कोई हिन्दू आग न लगा दे, कही कुरान का कोई अपमान न कर दे, कहीं गीता का कोई विरोध न कर दे—तुम्हे रक्षा करनी है, जैसे तुम्हारे बिना परमात्मा बडी असहाय अवस्था मे पड जायेगा, अगर तुम न हुए, परमात्मा का क्या होगा !—जगह-जगह कुटेगा, पिटेगा, लोग आग लगाएगे, मारेगे, काटेंगे, तोडेगे ! तुम ही उसे बचा रहे हो !

परमात्मा को तुमने समझा क्या है ?—कोई वस्तु है, जिस पर तुम दावा कर दो ?

कबीर के लिए तो बहुत मुश्किल रही होगी, क्योकि कबीर का कुछ पक्का नही है कि वे हिंदू थे कि मुसलमान। कबीर जैसे किसी आदमी का कुछ पक्का नही होता। और उनके साथ तो जीवन मे भी घटना ऐसी घट गयी थी कि मा-बाप बच्चे को सरोवर के किनारे छोडकर चले गए—किसका था, कभी पता नही चला, जायज था, नाजायज था, कुछ पता नही चला, हिन्दू का था, मुसलमान का था, कुछ पता नही चला। ऐसा खयाल ही था लोगों का कि मुसलमान का बच्चा है। रहा होगा। और एक हिन्दू सन्यासी ने कबीर को बडा किया। तो गुरु तो हिन्दू था, मा-बाप शायद मुसलमान रहे होगे।

तो कबीर तो बडी मुश्किल मे थे। हिन्दू न घुसने दे मदिर मे उनको, क्योकि वे मुसलमान है, मुसलमान न घुसने दे मस्जिद मे क्योकि वे हिन्दू गुरु के शिष्य और हिन्दू घर मे पले है—'यहा कहा आते हो ?' जिन्होने जिन्दगीभर कबीर का मन्दिर-मस्जिद मे न घुसने दिया, लेकिन मरते वक्त उन्होने झगडा खडा कर दिया। जब वे मर गये, तो मुसलमानो ने कहा कि हम दफनाएगे। मस्जिद मे तो न घुसने दिया। कबीर ठीक ही कहते हैं कि 'साधो देखो जग बौराना !' और हिन्दुओ ने कहा कि हम दफनाने न देगे, जलाएगे।

जीवित कबीर को दोनो ने इनकार किया। वे लाश पर कब्जा करने आ गये। यही तो सम्प्रदाय की कुशलता है धर्म को इनकार करता है, जीवित को इनकार करता है, क्योकि जीवित मे खतरा है। जीवित के पास तुम गए, तो बदलोगे, मरे के पास गए, तुम तो बदल ही नही सकते, मुर्दे पर तुम कब्जा कर लोगे। मरे कबीर पर कब्जा करने हिन्दू-मुसलमान दोनो पहुच गए। और यह कहानी कुछ ऐसी है कि लगती है सार्वभौम है। नानक के साथ यही हुआ। तारण के साथ यही हुआ। और भी सतो के जीवन मे ऐसा हुआ कि मरते वक्त लोग कब्जा करने पहुच गए।

यह कठिनाई समझ मे आती है, क्योकि मुर्दे पर कब्जा किया जा सकता है, जीवित कबीर को तो तुम छू भी न सकोगे, छुओगे तो जल जाओगे। जीवित

कबीर के पास जाओगे तो क्रान्ति घटेगी। वह तो आग है—ऐसी आग है जिसमे तुम्हारा कचरा जल जाएगा और सोना बचेगा। लेकिन मरे हुए कबीर को जलाने लोग पहुच गए, खुद जलने न पहुचे जिन्दा कबीर के पास, और झगडा खडा कर दिया। अब भी, जहा कबीर की मृत्यु घटी, वह मकान दो हिस्सो मे बटा है—आधे पर हिन्दुओ का कब्जा है, आधे पर मुसलमान का—बीच मे एक बडी दीवार है। आधे को मुसलमान पूजते हैं—वह कबीर की दरगाह है, और आधे को हिन्दू पूजते हैं—वह कबीर की समाधि है।

'हिन्दू कहत है राम हमारा, मुसलमान रहमाना।
आपस मे दोउ लडे मरतु है, मरम कोई नहि जाना॥'

और मर्म की बात इतनी है कि तुम परमात्मा के हो सकते हो, परमात्मा का तुम दावा कर रहे हो कि मेरा! तुम परमात्मा के हो जाओ, काफी है। और जा परमात्मा का हो गया, उसी ने मर्म जाना।

'आपस मे दोउ लडे मरतु हैं, मरम कोई नहि जाना॥'

धर्म को भी लोग लडाई का स्थल बना लिये हैं। धर्म का एक ही उपयोग है कि उसके द्वारा लोग अच्छी तरह लड सकते हैं। और ध्यान रखना, अधर्म के लिए लडो तो मन मे थोडा अपराध भी मालूम पडता है, धर्म के लिए लडो तो काम इतना धार्मिक है कि अपराध का तो कोई सवाल ही नही। मुसलमान सोचता है कि अगर धर्मयुद्ध मे मारे गये तो मोक्ष निश्चित है। हिन्दू सोचता है कि अगर धर्म के लिए शहीद हो गए तो स्वर्ग के दरवाजे पर बैण्ड-बाजे मौजूद हैं। एक बात खयाल मे ले लेना कि अच्छी बात के लिए लोग लडना सुगम पाते है, बुरी बात के लिए लडने मे तो थोडा-सा सकोच भी होता है कि क्या लडाई कर रहे हो। लेकिन अच्छी बात के लिए?—लडाई मे बडा मजा आ जाता है।

इसलिए लोग लडने के लिए अच्छी बाते खोज लेते हैं, कारण तो लडना है, बहाने अच्छे खोज लेते हैं हिन्दू-धर्म खतरे मे है—झगडा शुरू! अब हिन्दू-धर्म को बचाना ही पडेगा! तुमने ठेका लिया है? तुम धर्म के बचानेवाले कौन? कि इस्लाम खतरे मे है बस, पागलो की दौड शुरू हो गयी!

और फिर धर्म के नाम पर तुम जितना अधर्म कर सकते हो, उतना किसी और चीज के नाम पर नही कर सकते। सत्य के नाम पर झूठ बोलो, धर्म के नाम पर अधर्म करो, अहिंसा के नाम पर तलवार उठा लो! कबीर ठीक ही कहते है, 'साधो देखो जग बौराना!' लोग बिलकुल पागल मालूम होते हैं अहिंसा के लिए भी लोग तलवार उठा लेते हैं, यह भी भूल जाते हैं कि तलवार उठाने का मतलब है कि

तुमने ही हिंसा कर दी। धर्म के लिए लडने का मतलब तुमने ही अधर्म करना शुरू कर दिया। युद्ध ही तो अधर्म है। प्रेम है धर्म, घृणा है अधर्म। और धर्म के नाम पर कितनी घृणा फैलायी जाती है! धर्म है निरहकार, लेकिन धर्म के नाम पर कितना अहकार चलता है!

एक छोटे गाव मे ऐसी घटना घटी कि एक ईसाई पादरी आया। आदिवासियो का गाव है बस्तर मे। और आदिवासियो को समझाना हो तो आदिवासियो के ढग से समझाया जा सकता है। क्योकि बहुत सिद्धान्त की बात करने से तो कोई सार नही। न शास्त्र वे जानते है, न शब्द वे बहुत समझते है। तो उसने एक तरकीब निकाली और उसने कई लोगो को ईसाई बना लिया। उसने तरकीब यह निकाली कि वह गाव मे जाता, थोडा-बहुत धर्म की बात करता, भजन-कीर्तन करता और फिर दो मूर्तिया निकालता अपने झोले से—एक क्राइस्ट की और एक राम की, और दोनो को पानी मे डालता। एक बालटी भरवा लेता और दोनो को पानी मे डालता, और कहता कि देखो, जो खुद बचता है वही तुम्हे बचा सकता है, जो खुद ही डूब जाये, वह तुम्हे क्या बचाएगा! राम की मूर्ति लोहे की बना ली थी और जीसस की मूर्ति उसने लकडी की बना ली थी। तो जीसस तो तैरते और राम एकदम डुबकी मार जाते। गाव के आदिवासी समझे कि बात तो बिलकुल सच्ची है, तर्क साफ है—क्योकि इन राम के पीछे हम फसे है, और ये खुद ही डूब रहे है! उसने इस कारण कई लोगो को ईसाई बना लिया।

एक हिन्दू सन्यासी गाव मे मेहमान था। उस सन्यासी ने ही मुझे पूरी कहानी बताई। वह बडा योग्य आदमी था। गाव के लोगो ने उससे भी कहा कि यह तो बडा रहस्य है, साफ है मामला। अनेक लोग ईसाई हो गये। वह भी गया देखने। उसने समझ लिया कि मामला क्या है। भरी सभा मे जब लोग बडे प्रभावित हुए तो उसने कहा कि ऐसा काम किया जाए पानी तो ठीक है, आग जलवाई जाये—जो बच जाये, वही तुम्हे बचाएगा। गाव के लोगो ने कहा, 'यह तो बिलकुल साफ मामला है। असली चीज तो आग है, पानी मे क्या रखा है?' वह ईसाई पादरी बडी मुश्किल मे पड गया। उसने बडी कोशिश की कि बच निकले, लेकिन गाव के लोगो ने पकड लिया। उन्होने कहा, 'कहा जाते हो? यह तो परीक्षा होनी ही चाहिए क्योकि अग्निपरीक्षा तो शास्त्रो मे भी कही है। जल-परीक्षा कभी सुनी?'

वे जीसस जल गये!

सम्प्रदाय जीते है क्षुद्र तर्कों पर, बहुत छोटे तर्कों पर। बहुत छोटी-छोटी घृणा को जमा-जमाकर धीरे-धीरे वे अबार खडा करते है। एक एक ईट घृणा की है,

विद्वेष की है, दूसरे की निन्दा की है, दूसरे को छोटा, बुरा बताने की है। प्रेम तो कही पता भी नही चलता। और जो घृणा फैला रहे हैं, वे प्रार्थना कैसे करते होगे? उनकी प्रार्थना मे भी वही घृणा होगी।

प्रेम फैलाओ तो ही तुम्हारी प्रार्थना मे प्रेम आयेगा। क्योंकि जो प्रेम तुम्हारे जीवन का हिस्सा न बन जाये, वह तुम्हारी प्रार्थना मे कभी आविर्भूत न होगा। तुमसे ही तो प्रार्थना उठेगी।

'साधो देखो जग बौराना।'

'आपस मे दाउ लडे मरतु हैं, मरम कोई नहि जाना।'

'बहुत मिले मोहि नेमी धरमी, प्रात करै असनाना।'

बडे नियम और धर्म को माननेवाले लोग—कबीर कहते है—मैंने देखे, रोज सुबह स्नान करते हैं काशी मे। सब इकट्ठे ही हैं वहीं नियमी-धर्मी। वह काशी घर था कबीर का। वे रोज सुबह से चले जा रहे है गगा का स्नान करने।

'आतम छोडि पखानै पूजै, तिनका थोथा ग्याना।' लेकिन मैं देखता हू कि पूजा वे आत्मा की नही करते, पत्थरो की करते है। स्नान करते हैं, पूजा-पाठ करते हैं, नियम-धर्म का पालन करते हैं—लेकिन पूजा पत्थर की करते हैं, चैतन्य की नही, दीये को पूजते हैं, ज्योति को नही। तो क्या होगा तुम्हारे स्नान से? पाप तुम करोगे, गगा तुम्हारे पाप धोएगी? गगा ने कौन-से पाप किये हैं जो तुम्हारे पाप धोये? गगा का क्या कसूर है? कितना ही तुम स्नान करो, शरीर को रगड-रगड रगडकर कितना ही धो डालो, इससे भीतर की चेतना तो न निखरेगी। इसका यह मतलब नही है कि स्नान मत करो। क्योंकि वैसे भी लोग हैं जो स्नान ही नही करते। क्योंकि वे कहते हैं, जब आत्मा ही की पूजा करनी है तो स्नान की क्या जरूरत?

जैन दिगम्बर मुनि हैं, वे स्नान नही करते हैं। वे स्नान ही बद कर देते है कि जब आत्मा की ही पूजा करनी है तो शरीर को क्या धोना? लोग पागल हैं और अतियो पर उतर जाते हैं।

मध्य युग में युरोप मे ईसाइयत स्नान के खिलाफ हो गई और गदगी परमात्मा तक पहुचने का रास्ता मान लिया। एक सत एक सौ तीस वर्ष जीया, और कहते हैं, उसने कभी स्नान नही किया। और उसकी बडी पूजा थी, प्रतिष्ठा थी, क्योंकि यह है आत्मज्ञानी!

तो समझकर चलना, रास्ता यह खतरनाक है। इसमे एक अति से दूसरी पर मत चले जाना। स्नान शरीर के लिए बिलकुल जरूरी है। स्वच्छता सुखद है। लेकिन शरीर के स्नान से आत्मा शुद्ध नही होती। और न शरीर की गदगी से आत्मा शुद्ध

होती है, यह भी स्मरण रखना। नही तो शरीर को गदगी मे बिठा रखते हैं। कई परमहस होकर बैठ जाते हैं, और वे वही खाना खाते है, वही मलमूत्र त्याग करते हैं। कई उनकी पूजा करनेवाले भी मिल जाते हैं कि यह आदमी ज्ञानी है, क्योंकि यह आत्मा की पूजा मे लगा है, मालूम होता है, क्योंकि शरीर का इसे खयाल ही नहीं है।

शरीर की जरूरत शरीर की जरूरत है। शरीर की जरूरत निश्चित ही पूरी करनी है। लेकिन शरीर की जरूरत को आत्मा की जरूरत मत समझ लेना।

'आसन मारि डिम्भ धरि बैठे, मन मे बहुत गुमाना।'

देखता हू कि आसन मारकर बैठे हैं और भीतर सिवाय दम्भ के और गुमान के सिवाय कुछ भी नही है। तो आसन ही मारकर बैठने से क्या होगा, अगर आसन के भीतर अहकार ही भर रहा है? इसका यह अर्थ नही है कि आसन का उपयोग नही है। इसका इतना ही अर्थ है कि आसन मार लेने से तुम यह मत समझ लेना कि अहकार मर जायेगा।

आसन का अपना उपयोग है। अगर शरीर को बिलकुल शांत, थिर करके बैठ जाओ, तो शरीर की थिरता के कारण मन की गति मे बाधा पडनी शुरू हो जाती है। मन शात हो जाएगा, ऐसा नही है, लेकिन शरीर अगर थिर हो तो मन के अशान्त होने मे बाधा पडती है। शात शरीर के भीतर मन के शात होने की सम्भावना बढ जाती है। स्नान करके, स्वस्थ मन से, स्वस्थ शरीर से, तुम पूजा करने आये हो, तो पूजा की सम्भावना बढ जाती है। गदगी से भरे हुए, थके हारे, धूल-धवास मे दबे, तुम पूजा करने आये हो—पूजा की सम्भावना कम हो जाती है। लेकिन सिर्फ स्नान कर लेना पूजा नही है। स्नान कर लेना पूजा के लिए सहारा हो सकता है। स्नान कर लेना पर्याप्त नही है, जरूरी है, पर्याप्त नही है। कुछ और होना जरूरी है। स्नान को ही सब मत समझ लेना। वही धर्म और सम्प्रदाय का भेद है। धर्म जीवन की समस्त चीजो का उपयोग करता है ताकि परम ज्योति जल सके। सम्प्रदाय उपयोग मे ही अटक जाता है, ज्योति की बात ही भूल जाता है।

मुल्ला नसरुद्दीन एक आदमी के घर नौकर था। बडा रईस आदमी था लेकिन मुल्ला से परेशान था। उसने एक दिन कहा कि मैं कई बार तुम्हे बता चुका, मगर अब एक सीमा होती है हर चीज की। तीन अण्डे लाने के लिए बाजार तीन दफा जाने की जरूरत नही है, एक ही दफे मे ले आ सकते हो।

कुछ दिन बाद वह अमीर बीमार पडा। उसने नसरुद्दीन को कहा कि जाओ, वैद्य को बुला लाओ। नसरुद्दीन गया, वैद्य को ले आया। लेकिन वह बडी देर

बाद लौटा तो अमीर ने कहा कि इतनी देर कैसे लगी ? उसने कहा, और सबको भी बुलाने गया था। अमीर ने कहा, "वे और सब कौन हैं ? मैंने तुम्हे वैद्य को बुलाने भेजा था।" तो उसने कहा कि वैद्य अगर कहे कि मालिश करवानी है, तो मालिश करनेवाले को लाया हू, वैद्य अगर कहे कि पुलटिस बधवानी है तो पुलटिस बनानेवाले को लेकर आया हू, वैद्य अगर कहे कि फला तरह की दवा चाहिए, तो केमिस्ट को भी बुला लाया हू, और अगर वैद्य असफल हो जाये तो मरघट ले जानेवाले को भी ले आया हू। सब मौजूद हैं। तीन अण्डे एक साथ ले आया हू।

समझ बारीक बात है, और सिर्फ क्रियाकाण्ड समझ नही है। क्रियाकाण्ड उसने पूरा कर दिया, लेकिन समझ की कोई खबर न थी।

साम्प्रदायिक व्यक्ति एक-एक हिसाब को पूरा कर देता है, सब क्रियाकाण्ड परिपूर्ण होते हैं उसके। तुम उसमे भूल नही निकाल सकते। अब क्या भूल निकालोगे नसरुद्दीन मे। उसने क्रियाकाण्ड पूरा कर दिया। उसने गणित साफ कर दिया पूरा, रत्तीभर कमी नही छोडी, लेकिन बात वह बिलकुल चूक गया। गणित साफ कर दिया, लेकिन समझ से बिलकुल चूक गया।

साम्प्रदायिक व्यक्ति पूरा क्रियाकाण्ड कर देता है, एक से लेकर सौ तक सब नियम पूरे कर देता है, और फिर भी चूक जाता है। क्योकि वह जो क्रियाकाण्ड है, सहयोगी हो सकता है, लेकिन वही सब कुछ नही है। और वह जो क्रियाकाण्ड है, वह बदला भी जा सकता है। वह अनिवार्य भी नही है। लेकिन जो अनिवार्य है, वह नही बदला जा सकता।

दीया कई ढग का हो सकता है, ज्योति एक ही ढग की होती है। दीया तुम गोल बनाओ, तिरछा बनाओ, कलात्मक बनाओ, साधारण बनाओ, सोने का बनाओ, मिट्टी का बनाओ, छोटा-बडा, जैसा तुम्हे बनाना हो बनाओ, दीये पर सब तुम कर सकते हो, लेकिन ज्योति का स्वभाव एक ही होगा। जब ज्योति जलेगी तो स्वभाव एक ही होगा। क्रियाकाण्ड दीये के भीतर इतना लीन हो जाता है, इतनी बारीक नक्काशी करने लगता है दीये पर कि दीये मे ही जीवन चूक जाता है, ज्योति जलाने का मौका ही नही आता। इतनी ही बात खयाल रखना।

'आसन मारि डिम्भ धरि बैठे, मन मे बहुत गुमाना।
पीपर पाथर पूजन लागे, तीरथ बर्त भुलाना॥'

असली तीर्थ तो भूल ही गया जो भीतर है।

तीर्थ का अर्थ होता है जहा से परमात्मा की तरफ नाव छूटती है। काशी मे तीर्थ नहीं है, क्योकि वहा से नाव छोडोगे तो दूसरी तरफ पहुच जाओगे, परमात्मा

में नहीं पहुंच जाओगे।

तीर्थ का अर्थ होता है वह जगह जहा से नाव परमात्मा की तरफ छूटती है। तो वह तीर्थ तो भूल ही गया। वह तो भीतर है। इस तरफ तुम हो, उस तरफ परमात्मा है–बीच में विराट जीवन की नदी है।

'पीपर पाथर पूजन लागे'–और लोग वृक्षों को पूज रहे हैं, पत्थरो को पूज रहे हैं। 'तीरथ वर्त भुलाना।' वर्त का अर्थ है व्रत, सकल्प। न तो कोई सकल्प है जीवन में, न कोई व्रत है, बस ऐसे ही अधे अधो को धक्का दिये जा रहे हैं। दूसरे कर रहे हैं, तुम भी कर रहे हो। वही काम सकल्प से किया जाये तो धार्मिक हो जाता है, और वही काम बिना सकल्प के किया जाये तो साम्प्रदायिक हो जाता है।

जैसे तुमने प्रार्थना की, सकल्प से की। सकल्प का अर्थ है, तुमने अपने पूरे प्राणो को डाल दिया उस प्रार्थना मे। तुमने प्रार्थना ऐसे की कि जैसे प्रार्थना जीवन और मरण का सवाल है। तुमने प्रार्थना ऐसे की कि खुद को पूरा दाव पर लगा दिया–यह व्रत का अर्थ होता है–पूरा दाव पर लगा दिया। रोआ-रोआ, श्वास-श्वास, हृदय की धडकन धडकन तुमने सब समर्पित कर दी यह सकल्प का अर्थ है। ऐसी प्रार्थना उतार लायेगी परमात्मा को भी, कही भी हो वह। कही भी छिपा हो वह गहन-से-गहन में, ऐसी प्रार्थना उसे खीच लेगी तत्क्षण।

लेकिन एक प्रार्थना है, तुमने की, जैसे तुम और काम करते हो खाना खाते हो, बाजार जाते हो, दुकान पर जाते हो, पत्नी से बात करते हो, अखबार पढते हो–ऐसी ही तुमने प्रार्थना की। ऊपर से शब्द तो एक जैसे हो सकते हैं, लेकिन भीतर का सकल्प अगर भूल गया हो तो प्रार्थना व्यर्थ है, तुम समय वैसे ही खो रहे हो। अच्छा था, तुम अखबार और थोडा पढ लेते, दुबारा पढ लेते। कोई फर्क नही है।

भीतर का सकल्प ही गुणात्मक भेद लाता है।

ऐसा हुआ कि बगाल मे एक बहुत बडा ज्ञानी हुआ। भट्टोजी दीक्षित उस ज्ञानी का नाम था। ऐसे वह बडा व्याकरण का ज्ञाता था और जीवनभर उसने कभी प्रार्थना न की। वह साठ साल का हो गया। उसके पिता नब्बे के करीब पहुच रहे थे। पिता ने भट्टोजी को बुलाया और कहा कि 'सुन, अब तू भी बूढा हो गया, और अब तक मैंने राह देखी कि कभी तू मदिर जाये, आज तेरे साठ वर्ष पूरे हुए, तेरा जन्म दिन है। अब तक मैंने कुछ भी तुझसे कहा नही। लेकिन अब मेरे दिन भी थोडे बचे हैं। कभी मैं चला जाऊ, कुछ भी पता नही। अब तेरे प्रार्थना करने का समय आ गया है। अब मदिर जा। कब तक तू यह व्याकरण

में उलझा रहेगा और गणित सुलझाता रहेगा । क्या सार है इसका ? माना कि तेरी बड़ी प्रतिष्ठा है, दूर-दूर तक तेरे नाम की कीर्ति है—पर इसका कोई सार नही । और तू अब तक मदिर क्यो नही गया, मैं पूछता हू । तेरे जैसा समझदार, बुद्धिमान, प्रार्थना क्यो नहीं करता ?'

तो भट्टोजी ने कहा कि 'प्रार्थना तो एक दिन करूगा । आज कहते हैं, आज ही करूगा । तैयारी ही कर रहा था प्रार्थना की, लेकिन तैयारी ही पूरी नही हो पाती थी । और फिर आपको मैं देख रहा हू कि आप जीवनभर प्रार्थना करते रहे, कुछ भी न हुआ । आप रोज जाते हैं मदिर और लौट आते हैं । आपको देखकर भी निराशा होती है कि यह कैसी प्रार्थना ! और ऐसी प्रार्थना करने से क्या होगा ? आप वही के वही हैं । लेकिन अब आपने आज कह ही दिया तो मैं सोचता हू कि अब वक्त करीब आ रहा है, तो आज मैं जाता हू, लेकिन शायद मैं लौट न सकूगा ।'

बाप तो कुछ समझा नही । क्योकि बाप ऐसे ही प्रार्थना करता था—एक क्रियाकाण्ड था, एक साम्प्रदायिक बात थी, करनी चाहिए थी, करता था ।

भट्टाजी वापस नही लौटे । मदिर मे प्रार्थना करते ही गिर गए और समाप्त हो गए ।

सकल्प !

भट्टाजी ने कहा, "प्रार्थना एक ही बार करनी है, दुबारा क्या करनी ? क्योकि दुबारा का मतलब है, पहली दफा ठीक से नही की । तो एक दफा ठीक से ही कर लेनी है, सभी कुछ दाव पर लगा देना है । अगर होता हो तो हो जाये ।"

तो वे कह गये थे, "या तो वापस नही लौटूगा या वापस लौटूगा तो दुबारा मदिर नही जाऊगा । क्योकि क्या मतलब है ऐसे जाने का ?"

यह सकल्प का अर्थ होता है !

सकल्प का अर्थ होता है समस्त जीवन को उडेल देना एक क्षण मे । तब दुबारा प्रार्थना करने की जरूरत नही है । एक बार राम का नाम लिया भट्टोजी ने और राम के नाम के साथ ही वे गिर गये ।

कबीर कहते हैं, 'न तीर्थ का पता, न सकल्प का पता, पत्थर, पीपर लोग पूजे जा रहे हैं 'साधो देखो जग बौराना ।'

'माला पहिरे टोपी पहिरे, छाप तिलक अनुमाना ।
साखी सबदै गावत भूलै, आतम खबर न जाना ।।'

लोग माला पहने हैं लेकिन उन्हे कुछ भी पता नहीं कि माला क्यो पहने हुए हैं । माला पर हाथ चल रहे हैं, मन कही और चल रहा है ।

लोग थैली बना लेते हैं, माला थैली मे रखे रहते है, और माला चलती रहती है थैली के भीतर, और वे सब काम करते रहते हैं दुकान चलाते रहते हैं, बात करते रहते हैं, कुत्ते को भगा देते हैं, ग्राहक को लूट लेते हैं, और एक हाथ से माला चलती रहती है। माला यन्त्रवत् चल रही है। हाथ को भी काहे को उलझाए हो, एक बिजली की छोटी मोटर लगा लो, उस पर माला टाग दो, वह घूमती रहेगी।

वैसा भी किया है लोगो ने। तिब्बत मे उन्होने एक प्रेयर-व्हील बना लिया है। उसको वे कहते है प्रार्थना का चक्का। एक चक्का है छोटा-सा जैसा चरखे का चक्का होता है, और उस पर प्रार्थना लिखी है। उसको एक दफा घुमा दिया तो वह जितने चक्कर लगा ले उतनी प्रार्थना का लाभ है। तो लोग रखे रहते है बगल मे, सब काम करते रहते हैं, जब वह फिर रुक गया, फिर एक धक्का मार दिया, फिर अपना काम कर लिया, फिर एक धक्का मार लिया। तो दिनभर मे अनन्त प्रार्थना का लाभ लेते हैं।

मेरे पास एक बौद्ध लामा कुछ दिन मेहमान हुआ, वह चक्का रखे रहता था। तो मैंने कहा, "बिलकुल पागल है, इसको प्लग कर दे दीवाल से, तू अपना काम कर, यह अपना काम करे। चौबीस घटे सोओ, जागो, चोरी करो, हत्या करो—तुम्हे जो करना हो, तुम करो, यह प्रार्थना का लाभ तो तुम्हे मिलता ही रहेगा। सिर्फ बिजली का बिल तुम चुका देना।"

'माला पहिरे टोपी पहिरे, छाप तिलक अनुमाना।'

'साखी सबदै गावत भूलै'—और भजन-कीर्तन मे लोग भूल जाते हैं, डूब जाते है, और सोचते हैं कि यह ज्ञान की घडी घट रही है। कबीर कहते हैं, 'आतम खबर न जाना।'

वह भूलना सगीत का है। वह तो वेश्या के घर भी जो सगीत को सुनता है, वह भी सिर डुलाने लगता है। उसमे तुम बहुत मूल्य मत समझ लेना। वह तो अच्छा सगीतज्ञ भी डुबा देता है लोगो को, सराबोर कर देता है।

'साखी सबदै गावत भूलै'—तो भजन-कीर्तन मे लग जाते हैं लोग और सिर डुलाने लगते है और समझते है कि बडी काम की बात हो रही है, कि बडा धर्म कमा रहे हैं, कि देखो कैसे लीन हो गये हैं! 'आतम खबर न जाना!' इन सब बातो से कुछ भी न होगा, जब तक भीतर का बोध न आ जाये। और भीतर का बोध आ जाये तो भजन-कीतन, माला, पत्थर सभी महत्त्वपूर्ण हो जाते है, और भीतर का बोध न आये तो सभी व्यर्थ हो जाते है। इस बात को ठीक से खयाल मे रखें।

'घर घर मत्र जो देत फिरत है माया के अभिमाना।'

'गुरुवा सहित सिष्य सब बूडे, अतकाल पछिताना ।।'

और लोगो ने धधा बना रखा है, घर-घर मत्र देते फिरते हैं । कबीर कहते है, इन ब्राह्मणो, पडितो ने व्यवसाय बना लिया है । वे देते फिरते हैं, बाटते फिरते हैं, और लोग सोचते हैं कि बस मत्र मिल गया, अब क्या करना है ! कान फूक दिये गुरु ने, अब क्या करना है ! निपट गये, गुरु-मत्र ले लिया !

मेरे पास लोग आते है । वे कहते हैं, तीस साल हो गए, गुरु-मत्र लिया, अब तक कुछ हुआ नही । गुरु मत्र लेने से कुछ होगा ? और गुरु-मत्र दिया किसने ? इसकी भी कभी फिक्र की है कि जिसने गुरु मत्र दिया, वह गुरु था भी ? न, वे कहते हैं, ऐसा तो कुछ नही, गाव का पडित था, उसने दे दिया ।

गुरु-मत्र तो केवल उसी से मिल सकता है जो जाग गया हो, और तो कोई मत्र दे नही सकता । तो पृथ्वी पर मुश्किल से एक, दो, तीन, चार, पाच, अगुलियो पर गिने जानेवाले लोग होते हैं, जो मत्र दे सकते है, गुरु-मत्र दे सकते हैं, लेकिन लोग दे रहे हैं ।

कबीर कहते हैं, 'गुरुवा सहित सिष्य सब बूडे'—गुरु और उनके शिष्य सब डूब जाते हैं, लेकिन पता अन्तकाल मे चलता है, उसके पहले पता नही चलता है । 'अन्तकाल पछिताना'—जब मौत करीब आती है तब पता चलता है कि यह सब जिन्दगी तो ऐसे ही गई । न गुरु-मत्र बचा सकता है, न माला का फेरना बचा सकता है, न पत्थर का पूजना बचाता है—मौत सामने खडी है ! लेकिन तब समय भी नही बचता, कुछ करने का उपाय भी नही बचता ।

मरने के पहले सजग हो जाना । अगर थोडी ठीक से खोज की तो तुम गुरु को खोज ही लोगे । ठीक से खोज का अर्थ है यह काम सस्ता नही है । गुरु के पास होने का मतलब है समर्पण । मुफ्त नही मिलता है मत्र । जब तक तुम अपने को पूरा ही झुका न दो, तुम अपने को पूरा मिटा ही न दो, तब तक नही मिलता है मत्र । बडे साहस की जरूरत है ।

मेरे पास लोग आते है । मैं चकित होता हू कभी-कभी कि लोग कुछ सोचते भी हैं या नही सोचते है । कोई आता है, वह कहता है कि सिर्फ माला दे दे, गेरुआ कपडा मैं न पहन सकूगा । गेरुआ कपडा पहनने तक की हिम्मत नही है, जो कि कोई बडी हिम्मत नही है । क्या खास हिम्मत है ? तुम्हारे कपडे हैं, तुम गेरुआ रग लो, किसी का लेना-देना है, किसी मे प्रयोजन है ? कपडे तक रगने से इतनी घबडाहट है, आत्मा को तुम कैसे रग पाओगे ? इतना भी साहस नही है कि चार लोग हसेगे तो हस लेगे, चार लोग पागल कहेगे तो कह लेगे । ऐसे भी वे पागल ही कहते हैं तुमको ।

एक राजनीतिज्ञ के खिलाफ किसी अखबार ने कुछ लिख दिया। वह बडा नाराज हो गया। वह बड़ा गुस्से मे आया।

मुल्ला नसरुद्दीन उसके मित्र हैं, उनके पास पहुचा, और कहा कि मैं इसको मिटा-कर रहूगा, अदालत मे ले जाऊगा

नसरुद्दीन ने कहा, "बैठो। इस गाव मे कितने लोग है?"

उसने कहा, "दस हजार।"

"कितने लोग अखबार पढते हैं?"

तो उसने कहा, "मुश्किल से हजार।"

"नौ हजार की तो फिक्र छोड दो। हजार अखबार पढते हैं, उनमे से कितने लोग तुमको जानते हैं?"

"मुश्किल से आधे लोग जानते होगे।"

"पाच सौ बचे।

इन पाच सौ मे से कितने लोग पहले से ही जानते हैं कि तुम गडबड हो? अख-बार ने कोई नई बात तो छापी नही। कोई झूठ भी नही छापा।"

नसरुद्दीन ठीक जगह पर ले आया बात को। उस राजनीतिज्ञ ने थोडा सकोच करते हुए कहा, "आधे लोग।"

"तो ढाई सौ लोग बचे। ये ढाई सौ लोग क्या बिगाड लेगे तुम्हारा? ढाई सौ लोग जानते हैं कि तुम गडबड हो, उन्होने क्या बिगाड लिया? ये भी जान लेगे तो क्या बिगाड लेगे? तुम फिजूल ढाई सौ लोगो के पीछे पचायत मे मत पडो और उनमे से भी कई बाहर गये होगे, गाव मे न होगे, कई को आज दिन का अखबार न मिला होगा। कई उसमे से इस खबर को चूक गये होगे, पढा न होगा। कई ने पढा भी होगा, लेकिन कुछ और सोच रहे होगे। तुम फिजूल की परेशानी मे मत पडो। असलियत अगर ठीक से समझी जाये तो तुम्हारे सिवाय इस अखबार को किसी ने ठीक मे नही पढा है। किसको प्रयोजन है?"

तुम बहुत चिता मे रहते हो कि लोग क्या कहेगे! लोग! यह भी अहकार का हिस्सा है कि तुम सोचते हो कि लोग तुम्हारे सबध मे सोच रहे हैं। कौन फिक्र पडी है किसको? अपना-अपना सोचने को काफी है। कोई तुम्हारे सबध मे नही सोच रहा है। फुर्सत किसे है? हा, एकाध दफा देख लेगे तो शायद पूछ भी ले, शायद हस ले तो वे पहले ही से हस रहे हैं तुम पर। वे पहले से जानते थे। लोग पहले से ही जानते थे कि इनका दिमाग कुछ खराब है, अब गेरुआ पहन लिये हैं। कुछ नया नही होगा।

उतनी-सी छोटी घटना में लोग इतने परेशान मालूम होते हैं कि लगता है जीवन मे कोई संकल्प की क्षमता नही रही और अन्तर्यात्रा के लिए कुछ भी दाव पर लगाने के लिए हिम्मत नही है—मुफ्त मिल जाये !

एक मित्र मेरे पास आये दो दिन पहले ही, और कहा कि 'आपकी किताबे पढता हू बडा आनन्द आता है । रात, आधी रात तक पढता रहता हू, कभी-कभी तो सुबह हो जाती है । मगर ध्यान मे मुझे कोई रस नही है ।' ध्यान मे कोई रस नही है ! किताब पढने मे आनद है ! क्या कारण होगा ? क्योकि सारा जो कुछ मैं कह रहा हू, यह इसलिए कह रहा हू कि ध्यान मे रस आ जाये । अगर मेरे शब्दो मे रस आया और ध्यान मे रस न आया तो मेरा शब्द व्यर्थ ही गया । क्योकि, बोल ही इसलिए रहा हू कि तुम्हारे भीतर मौन की दशा आ जाये, समझा इसलिए रहा हू कि तुम शून्य हो जाओ, विचार इसलिए तुम्हारे सामने पेश कर रहा हू कि तुम निर्विचार हो जाओ । और तुम कहते हो, विचार मे बडा रस आता है ! तो रस कही गडबड है । रस सिर्फ तर्क मे आता होगा, और विचार इकट्ठे कर लेने मे आता होगा, और बडे पडित हो जाने मे आता होगा, चार लोगो के सामने चर्चा करने मे आता होगा, लेकिन रस वास्तविक नही है, अन्यथा पूरा प्रयोजन ही यह है कि रस ध्यान मे आ जाये ।

और ध्यान मे कुछ करना पडेगा । पढने मे तुम्हे क्या करना पडता है ? पढना तो एक निष्क्रिय बात है । आख के सामने किताब रख लो, अगर पढना आता है तो बस पढना शुरू हो गया । करना क्या है ? जीवन को बदलने की तो कोई जरूरत नही होती पढने मे । पढना तो इकट्ठा होता जाता है, जीवन वैसा का वैसा बना रहता है । ध्यान मे जीवन बदलना पड़ेगा । पढना सस्ता है, ध्यान कठिन है । ध्यान मे तुम जैसे हो, वैसे ही न रह जाओगे, रूपान्तरण होगा । इसलिए ध्यान से लोग बचते हैं ।

पढना ठीक है, लेकिन पढने से तुम ज्यादा से ज्यादा साम्प्रदायिक हो पाओगे, मेरे सम्प्रदाय के हिस्से हो जाओगे, लेकिन तुम कभी धार्मिक न हो पाओगे । जिस धर्म को मैं बाट रहा हू, उस धर्म मे तुम भागीदार न हो पाओगे । और यह तो ऐसे ही हुआ कि मैं तुम्हे अमृत दे रहा था और तुमने अमृत इनकार कर दिया और तुम टेबल के पास रोटी के सूखे जो टुकडे गिर गये थे, उनको बीनकर ले गये, उनको बाधकर ले गये । उसे तुमने सम्पदा समझ लिया ।

'बहुतक देखे पीर औलिया, पढ़ै किताब-कुराना ।
करै मुरीद कबर बतलावै, उनहु खुदा न जाना ।।'

बहुत देखे पीर, बहुत देखे औलिया, गुरु बहुत तरह के, पर इतना ही पाया कि बस वे किताब पढ़ रहे हैं और जानकारी किताब तक सीमित है।

'पढ़ै किताब-कुराना'—किताब यानी वेद, किताब यानी बाइबिल, किताब यानी धम्मपद। वे पढ़ रहे हैं किताब, लेकिन उन्होंने परमात्मा को नहीं जाना। किताब पढ़कर कहीं कोई परमात्मा को जानता है? काश, इतना सस्ता होता तो सभी ने जान लिया होता।

जीवन को बदलकर ही कोई जानता है। खुद को देकर ही कोई जानता है। खुद को मिटाकर ही कोई पहचानता है। जब खुदी मिट जाती है तभी खुदा का अनुभव शुरू होता है।

'करै मुरीद कबर बतलावै, उनहू खुदा न जाना।'

और ये पीर-औलिया लोगों को शिष्य बना रहे हैं और उनको कब्रें दिखला रहे हैं कि यहा पूजा करो, यह रही कब्र।

कब्र के आसपास मुसलमान मंदिर खड़े कर लेते हैं, कब्र बड़ी महत्त्वपूर्ण हो जाती है।

जीवन चारों तरफ बरस रहा है और तुम कब्रों पर बैठे पूजा कर रहे हो। परमात्मा सब तरफ मौजूद है, तुम मृत्यु की आराधना कर रहे हो? जबकि मृत्यु सबसे बड़ा झूठ है। कोई कभी मरा ही नहीं। मरना घटता ही नहीं। जीवन ही है। और जिसको तुम मृत्यु कहते हो, वह एक जीवन की तरंग का दूसरे जीवन की तरंग मे रूपान्तरित हो जाना है। वह सिर्फ बदलाहट है, मृत्यु नहीं।

'करै मुरीद कबर बतलावै, उनहू खुदा न जाना।'

'हिन्दू की दया मेहर तुरकन की, दोनो घर से भागी।'

न तो हिन्दू के हृदय मे दया है और न मुसलमान के हृदय मे मेहर है। दोनो की करुणा समाप्त हो गई है। दोनो का प्रेम चुक गया है। 'दोनो घर से भागी।'

'वह करै जिबह वा झटका मारै, आग दोउ घर लागी।'

और दोनो घर जल रहे है हिन्दू का भी, मुसलमान का भी—सभी के घर जल रहे हैं। फर्क क्या है उनमे? फर्क बहुत ज्यादा नहीं है। हिन्दू भी कत्ल करते है। काली के मंदिर मे, कलकत्ते मे, आज भी वे कत्ल किये जा रहे है। मुसलमान भी कत्ल करता है। फर्क क्या है? फर्क बड़े टेक्नीकल हैं। फर्क यह है कि एक जिबह करते हैं। जिबह का मतलब है, धीरे-धीरे मारते हैं। जब गर्दन काटते हैं पशु की, धीरे-धीरे धीरे-धीरे काटते हैं—जिबह। और दूसरे एक ही झटके में काटते हैं। बस इतना ही फर्क है उनमे। और दोनो की करुणा घर से जा चुकी है, दोनो के घर मे

आग लगी है। और फर्क बचकाने हैं। बस, ऐसे छोटे-छोटे फर्क हैं, जिन फर्कों से कोई मतलब नहीं है। असली सवाल है कि तुम मारते हो तुम जिबह करके मारते हो कि झटका करके मारते हो—इससे क्या फर्क पडता है ? पशु को क्या फर्क पडता है ? वह दोनो हालतों में मारा जाता है।

लेकिन सभी सम्प्रदायो मे इसी तरह के छोटे-छोटे झगडे हैं।

एक जैन मदिर मे मैं गया। वहा झगडा खडा हो गया था। जैनो के दो सम्प्रदाय लट्ठ लिये खडे थे। मार-पीट हो गई थी, पुलिस आ गई। अब इस मदिर मे कोई दो साल से ताला लगा है, पुलिस का ताला लगा है; अदालत मे मुकदमा चल रहा है। मैं मेहमान था उस गांव मे। पास में ही मदिर था, तो मैं देखने गया कि मामला क्या है ? और जैन तो बडे अहिंसात्मक हैं, इनका झगडा, और लट्ठ उठ गये और तलवारे निकल आई और सिर फोड दिये एक-दूसरे के—यह मामला क्या है ? मामला बडा छोटा था। महावीर की प्रतिमा को दोनो पूजते है, लेकिन श्वेताम्बर प्रतिमा के ऊपर आंख लगाकर, खुली आखवाले महावीर को पूजते हैं, और दिगम्बर बद आखवाले महावीर को पूजते हैं। झगडा हो गया। तो समय बटा हुआ है उनका मदिर मे सुबह बारह बजे तक एक सम्प्रदाय पूजता है, फिर बारह बजे के बाद दूसरा सम्प्रदाय पूजता है। एक दिन किसी की पूजा थोडी लम्बी चल गई, साढे बारह हो गये—झगडा खडा हो गया 'अलग करो आख !' बन्द आखवाले महावीर के भक्त आ गए।

कभी-कभी सम्प्रदायो के बीच के झगडे देखकर हद मूढता दिखाई पडती है। महावीर की आख बद या खुली—इससे क्या फर्क पडता है ? पूजा तुम्हें करनी है तुम्हारा हृदय खुला या बद—इसकी फिक्र करो।

'या विधि हसी चलत है हमको, आप कहावै स्याना।' कबीर कहते हैं, इससे हमे बडी हसी आती है, और ये सब लोग सयाने हैं।

'कहै कबीर सुनो भाई साधो, इनमे कौन दिवाना ॥'

तुम बताओ, इनमे कौन दिवाना है ? कबीर यह कह रहे है हमे तो ये सभी दीवाने दिखाई पडते है, सभी पागल हो गये हैं। लेकिन हरेक दावा कर रहा है कि हम सयाने हैं। और सब मिलकर परमात्मा को काट रहे हैं: कोई जिबह कर रहा है, कोई झटका मार रहा है—कटता है परमात्मा।

एक छोटी-सी कहानी है, बडी पुरानी है।

एक गुरु के दो शिष्य हैं। वे दोनो सेवा करते हैं। गर्मी के दिन हैं। गुरु सोया है। दोनो ने कहा कि आधा-आधा बांट लो। तो बायां अग एक ने ले लिया, दाया

अग दूसरे ने ले लिया। दोनो पैर दबा रहे हैं—गुरु के अपने-अपने अग के। गुरु ने करवट ली, गुरु को कुछ पता नही—वे सो रहे है—कि बटवारा हो गया है। गुरु ने करवट ली, तो बाये पैर पर पड गया। तो बाए पैरवाले ने कहा, "हटा ले अपना पैर, अगर मेरे पैर पर पडा ठीक नही होगा।" दूसरे शिष्य ने कहा, "जा-जा। कौन हटा सकता है? अगर हो हिम्मत तो हटा दे।" बात बढ गई। थोडी देर मे दोनों लट्ठ लिये खडे थे। गुरु की खीचातानी हो गई। गुरु पिटे, बुरी तरह पिटे। क्योकि जिसका बाया अग था उसने दाये अग को मारा, जिसका दाया अग था उसने बाए अग को मारा।

परमात्मा मिट रहा है सब तरफ से, क्योकि वही है। तुम जिसे भी काटो, वही कटेगा। मदिर जलाओ तो भी उसी का मदिर जलता है, मस्जिद जलाओ तो भी उसी की मस्जिद जलती है। मूर्ति तोडो तो उसी की मूर्ति टूटती है। वेद को जलाओ, उसी का वेद जलता है। वही है!

जैसे ही किसी व्यक्ति मे थोडी-सी समझ उठनी शुरू होती है—यह सारा जगत उसी का मदिर है! सब किताबें उसकी, सब पूजास्थल उसके! और ऐसी घडी मे ही तुम योग्य बनते हो कि धर्म तुममे अवतरित हो जाये।

साम्प्रदायिक व्यक्ति ने कभी धर्म नही जाना और कभी जान नही सकता। जिन्हे धर्म जानना है उन्हे भीतर सब सम्प्रदायो से मुक्त हो जाना जरूरी है, सब धारणाओ से, सब भेदो से, और भीतर उसमे लीन हो जाना है जो तुम्हारा स्वभाव है। उस स्वभाव की तैयारी ही एक दिन तुम्हे परमात्मा से मिला देगी। और कही और खोजना नही, क्योकि वह तुम्हारे भीतर है।

'कस्तूरी कुडल बसै!'

दिनांक १६ मार्च, १९७५; प्रातःकाल; श्री रजनीश आश्रम, पूना

अभीप्सा की आग : अमृत की वर्षा

छठा प्रवचन

दिनांक १६ मार्च, १९७५; प्रातःकाल; श्री रजनीश आश्रम, पूना

मो को कहा ढूढ़ो बन्दे, मै तो तेरे पास में ।
ना मै बकरी ना मै भेड़ी, ना मै छुरी गडास ।।

नहिं खाल में नहिं पोंछ में, ना हड्डी ना मांस में ।
ना मै देवल ना मै मस्जिद, ना काबे कैलास में ।।

ना तो कौनो क्रिया कर्म में, नहीं जोग बैराग में ।
खोजी होय तो तुरतै मिलिहौं, पल भर की तालास में ।।

मै तो रहौं सहर के बाहर, मेरी पुरी मवास में ।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, सब सांसो की सांस में ।।

परमात्मा प्रत्येक का स्वभाव सिद्ध अधिकार है। उसे खोया होता तो तुम कभी पा न सकते थे। उसे खोया नही है, इसलिए पाने की सम्भावना है। और उसे खोया नही है, इसलिए खोज बडी मुश्किल है। जिसे खो दिया हो, उसे खोजने की सम्भावना बन जाती है। लेकिन जिसे खोया ही न हो, उसे तुम खोजोगे कैसे? इसलिए परमात्मा पहेली बन जाती है। इस पहेली को पहले ठीक से समझ लें। इस पहेली के कुछ आधारभूत नियम हैं।

पहला नियम जिसे तुमने सदा से पाया है, उसकी तुम्हे याद नही आ सकती। वह सदा ही तुम्हे मिला रहा है, एक क्षण को भी वियोग नही हुआ। याद तो उसकी आती है जिससे वियोग हो जाये। मछली को सागर का पहली बार पता चलता है, जब वह सागर के बाहर निकाली जाती है। अन्यथा मछली को पता ही नही चलता कि सागर है। पता चलेगा कैसे? सागर मे ही पैदा हुई, सागर में ही आख खोली, सागर मे ही जीयी, सागर मे ही दौडी-भागी, सुख-दुख पाये, सागर से सदा ही घिरी रही, बाहर भी सागर, भीतर भी सागर—सागर का पता कैसे चलेगा? पता चलने के लिए वियोग जरूरी है। तो मछुआ जब मछली को बाहर निकाल लेता है सागर से, तब पहली दफा सागर की याद आती है। लेकिन तुम्हे तो परमात्मा के बाहर निकालने का कोई उपाय नही है, कोई मछुआ नही है, जो तुम्हे बाहर निकाल ले, कोई जाल नहीं है जो तुम्हे परमात्मा के बाहर निकाल ले; कोई किनारा नही है जहा तुम्हे परमात्मा के बाहर निकाल लिया जाये। परमात्मा बेकिनारा है। उसकी कोई सीमा नही है, जहा वह समाप्त होता हो। तुम उसके बाहर नही जा सकते—यही अडचन है। इसलिए उसकी याद नही आती। याद आये कैसे?

यह तो पहली कठिनाई है पहेली की।

वियोग हो सकता तो योग बडा आसान था। तब कोई उपाय खोज लेते, कोई रास्ता बना लेते। वियोग नही हो सकता है, इसलिए योग असम्भव है।

ऐसी समझ तुम्हारे मन मे गहरी बैठ जाये, ऐसी समझ तुम्हारे रोए-रोए मे समा

जाये, तो अचानक खोज समाप्त हो गई, जिसे कभी खोया ही नही उसे पा लिया। यह केवल बोध का रूपान्तरण है। न तो कुछ पाने को है, न कुछ खोने को है, सिर्फ समझ की क्रान्ति है, सिर्फ आख खोलकर स्थिति को देखना है।

दूसरी बात जो भीतर है, उसे पाना मुश्किल हो जाता है। क्योकि, सारी इन्द्रिया बाहर खुलती है। आख बाहर देखती है, हाथ बाहर छूते हैं, कान बाहर की आवाज सुनते हैं, नासापुट बाहर की गध लेते हैं–सारी इन्द्रिया बाहर की तरफ खुलती हैं। क्योकि, इन्द्रिया प्रकृति का हिस्सा हैं, प्रकृति से जुडी है। प्रकृति बाहर है, परमात्मा भीतर है। और प्रकृति से जुडने के लिए इन्द्रियो की जरूरत है। इन्द्रिया न हो तो तुम्हारा प्रकृति से सबध छूट जायेगा। अधे आदमी का क्या सबध है प्रकाश से ? बहरे का क्या सबध है सगीत से, ध्वनि से, शब्द से ? इन्द्रिया न हो तो प्रकृति से सबध छूट जायेगा।

अब यह जरा बारीक मामला है ठीक से समझ लेना। और इन्द्रिया हो तो परमात्मा से सबध छूट जाएगा। क्योकि, भीतर के लिए किसी इन्द्रिय की जरूरत नही है। दूसरे से जुडना हो तो सबध बनाने के लिए कुछ आधार चाहिए। अपने से ही जुडने के लिए क्या आधार जरूरी है ? भीतर आख जा नही सकती, हाथ नही जा सकते–जरूरत भी नही है।

कमरे मे अधेरा हो तो रोशनी जला लो, कमरे मे रोशनी हो जाती है। लेकिन कमरे मे अधेरा हो, तब भी तुम्हारे भीतर तो अधेरा नही होता। कमरे मे रोशनी जल जाये, तब भी तुम्हारे भीतर रोशनी नही होती, बाहर ही बाहर सब घटता रहता है। कितना ही गहन अधेरा हो, तुम्हे अपना तो पता चलता ही रहता है अधेरे मे भी कि मैं हू। किसी का पता नही चलता, टेबल का पता नही चलता, दीवाल का पता नही चलता, कोई और बैठा हो कमरे मे, उसका पता नही चलता, तुम्हारा प्रियतम बैठा हो, उसका पता नही चलता, भगवान की मूर्ति रखी हो कमरे मे, उसका पता नही चलता सब खो जाता है अधेरे मे। क्योकि आख की इन्द्रिय रोशनी मे काम कर सकती है, बिना रोशनी के आख बेकार हो जाती है, बाहर का कुछ पता नही चलता। लेकिन क्या तुम्हे यह भी भूल जाता है कि तुम हो ? तुम्हे अपना होना तो पता चलता ही रहता है। तुम्हे अपने होने की तो अहर्निश धारा बनी रहती है।

कोई रोशनी तुम्हारे जानने के लिए कि तुम हो, जरूरी नही, कोई इन्द्रिय जरूरी नही। तुम इन्द्रियो के पीछे छिपे हो। इन्द्रिया प्रकृति से जोडती हैं। इन्द्रिया न हो तो प्रकृति से सबध टूट जाता है। इन्द्रिया परमात्मा से तोडती हैं। इन्द्रियां न हो

तो परमात्मा से संबंध जुड़ जाता है।

भीतर की यात्रा अतीन्द्रिय है, वहां इन्द्रियों को छोड़ते जाना है। जब तुम्हारी दृष्टि आंख को छोड़ देती है, तब भीतर की तरफ मुड़ जाती है।

और यह जरा समझ लो।

आंख नही देखती है, आंख के भीतर से तुम्हारी दृष्टि देखती है। इसलिए कभी-कभी ऐसा भी हो जाता है कि तुम खुली आंख बैठे हो, कोई रास्ते से गुजरता है और दिखाई नही पड़ता, क्योंकि तुम्हारी दृष्टि कहीं और थी, तुम किसी और सपने में खोये थे भीतर, तुम कुछ और सोच रहे थे। आंख बराबर खुली थी, जो निकला उसकी तस्वीर भी बनी, लेकिन आंख और दृष्टि का तालमेल नही था, दृष्टि कहीं और थी—वह कोई सपना देख रही थी, या किसी विचार मे लीन थी।

तुम्हारे घर मे आग लग गई है। तुम भागे बाहर से चले आ रहे हो। रास्ते पर कोई जयरामजी करता है—सुनाई तो पड़ता है, पता नही चलता, कान तो सुन लेते हैं, लेकिन कान के भीतर से जो असली सुननेवाला है, वह उलझा है। मकान मे आग लगी है—दृष्टि वहां है। तुम भागे जा रहे हो, किसी से टकराहट हो जाती है—पता नही चलता। पैर मे कांटा गड़ जाता है—दर्द तो होता ही है, शरीर तो खबर भेजता है, पता नही चलता। जिसके घर मे आग लगी हो, उसको पैर मे गड़े कांटे का पता चलता है?

इसलिए छोटे दुख को मिटाने की एक ही तरकीब है बड़ा दुख। फिर छोटे दुख का पता नही चलता। इसीलिए तो लोग दुख खोजते है, एक दुख को भूलने के लिए और बड़ा दुख खड़ा कर लेते हैं। बड़े दुख के कारण छोटे दुख का पता नही चलता। फिर दुखो का अंबार लगाते जाते हैं। ऐसे ही तो तुमने अनन्त जन्मो मे अनन्त दुख इकट्ठे किये हैं। क्योंकि तुम एक ही तरकीब जानते हो अगर कांटे का दर्द भुलाना हो तो और बड़ा कांटा लगा लो, घर मे परेशानी हो, दुकान की परेशानी खड़ी कर लो—घर की परेशानी भूल जाती है, दुकान मे परेशानी हो, चुनाव में खड़े हो जाओ—दुकान की परेशानी भूल जाती। बड़ी परेशानी खड़ी करते जाओ। ऐसे ही आदमी नर्क को निर्मित करता है। क्योंकि एक ही उपाय दिखाई पड़ता है यहां कि छोटा दुख भूल जाता है, अगर बड़ा दुख हो जाये।

मकान मे आग लगी हो, पैर मे लगा कांटा पता नही चलता। क्यों? कांटा गड़े तो पता चलना चाहिए। हॉकी के मैदान पर युवक खेल रहे हैं, पैर में चोट लग जाती है, खून की धार बहती है—पता नहीं चलता। खेल बन्द हुआ, रेफरी की सीटी बजी—एकदम पता चलता है। अब मन वापस लौट आया, दृष्टि आ गयी।

तो ध्यान रखना, तुम्हारी आख और आख के पीछे तुम्हारी देखने की क्षमता अलग चीजें हैं। आख तो खिडकी है, जिससे खडे होकर तुम देखते हो। आख नहीं देखती, देखनेवाला आख पर खडे होकर देखता है। जिस दिन तुम्हें यह समझ मे आ जायेगा कि देखनेवाला और आख अलग हैं, सुननेवाला और कान अलग हैं · उस दिन कान को छोडकर सुननेवाला भीतर जा सकता है, आख को छोड-कर देखनेवाला भीतर जा सकता है—इन्द्रिय बाहर पडी रह जाती है। इन्द्रिय की कोई जरूरत भी नही है। प्रतीन्द्रिय, तुम अपने परम बोध को अनुभव करने लगते हो, अपनी परम सत्ता की प्रतीति होने लगती है।

आख बाहर खुलती है—इसलिए तुम बाहर ही लगे रहते हो। और बाहर भी विराट प्रकृति है। प्रकृति उतनी ही विराट है जितना परमात्मा, क्योकि परमात्मा की ही प्रकृति है। परमात्मा अगर अन्तस्तल है तो प्रकृति उसका बहिर्विस्तार है। जो भीतर अनन्त है, वह बाहर भी अनन्त ही होगा। जो एक पहलू पर अनन्त है, वह उसके दूसरे पहलू में भी अनन्त ही होगा, क्योकि अनन्त अनन्त ही हो सकता है। इन्द्रिया बाहर खुलती हैं। अनन्त विस्तार है प्रकृति का। तुम खोजते हो जन्मो-जन्मो, तृप्ति नही हो पाती—हो नहीं सकती। कुछ न कुछ शेष रह जाता है। दौड जारी रहती है। सदा शेष रहेगा। सदा दौड जारी रहेगी। ससार चलता ही रहेगा, उसका कोई अन्त नही है, क्योकि वह परमात्मा से ही चल रहा है।

और इस बाहर की दौड मे धीरे-धीरे तुम इतने सलग्न हो जाते हो कि तुम्हें यह याद भी नही रह जाती कि यह दौडनेवाला कौन है, तुम्हे यह याद भी नही रह जाती कि यह जाननेवाला कौन है, यह खोजनेवाला कौन है? और फिर बाहर की दौड बाहर के उपकरणो से तादात्म्य निर्मित करवा देती है। तब तुम अपनी शक्ल भी आईने मे देखकर पहचानते हो—कैसा दुर्भाग्य है! खुद की शक्ल देखने के लिए भी आईने की जरूरत पडती है। तब तुम दूसरो की आखो मे अपनी झलक खोजते हो। अगर लोग तुम्हे अच्छा कहते हैं तो तुम अच्छा मान लेते हो कि मैं अच्छा हू, लोग अगर बुरा कहते हैं तो तुम बुरा मान लेते हो कि मैं बुरा हू, लोग अगर कहते हैं, तुम सुदर हो, तो तुम मान लेते हो कि तुम सुदर हो, और लोग अगर कहते है कि तुम कुरूप हो तो तुम मान लेते हो कि मैं कुरूप हू। दूसरो से पूछना पडता है कि मैं कौन हू। दूसरे भी इतने गहन अधकार मे खड़े हैं। उन्हे खुद भी पता नही है कि वे कौन हैं। वे तुमसे पूछ रहे हैं। अज्ञानियो का जीवन एक-दूसरे के अज्ञान के सहारे खडा होता है।

ऐसा हुआ कि मुल्ला नसरुद्दीन हज यात्रा के लिए गया, मक्का गया। साथ मे

दो मित्र और थे, एक था नाई और एक था गाव का महामूर्ख। वह महामूर्ख गजा था। एक रात वे भटक गये रेगिस्तान में, गाव तक न पहुच पाए। रात रेगिस्तान मे गुजारनी पडी। तो तीनो ने तय किया कि एक-एक पहर जागेंगे, क्योकि खतरा था। अनजान जगह थी। चारो तरफ सुनसान रेगिस्तान था। पता नही डाकू हो, लुटेरे हो, जानवर हो।

पहली ही घडी, रात का पहला हिस्सा, नाई के जुम्मे पडा। दिनभर की थकान थी उसे नीद भी सताने लगी, डर भी लगने लगा। रात का गहन अधकार! चारो तरफ रेगिस्तान को साए-साए! उसे कुछ सूझा न कि कैसे अपने को जगाये रखे। तो उसने सिर्फ अपने को काम मे लगाये रखने के लिए मुल्ला नसरुद्दीन की खोपडी के बाल साफ कर दिये—सिर्फ काम मे लगाये रखने को! और वह कुछ जानता भी नही था नाई था। नम्बर दो पर मुल्ला नसरुद्दीन की बारी थी। तो जब उसका समय पूरा हो गया तो नसरुद्दीन को उठाया कि उठो, बडे मिया। तो नसरुद्दीन ने जागते हुए अपने सिर पर हाथ फेरा, पाया कि सिर सपाट है। उसने कहा, "कोई भूल हो गई है। तुमने मेरी जगह उस गजे मूर्ख को उठा दिया है।"

हमारी पहचान बाहर से है। हम जानते हैं अपने सबध मे वही जो दूसरे कहते हैं। भीतर से अपने को हमने कभी जाना नहीं। हमारी सब पहचान झूठी है। जिस दिन हम अपने को अपने ही तई जानेगे, उसी दिन सच्ची पहचान होगी उसे ही आत्मज्ञान कहा है।

फिर चूकि इन्द्रिया बाहर हैं, इसलिए हम सोच लेते हैं कि सभी कुछ बाहर है। तो हम प्रेम को भी बाहर खोजते हैं और प्रेम का झरना भीतर बह रहा है, हम धन को भी बाहर खोजते हैं और भीतर परम धन अहर्निश बरस रहा है, हम आनन्द का भी बाहर खोजते है और भीतर एक क्षण को भी आनन्द से हमारा सम्बन्ध नही टूटा है। प्यासे हम तडफते हैं, रेगिस्तानो मे भटकते हैं, द्वार-द्वार भीख मागते है—और भीतर अमृत का झरना बहा जाता है। भीतर हम सम्राट हैं। इन्द्रियो के साथ ज्यादा जुड जाने के कारण और तादात्म्य बाहर बन जाने के कारण, हम भिखारी हो गये हैं। यही नही कि हम धन बाहर खोजते हैं, यश बाहर खोजते हैं, स्वय को बाहर खोजते हैं, हम परमात्मा तक को बाहर खोजने लगते है—जो कि हद हो गई अज्ञान की। तो हम मदिर बनाते हैं, मस्जिद बनाते हैं, गुरुद्वारा बनाते हैं, परमात्मा की प्रतिमा बनाते हैं—हम बाहर से इस भाति आक्रात हो गये हैं कि हमे याद ही नही आती कि भीतर का भी एक आयाम है।

अगर किसी से पूछो, कितनी दिशायें है, तो वह कहता है, दस। आठ चारो

तरफ, एक ऊपर, एक नीचे, ग्यारहवीं दिशा की कोई बात ही नहीं करता—भीतर। और वही हमारा स्वभाव है, क्योंकि हम भीतर से ही बाहर की तरफ आये हैं। हमारा घर तो भीतर है। गगोत्री तो भीतर है—जहां से बही है जीवन की धारा।

मा के गर्भ मे छोटे से अणु थे तुम खाली आख से देखे भी न जा सकते थे। उसके भी पूर्व तुम अणु भी न थे, तुम बिलकुल अदृश्य आत्मा थे। तुम आकाश मे चलते तो तुम्हारे पदचिह्न भी न छूटते। तुम वृक्ष से गुजरते तो वृक्ष का पत्ता भी न हिलता तुम्हारे गुजरने से। तुम एक अदृश्य पवन थे। फिर तुम एक गर्भ मे एक छोटे-से अणु मे प्रविष्ट हुए। अणु भी आख से दिखाई नहीं पडता, यत्र चाहिए तब दिखाई पडता है। तुम बडे छोटे थे। फिर अणु बडा होने लगा। ऊर्जा भीतर से बाहर की तरफ फैलने लगी। शरीर निर्मित हुआ। इन्द्रिया निर्मित हुई। तुम्हारा जन्म हुआ। अब तुम जवान हो, या बूढे हो, लेकिन अगर तुम पीछे लौटो तो तुम पाओगे अति सूक्ष्म अदृश्य मे तुम्हारी गगोत्री है—जहा से यात्रा शुरू हुई—मूल स्रोत है। और वह मूल स्रोत अब भी तुम्हारे भीतर है, क्योंकि उसके बिना तो तुम क्षण-भर भी न रह सकोगे। वह मूल स्रोत उड़ जाएगा, पक्षी उड़ जाएगा, पिंजरा पड़ा रह जाएगा, हड्डी-मास के सिवाय कुछ भी न बचेगा!

वह जो तुम्हारे भीतर छिपा है—इन्द्रिया चूकि बाहर खुलती हैं—उसकी तुम्हे याद ही नहीं आती है। परमात्मा तक को तुम बाहर निर्मित कर लेते हो। और कैसा मजा है, तुम ही बनाते हो परमात्मा की मूर्ति और फिर उसी के सामने घुटने टेककर तुम प्रार्थना करते हो। तुम्हे यह भी याद नहीं आती कि अपनी बनाई हुई मूर्ति के सामने प्रार्थना करने से क्या होगा। उस परमात्मा को खोजो जिसने तुम्हे बनाया है। तुम उस परमात्मा के सामने हाथ जोडे बैठे हो, जो तुमने ही बनाया है। तुम्हारा परमात्मा तुमसे बेहतर नहीं हो सकता। तुम्हारा परमात्मा तुमसे छोटा ही होगा। इसलिए तुम्हारे मदिर मस्जिदो मे जो भी देवी-देवता बैठे हुए हैं, तुमसे छोटे हैं। तुमने ही बनाये हैं, तुमने ही सजाया-सवारा है उनको। वे तुम्हारी कृतिया है—कलात्मक होगी, धार्मिक नहीं हो सकती। कलात्मक हो सकती हैं, और कला के मदिरो मे तुम उन्हे रखो—समझ मे आता है, लेकिन धार्मिक उनको समझ लो तो तुम बडी भयकर भूल मे पड गये। और बाहर के परमात्मा से जो उलझ गया, वह पूजा करे, प्रार्थना करे, तीर्थयात्रा करे, यज्ञ-हवन करे—सब व्यर्थ, सब पानी मे चला जा रहा है, वह जैसे रेगिस्तान मे पानी डाला जा रहा हो, जैसे कि रेगिस्तान सोख लेगा—सब खो जायेगा। भीतर की भूमि में डालो पानी—अगर चाहते हो कि परमात्मा का अकुरण हो। बाहर के रेगिस्तान में पानी डालने से अकुरण न होगा।

क्योंकि जिसने तुम्हे बनाया है, जिससे तुम पैदा हुए हो, जिससे तुम आये हो—उसे तुम अब भी अपने भीतर लिये हो, क्योंकि उसके बिना तो तुम जी ही नही सकते। 'सब सांसो की सास में!' तुम्हारी हर सास मे वही श्वास ले रहा है। तुम्हारी हर धड़कन मे उसी की धड़कन है। तुम्हारे हर कपन में उसी का कपन है। तुम्हारे होने मे उसी का होना है।

तीसरी बात परमात्मा को तुम खोजने भी निकलते हो तो तुम इतने उधार हो कि तुम्हारी खोज भी उधार होती है। तब जटिलता बहुत बढ़ जाती है। ऐसा ही समझो कि तुम्हे खुद तो प्यास नही लगी है, तुमने किसी का प्रवचन सुन लिया और प्यास लग गई। तुमने मुझे सुन लिया और मुझे सुनकर तुम्हे ऐसा लगा कि अच्छा, खोजना चाहिए परमात्मा को, तुम्हे खुद कोई प्यास ही न थी। यह परमात्मा की खोज का क्षण तुम्हारे अपने जीवन अनुभव से न आया था। तुम्हारे जीवन के सताप ने तुम्हे उस जगह न पहुचाया था, जहा कि प्रार्थना के लिए व्याकुलता पैदा होती। तुम्हारी जीवन की चिन्ताओ ने तुम्हे उस जगह न पहुचा दिया था, जहा कि तुम शात होने के लिए प्रगाढ कामना करते। तुम्हारे ससार के अनुभव मे इतनी परिपक्वता न थी कि तुम देख लेते कि यह सब माया है, सपना है। तुम्हारी खुद की आखें अभी इतनी सबल न थी कि तुम इस चारो तरफ के फैलाव की व्यर्थता को समझ पाते। तुम्हारा बोध इतना जाग्रत न था कि तुम देखते कि हम जो भी कर रहे हैं, वह नाटक से ज्यादा नही है। लेकिन तुमने मुझे सुन लिया, या किसी और को सुन लिया, बात प्यारी लगी, मन को भायी, तर्क जंचा, बुद्धि सहमत हो गई—तुम खोज पर निकल गये। अब बहुत मुश्किल हो जाएगी, क्योंकि खोज तो प्यास से होती है, बुद्धि के निर्णय से नही।

समझ लो कि तुम्हे प्यास नही लगी है और किसी ने पानी की खूब चर्चा की और तुम प्रलोभित हो गये—क्या करोगे? पानी मिल भी जाएगा तो क्या करोगे? प्यास तुम्हे लगी नही है। तुम्हारे प्राण पानी को माग नही रहे हैं।

एक झेन फकीर हुआ—लिंची। उससे किसी ने पूछा कि तुम क्या कर रहे हो? तुम लोगो को क्या समझाते हो? उसने एक बड़ी अनूठी बात कही। उसने कहा 'सेलिंग वॉटर बाय दि रिवर' (नदी के किनारे पानी बेच रहे हैं) बड़ी अनूठी बात है। नदी के किनारे पानी बेचने की कोई जरूरत नही है। नदी ही मुफ्त पानी दे रही है। लेकिन लिंची ने कहा कि नदी के किनारे पानी बेच रहे हैं, क्योंकि लोग प्यासे नही हैं। नदी उन्हे दिखाई नहीं पडती।

लेकिन क्या कोई दूसरा आदमी तुम्हें प्यासा बना सकता है? तुम प्यासे होओ

तो दूसरा तुम्हें इस बोध से भर सकता है कि प्यास है, लेकिन तुम प्यासे होओ ही न, तो कोई तुम्हे प्यासा नही बना सकता। और बिना प्यास के जो खोज पर निकल जाता है, वह व्यर्थ ही समय खराब करता है। क्योंकि मूलत. तो वह चाहता ही नहीं है। और तब अनूठी चीजे घटती हैं, जिसका हिसाब रखना मुश्किल हो जाता है। जाते तुम मदिर हो, लेकिन दिखाई पडती हैं सुदर स्त्रिया। ऐसा होगा, क्योकि मदिर की तो कोई प्यास न थी, प्यास तो स्त्रियो की थी। किसी की बातचीत सुनकर मदिर का खयाल चढ़ आया। प्यास उधार है। जाओगे मदिर; देखोगे तो वही जो तुम्हारी प्यास है।

ऐसा हुआ कि लडन के एक चर्च मे । उस चर्च की बडी प्रशसा इग्लैण्ड की महारानी ने सुन रखी थी, तो वह एक बार गई। बडी भीड थी चर्च मे। हजारो लोग पक्तिबद्ध खडे थे। दरवाजे के बाहर तक कतार लगी थी। भीतर जगह न थी। रानी प्रभावित हुई। उसने चर्च के पुरोहित को कहा कि मैं बहुत प्रभावित हू—प्रशसा मैंने बहुत सुनी थी, लेकिन मैंने यह न सोचा था कि इतने लोग । उसने कहा, "आप भूल मे है। ये चर्च के लिए नही आये है, ये आपके लिए आये हैं। इनमे से हम किसी को नही पहचानते। इनको हमने कभी देखा ही नहीं। ये जो भावविभोर खडे हैं—परमात्मा के लिए नही। आप कभी बिना खबर किये आये, तब आपको असली स्थिति का पता चलेगा।" तो रानी छिपकर बिना किसी को बताये, कुछ दिनो बाद दुबारा उस चर्च मे गयी। पादरी था, दो-चार बढे लोग थे, जो करीब-करीब सोये थे। पादरी बोल रहा था, सोये हुए लोग सुन रहे थे।

तुम मदिर किसलिए जाते हो? तुम समझते कोई भी कारण होओ, लेकिन तुम्हारी जो प्यास होगी, वही कारण होगा। तो यह भी हो सकता है कि तुम मदिर जा रहे होओ, क्योकि मुकदमा न हार जाओ।

दो दिन पहले एक मित्र आए—मदिरो की तो छोड दो—दो दिन पहले एक मित्र आए, कहने लगे कि तीन साल से, जब से आपको पढ रहा हू, बडी क्रान्ति हो गई है जीवन में। मैं बडा प्रसन्न हुआ कि यह तो बहुत अच्छा हुआ। मैंने कहा, 'अब क्रान्ति के सबध मे कुछ कहो।' कहा, 'दो-दो फैक्टरीज चल रही है। एक पैसा पास न था। जब से आपको पढा, जीवन मे क्रान्ति हो गई। दो-दो फैक्टरीज चल रही हैं। सब सुख-सुविधा है। कार है। बच्चे सब अच्छे है, कालेज मे पढ रहे हैं। और आपकी बडी कृपा है।'

ऐसा व्यक्ति कैसे मुझे समझ पाएगा? अब मैं कोई यहा फैक्टरिया चलवाने को हू? और दो फैक्टरीज चले कि दो सौ चले—जीवन मे कैसे क्रान्ति हो जाएगी?

मेरे पास भी लोग आ जाते हैं, जिनको कहीं और जाना था। अब यह संयोग की ही बात होगी, क्योंकि इसमे मेरा क्या हाथ हो सकता है, उसकी फैक्टरी के चलने में ? मेरी किताब पढ़ रहे हैं, उससे उनकी दो-दो फैक्टरिया चल रही हैं। अब मेरी किताब पढ़ने से फैक्टरी चलने का क्या लेना-देना ? चलती फैक्टरी बद हो जाये तो समझ मे भी आता है। लेकिन चल कैसे सकती हैं फैक्टरिया ? लेकिन वे जीवन की क्रान्ति इसको बता रहे हैं। बड़े प्रफुल्लित हैं।

मुझे भी ठीक न लगा कि उनसे कुछ कहो, क्योंकि कुछ कहना बेकार होगा। बहरो के सामने बीणा बजाने का कोई भी अर्थ नही। मैंने उनसे कहा, "अब आ गये हैं यहा तो कुछ ध्यान करे।" उन्होने कहा, "सब आपकी कृपा से ठीक हो रहा है, अब ध्यान की और क्या जरूरत है ?'

प्यास तुम्हारी अन्तत तुम्हारे जीवन का वातावरण बनती है। तुम्हारी जो भीतर प्यास है, वही तुम्हारा चारो ओर का परिवेश बन जाता है। तुम प्रार्थना भी करोगे तो तुम मागोगे धन। तुम प्रार्थना भी करोगे तो मागोगे पद। तुम ध्यान भी करोगे तो मागोगे ससार। तुम परमात्मा के पास भी जाओगे तो तुम्हारी माग ससार की होगी।

प्यास चाहिए ! और प्यास कैसे आयेगी ? इसलिए इतना बडा उपद्रव धर्म के नाम पर खडा हो गया है। वह कोई शोषण करनेवाले लोगो ने कर दिया है, ऐसा नही है, तुम्हारी जरूरत से पैदा हो गया है। तुम जो मागते हो, उसकी कोई न कोई तो पूर्ति करेगा। इकोनॉमिक्स का सीधा-सा नियम है कि जहा-जहां डिमाड होगी, वहा-वहा सप्लाई होगी। जहा-जहा माग होगी, वहा-वहा कोई न कोई पूर्ति करेगा। तुम अगर जहर भी मागते हो, तो जहर की दुकान खुल जाएगी। क्योंकि आखिर कोई तो जहर बेचेगा—किसी को मरना है, आत्महत्या करनी है, तो जहर की दुकान खुल जाएगी।

तुमने जो मागा है, उसके कारण तुम्हारे सारे मदिर जहर की दुकाने हो गए हैं। और उनमे से ज्ञानी तो हट गया, क्योंकि तुम्हारी माग की वह पूर्ति नही कर सकता था। उसमे अज्ञानी, पुरोहित और पडित जमकर बैठ गये। वे तुम्हारी माग की पूर्ति करते हैं, गडे-ताबीज बाटते हैं, तुम जो चाहते हो, वह देने के लिए हमेशा तैयार हैं। और यह मामला ऐसा है कि बड़ा रहस्यपूर्ण है।

मदिर मे पुजारी आश्वासन देता है कि जो तुम चाहते हो, वह मिल जाएगा। अगर मिल जाये तो पुजारी का प्रभाव बढ़ जाता है, अगर न मिले तो तुम किसी दूसरे मदिर की तलाश मे चले जाते हो। और कभी न कभी तो जो तुम खोजते

रहते हो, वे क्षुद्र चीजें, वे तुम्हें मिल ही जाएगी। उस वक्त तुम किसी न किसी मदिर मे प्रार्थना कर रहे होओगे, जब वे चीजें मिलेगी—वह सयोग महत्त्वपूर्ण हो जाएगा। जिसको जहा मिल जाता है, वह उस मदिर का भक्त हो जाता है। जिसको जहा मिल जाता है, वह उस गुरु का भक्त हो जाता है।

लेकिन जो तुम पा रहे हो, उसका किसी सदगुरु से कुछ लेना देना नही सद्-गुरु तुम्हे कुछ और ही देना चाहता है। सद्गुरु तुम्हे वह सम्पदा देना चाहता है जो कभी न चुकेगी। सद्गुरु तुम्हे उस जगत मे ले जाना चाहता है, जहा कोई मृत्यु न होगी। सद्गुरु तुम्हे परमात्मा से कम पर राजी नही होने देना चाहता। वह चाहता है कि तुम ससार मे तृप्त मत हो जाना, क्योकि तुम परमात्मा को पाने को बने हो, और उससे कम पर तृप्त हो जाना नासमझी होगी।

प्यास चाहिए! अगर तुम जीवन को गौर से देखो तो प्यास अपने-आप उठनी शुरू हो जाएगी। इसलिए ठीक-ठीक गुरु सिर्फ तुम्हे होश सिखाता है, कि तुम थोडा जागकर जीयो। जागकर तुम जीयोगे तो जितना जागरण बढेगा, उसी मात्रा मे ससार सपना मालूम पडेगा। तुम जितने सोये हुए हो, उतना ही सपना सच मालूम पडता है। गहरी नीद मे सपना बिलकुल सच मालूम पडता है। थोडी करवट बदलने लगते हो, थोडी नीद टूटने लगी, सुबह करीब आ गई, तो शक पैदा होने लगता है सपने पर। आख खुलती है, जाग गये—सपना दो क्षण याद रहता है, फिर बिलकुल भूल जाता है, जैसे हुआ ही न हो। आख धो लो ठण्डे पानी से, सपने के लोक से समाप्ति हो गई। सपना उसी मात्रा मे सच मालूम होता है, जिस मात्रा मे तुम मूछित हो, बेहोश हो। जिस मात्रा मे तुम जागते हो, उसी मात्रा मे सपना सपना मालूम होने लगता है। जब तुम ठीक से जागते हो, सपना टूट जाता है।

तुम जागो थोडे। जो भी तुम कर रहे होओ—धन कमा रहे होओ, पद कमा रहे होओ, यश कमा रहे होओ—थोडा जागो। थोडा जागकर देखो, क्या कर रहे हो? ठीकरो पर जीवन को गवा रहे हो। ककड पत्थर बीन रहे हो। सब पडा रह जायेगा। मौत द्वार पर दस्तक देगी—तुमने जो कमाया, सब पडा रह जायेगा। इसको तुम कसौटी बना लो। मौत के साथ, जो यही छोड देना पडेगा मौत के आने पर, वह कमाना नही है, गवाना है। जो तुम मौत के भीतर भी साथ ले जा सकोगे, वही कमाई है। इसको तुम मापदण्ड बना लो। कुछ ऐसा भी कमा लो, जो मौत छीन-कर भी तुमसे छीन न सके। और अगर ऐसी सम्पदा का खयाल उठ आए तो अतृप्ति पैदा होगी। चारो तरफ तुम्हे लगेगा कि यहा तो पानी है ही नही, बस प्यास और

प्यास है, जलन और जलन है, आग है, यहां कही छाया नहीं है, धूप ही धूप है। छाया तो भीतर है।

एक बार बाहर से अतृप्ति होने लगे, तो भीतर की स्मृति आयेगी। जब बाहर की खोज व्यर्थ हो जाती है, तभी कोई भीतर की खोज पर निकलता है।

लेकिन तुम खोज बदल लेते हो, और रहते बाहर ही हो। धन कमाते हो, थक जाते हो धन कमाने से। धन की व्यर्थता किसको नहीं दिखाई पडती? गरीब को नही दिखाई पडती, जिसके पास नही है, लेकिन जिसके पास है उसको तो निश्चित दिखाई पडती है। साफ हो जाता है कि कुछ पाया नही। धन का ढेर लग जाता है, और भीतर तो तुम वैसे के वैसे ही निर्धन रहते हो। धन न तो प्रेम बन सकता है। खरीद सकते हो प्रेम को धन से—शरीर खरीद सकते हो, प्रेम नही खरीद सकते। और प्रेम के बिना कैसे तृप्त होओगे?

धन से यश खरीद सकते हो? खुशामद खरीद सकते हो, यश नही। खुशामद से कोई कभी तृप्त हुआ है? क्योकि जिसकी खुशामद की जाती है, वह भी भली-भांति देखता है कि खुशामद की जा रही है।

धन से तुम प्रतिष्ठा खरीद सकते हो? पद खरीद सकते हो, प्रतिष्ठा नही। और पद पर जब तुम होते हो, तब जिस प्रतिष्ठा को अपनी समझते हो—वह पद की है, तुम्हारी नही। तुम राष्ट्रपति हो जाओ—तुम्हारी प्रतिष्ठा है, फिर न हो जाओ राष्ट्रपति—कोई तुम्हे पूछता नही, खबर भी नही चलती कि तुम कहा हो।

राधाकृष्ण कहा रहते हैं—पता चलता है? क्या करते हैं—पता चलता है? कुछ पता नही चलता।

१९१७ मे, जब रूस मे क्रान्ति हुई, और लेनिन ने तख्ता बदलकर सत्ता हथिया ली, तो जो आदमी उस वक्त रूस मे सबसे ज्यादा प्रतिष्ठित और प्रभावशाली आदमी था—करैन्शकी—वह रूस छोडकर भाग गया। वह प्रधानमत्री था। १९१७ मे, सारे जगत मे उसका नाम था। फिर १९६० तक उसका कोई पता नही चला, क्या हुआ। १९६० मे वह मरा तब पता चला कि उसने छोटी-सी दुकान न्यूयॉर्क मे खोल रखी थी।

१९१७ से लेकर १९६०—लम्बा फासला है। पद नही रहा तो कौन पूछता है! पद की पूछ है। पद प्रतिष्ठा नही है। क्योकि पद की प्रतिष्ठा तुम्हारी प्रतिष्ठा कैसे हो सकती है? प्रतिष्ठा तो तब है कि तुम्हारी गरिमा का स्रोत तुम्हारे भीतर हो, कि तुम्हारी रोशनी तुम्हारे भीतर जलती हो, कि तुम जहा चलो, जहा कदम रखो, वह भूमि पवित्र हो जाये, जहा तुम्हारे पैर पड़ें, तुम जिस जगह पर बैठ

जाओ, वह जगह सिंहासन हो जाये। तुम्हारे कारण पद की प्रतिष्ठा हो—तब प्रतिष्ठा है, पद के कारण तुम्हारी प्रतिष्ठा हो—तुम्हारी क्या प्रतिष्ठा है ? तुम कुर्सी के धोखे मे हो। रोशनी तुम्हारी नही है, अपनी नही है।

न तुम्हारा धन सच्चा है, न तुम्हारा पद सच्चा है। जब तुम देखोगे यह, जब तुम गौर से समझोगे, तब एक नयी प्यास का आविर्भाव होगा। वह प्यास होगी कि सच्चे को खोजना है। और फिर चाहे सच्चा पद हो, सच्चा धन हो, सच्चा प्रेम हो—ये सब नाम उस एक ही परमात्मा के हैं।

सत्य एक है। और उस एक सत्य को पाकर प्रेम भी सत्य हो जाता है, धन भी सत्य हो जाता है, पद भी सत्य हो जाता है—सब सत्य हो जाता है। क्योकि उस सत्य मे सराबोर तुम सत्य हो जाते हो। तुम जो छूते हो, वही सोना हो जाता है। तुम जहा पैर रखते हो, वहा मदिर बन जाते हैं। तुम जहा चलते हो, वही तीर्थ हो जाता है।

तीर्थ जाने से कुछ भी न होगा। और जब हम कीमिया बताते हैं कि तुम्ही तीर्थ हो जाओ—और जबकि कीमिया सदा से जग-जाहिर है, कोई छिपा हुआ राज नही है—कि हम तुम्ही को मक्का और काशी और कैलाश बना देते हैं, तो फिर तुम क्यो बाहर भटकते हो ? लेकिन तीर्थ भी हमारे बाहर हैं। हमारा सब कुछ बाहर है, क्योकि हम बहिर्मुखी हैं। और जीवन का स्रोत भीतर है। और हमारी अन्तर्मुखता बिलकुल खो गई है।

अब हम कबीर का सूत्र समझने की कोशिश करे। सीधे-सादे शब्दो मे कबीर कहते हैं 'मो को कहा ढूढो बन्दे, मैं तो तेरे पास मे। ना मैं बकरी ना मैं भेडी, ना मैं छुरी गडास मे॥ नहिं खाल मे नहिं पोछ मे, ना हड्डी ना मास मे। ना मैं देवल ना मैं मस्जिद, ना काबे कैलास मे॥'

मनुष्य ने कितने-कितने उपाय किये हैं कि परमात्मा को बाहर खोज ले कभी मदिर की मूर्ति के सामने धूप जलाई है, दीये जलाये हैं, कभी मदिर की मूर्ति के सामने बलिदान दिये है—भेड, बकरी, आदमियो के भी, नरमेध यज्ञ भी आदमियो ने किये हैं। लेकिन बकरी को, भेड को या आदमी को काट डालने से कैसे तुम परमात्मा को पा लोगे ? बडे सस्ते मे पाने चले हो—एक बकरी काट दी, कि एक भेड काट दी किसको धोखा दे रहे हो ?

अपने को काटे बिना कोई कभी परमात्मा को नही पा सकता। लेकिन आदमी अपने को बचाता है और किसी दूसरे को चढाता है। बकरी के काटने से शायद बकरी पा ले, बाकी तुम कैसे पा लोगे ? और बकरी भी नही पा सकेगी, क्योंकि

उसने स्वयं को नहीं काटा है।

स्वय को बलिदान कर देना, स्वय को मिटा देना ही सूत्र है—स्वयं को पा लेने का। परमात्मा के साथ भी आदमी सौदा कर रहा है कि चलो एक बकरी चढा देते हैं; चलो रुपया चढ़ाये देते हैं।

आदमी ने आदमी को भी चढाया। फिर यह बात बेहूदी होती गई, तो आदमी ने प्रतीक खोज लिये। पहले आदमी खून चढाता था, अब वह सिंदूर लगाता है। वह खून का प्रतीक है। पहले आदमी सिर को चढाता था, अब नारियल चढाता है। नारियल आदमी की खोपडी जैसा है—दो आख भी दिखाई पडती हैं और दाढी-मूछ सब है। आदमी के सिर फोडे हैं आदमी ने, मदिर की मूर्ति के सामने, फिर वह जरा अमानवीय हो गया, तो प्रतीक खोज लिये हैं। लेकिन अपने को चढ़ाने से आदमी बचता रहा। ये सब तरकीबे हैं—अपने को चढाने से बचने की।

तुम जाते हो गगा कि स्नान करके पवित्र हो जाओगे। निश्चित, एक स्नान की जरूरत है, लेकिन वह भीतर की गगा का स्नान है। बाहर की गगा मे स्नान करने से शरीर की धूल-धवास झड जाये तुम कैसे शुद्ध हो जाओगे? पानी तुम्हे छुएगा भी नही, स्पर्श भी न होगा। अलग-अलग आयाम हैं। दोनो एक-दूसरे को छूते भी नही। लेकिन आदमी बचना चाहता है, अपने को बदलने से।

यह थोडा समझ ले। अपने को बदलने से बचना चाहता है और यह अहकार भी बचाये रखना चाहता है कि हम अपने को बदलने की कोशिश कर रहे हैं। इसी से सारा उपद्रव पैदा हुआ है। ठीक है, नही बदलना हो, मत बदलो—कोई हर्जा नही। लेकिन तब बेचैनी होती है कि हम बिना बदले जी रहे हैं, हम ऐसे ही क्षुद्र जीवन जी रहे हैं, हम यह कौडी-ककड मे लगे हैं, हम यह बाजार मे ही अपना जीवन गवा रहे हैं। यह भी अहकार को तृप्ति नही मालूम पडती। अहकार कहता है, 'इतना नही, कुछ और करो, कुछ बडा करके दिखाओ। यह सब तो यहीं पडा रह जाएगा, तो कुछ धर्म-पुण्य भी करो।' तो तुम समझौता कर लेते हो, क्योकि धर्म-पुण्य तो कठिन मामला है—उसमे तो तुम्हे पूरा जीवन बदलना पडेगा—तो तुम कहते हो कि कोई सस्ती तरकीब। तो तरकीब यह है कि तुम तीर्थ कर आओ। एक चार दिन की छुट्टी निकाल लो।

ध्यान रहे, धर्म को कोई ससार मे से छुट्टी निकालकर नही कर सकता। धर्म तो जब होता है, तब तुम्हारे चौबीस घटे धर्म मे बहने लगते हैं। धर्म कुछ ऐसा नही है कि पन्द्रह मिनट कर लिया और बाकी फिर पौने चौबीस घटे मजे से अधर्म किया। खड-खड नही हो सकता। धर्म तो सास की तरह है जब तक चौबीस

घटे न चले, तब तक उसका कोई सार नही है। तो तुम गए तीर्थ, दो दिन भजन-कीर्तन मे भी रस लिया, थोडा दान-पुण्य किया, फिर घर आकर उसी पुरानी दुनिया मे सलग्न हो गये—और जोर से, क्योकि वह चार दिन जो नुकसान हुआ है, वह भी पूरा तो करना ही पडेगा। तो अगर जेब एक काटते थे तो दो काटने लगे। और फिर अगले दफा फिर जाना है तीर्थ-यात्रा पर, तो उसके लिए भी तो पैसा इकट्ठा करना पडेगा। मदिर हो आते हो—ऐसा लगता है जैसे तुम परमात्मा पर कुछ एहसान कर रहे हो। क्योकि, मदिर से जब तुम लौटते हो तो बडे अकडकर लौटते हो—'फिर कर आये एहसान!' और कुछ विनम्र नही होते मदिर से, तीर्थ से लौटकर विनम्र नही होते। जो आदमी हज हो आता है, वह 'हाजी' हो जाता है! उसकी अकड देखो! यह तरकीब है, बिना धार्मिक हुए धार्मिक होने की। धर्म से भी बच गये, क्योकि वह तो महाक्रान्ति है। उससे बडी कोई क्रान्ति नही। वह तो अकेली क्रान्ति है, एकमात्र क्रान्ति है—जिसमे तुम्हारा सब कुछ बदल जाता है, सब कुछ नया हो जाता है, पुराना इस तरह मर जाता है कि पुराने से नये का कोई सबध ही नही होना—सातत्य ही टूट जाता है, शृखला ही बदल जाती है, जैसे पुराना आदमी बचा ही नही और एक नये आदमी का आविर्भाव हो जाता है। वह तो नया जन्म है।

लेकिन उतना महगा, उतना हिम्मत का काम, तुम नही कर पाते। तुम सोचते हो, थोडा सस्ते मे निपटा लो। असली फूल तुम नही उगा पाते, तुम कागज के फूल बाजार से खरीद लाते हो। और कागज के फूलो की एक खूबी है न तो पानी देना पडता, न उनकी चिन्ता करनी पडती है, क्योकि जानवर भी उन्हे नही खाते। वे तुम जैसे ना-समझ नही हैं कि कागज का फूल और जानवर खाये, कभी इस भूल मे नही पडेगा, सिर्फ आदमी ही ऐसी भूले करता है। और फिर कागज का फूल सुबह जन्मता है, साझ को मरता है—ऐसा भी नही, सनातन मालूम होता है—रखा है, रखा है, रखा है। एक दफा ले आये—सदा के लिए हो गया।

जीवन तो प्रतिपल नया करना होता है। जीवन पत्थरो की तरह नही है, फूलो की तरह है। और धार्मिक जीवन तो प्रतिपल नया उगता हुआ फूल है। धार्मिक जीवन तो प्रतिपल अतीत की मृत्यु है और वर्तमान का जन्म है। वहा तो हर चीज ताजी है। वह जरा कठिन मालूम पडता है, और इतना ज्यादा मालूम पडता है कि इतनी प्यास ही नही है। तो लोग कहते हैं कि फूल चाहिए, तो घर मे तुम कागज के फूल रख लेते हो। और अब तो प्लास्टिक के फूल उपलब्ध है। कागज के फूल मे भी खतरा था—कभी आग लग जाये, कभी यह हो जाये! अब प्लास्टिक

के फूल हैं तो और भी खतरा कम है, बड़ी सुरक्षा है।

ऐसे ही तुम एक झूठे भगवान का मदिर बनाकर घर में रख लेते हो, एक मूर्ति को निर्मित कर लेते हो। उससे तुम्हारा कुछ नही बिगड़ता, तुम जैसे हो, वैसे ही रहते हो। न केवल उतने, बल्कि उस मूर्ति से तुम जैसे हो, अपने को और मजबूत कर लेते हो, कि अब तुम धार्मिक भी हो गये!

तुम्हारा धर्म आत्मवचना है। पृथ्वी पर जो इतने मंदिर-मस्जिद दिखाई पड़ते हैं, वे तुम्हारे धोखे का विस्तार हैं। जिस दिन तुम्हे यह दिखाई पड़ेगा, उस दिन तुम्हारी आख भीतर लौटनी शुरू होगी। उस दिन तुम असली मदिर खोजोगे। वह मदिर तुम हो। इसलिए कबीर कहते है

'मो को कहा ढूढो बन्दे, मैं तो तेरे पास मे। ना मैं बकरी ना मैं भेड़ी, ना मैं छुरी गडास मे।। नहि खाल मे नहि पोछ मे, ना हड्डी ना मास मे, ना मैं देवल ना मैं मस्जिद, ना काबे कैलास मे।।—न तो मैं देवल मे हू न मस्जिद मे हू, न काबे मे हू, न कैलाश मे हू।' परमात्मा तुम्हारे भीतर है। तुम परमात्मा हो। तुम्हारा होना ही परमात्मा का होना है। तुम परमात्मा का एक रूप हो। तुम परमात्मा की एक लहर, एक तरग हो। तुम परमात्मा की एक भाव-दशा हो। तुम परमात्मा का एक सगठन हो। तुम एक इकाई हो। वह होगा सूरज तो तुम एक छोटे दीये हो, लेकिन आग वही है। वह होगा विराट, वह होगा महासागर, तुम एक बूद हो, लेकिन एक बूद मे पूरा सागर छिपा है। और एक बूद को कोई पूरा जान ले, तो पूरे सागर को जान लिया, कुछ और जानने को बचता नही है। क्योंकि एक बूद मे सब सूक्ष्म रूप से पूरा सागर मौजूद है। पिण्ड मे ब्रह्माण्ड मौजूद है। आत्मा मे परमात्मा मौजूद है। व्यक्ति मे समष्टि मौजूद है।

'ना तो कौनो क्रिया कर्म मे, नहि जोग बैराग मे। खोजी होय तो तुरतै मिलिहौ, पल भर की तालास मे।।'

'ना तो कौनो क्रिया कर्म मे।' होना है परमात्मा का स्वभाव, क्रिया-कर्म तो ऊपर-ऊपर है। तुम मदिर मे बैठकर पूजा कर रहे हो, घटी बजा रहे हो, घटी बजती रहेगी, तुम दीया लेकर आरती उतार रहे हो, आरती उतर जाएगी—लेकिन इससे तुम्हारे होने मे क्या फर्क पड़नेवाला है? तुम तो तुम ही रहोगे। और क्रिया से परमात्मा का क्या सबध है? तुम सारी क्रियाए छोड़ दो, तो भी तो तुम्हारे भीतर जीवन रहेगा। तुम बिलकुल आख बन्द करके पड़ जाओ, कुछ भी न करो, तो भी तो तुम हो।

तो क्रिया तो गौण है, बाहर है, होना भीतर है, मूल है। होकर ही कोई पर-

मात्मा को पाता है। कर-करके कुछ भी नही कोई पा सकता। क्रिया से होना बडा है। क्योकि सब क्रियाए होने से निकलती हैं। और सब क्रियाओ को भी जोड दो तो भी सब क्रियाओ के जोड से होना नही पूरा होता, होना फिर भी बडा है। तुमने जो भी किया है अब तक, सब भी जोड दिया जाये तो भी तुम उससे बडे हो, क्योकि तुम कुछ और कर सकते हो। तुम प्रतिपल कुछ और करते रहोगे। करना तो पत्तो की तरह है–निकलते चले जाते है। होना जड की तरह है। जड को ही खोजो। पत्ते-पत्ते बहुत खोजा, बहुत भटके। पत्ते अनन्त हैं–और भटकते रहोगे। जड को पकड लो। व्यक्तित्व की जड कहा है?–कर्म मे नही, क्रिया मे नही, सिर्फ होने मात्र मे।

विचार भी क्रिया है। हाथ से कुछ करो, वह भी क्रिया है, मन से कुछ करो, वह भी क्रिया है। जब सब क्रिया शात हो जाती है–न हाथ कुछ करते हैं, न मन कुछ करता है, जब तुम बस हो, सब ठहर गया, कोई गति नही है, कोई तरग नही–अचानक, अचानक सब मौजूद हो जाता है जिसकी तुम तलाश कर रहे थे, आनन्द और प्रेम और परमात्मा सब बरस जाता है!

'ना तो कौनो क्रिया कर्म मे, नही जोग बैराग मे।' कबीर ठीक झेन फकीरो जैसे हैं। कबीर कहते है, कुछ भी करने की जरूरत नही है कि तुम योग करो, कि तुम आसन लगाओ, कि तुम शीर्षासन करो, कि तुम हजार तरह के क्रियाकाण्ड मे उलझो–कुछ भी करने की जरूरत नही है। क्योकि, जिसे तुम खोज रहे हो, वह सब करने से पहले तुम्हारे भीतर मौजूद है। यह फर्क ठीक से समझ लेना, जैसा है, क्योकि बहुत नाजुक है। होना–'बीइग', और करना–'डुइग' यह फर्क बहुत नाजुक है।

ऐसा समझो कि तुम किसी के प्रति प्रेम मे हो, तो तुम कुछ करते हो। तुम्हारा प्रेमी मिलता है तो गले लगा लेते हो। तुम्हारा प्रेमी आनेवाला होता है तो द्वार पर टकटकी लगाकर बैठ जाते हो। तुम्हारा प्रेमी आनेवाला होता है, तो किसी दूसरे की पगध्वनि भी भ्रान्ति देती है कि शायद प्रेमी आ गया, उठकर द्वार पर आ जाते हो। प्रेमी आनेवाला है तो भोजन तैयार करते हो। प्रेमी आनेवाला है तो भेट तैयार करते हो। बहुत कुछ करते हो। लेकिन प्रेम क्या कुछ करना है? करने के पहले प्रेम है। प्रेम एक भाव-दशा है। कुछ भी न करो तो क्या प्रेम मिट जायेगा? क्या करने का जोड ही प्रेम है? तो प्रेम है ही नही। करने से तो प्रेम की अभिव्यक्ति हो रही है। लेकिन जिसकी अभिव्यक्ति हो रही है, वह तो करने के पहले मौजूद है, तभी अभिव्यक्ति हो सकती है।

ऐसा हुआ, एक बहुत महत्त्वपूर्ण व्यक्ति हुआ—लारेंस। वह था तो अंग्रेज, लेकिन जिंदगीभर रहा अरबो के साथ, रेगिस्तान मे। उसे रेगिस्तान की जिंदगी पसन्द थी। और रेगिस्तान मे लोग उसे बिलकुल अपना मानने लगे। पेरिस मे एक बडी प्रदर्शनी थी, और अरबो के एक दल को लेकर वह पेरिस प्रदर्शनी दिखाने ले गया। कोई बारह अरब उसके साथ गये। वे पहली दफा रेगिस्तान के बाहर निकले थे। एक बडी शानदार होटल में उसने उन्हे ठहराया। उसकी बडी प्रतिष्ठा थी—उस व्यक्ति की। लेकिन वह बड़ा चकित हुआ कि वे जो अरब थे, किसी चीज मे रस न ले। न तो वे प्रदर्शनी में रस लें, बस जल्दी-जल्दी वापस होटल चलना है। और जैसे होटल पहुचे, वे फौरन बाथरूम मे घुस जाये। वह बडा हैरान हुआ कि मामला क्या है? उनको सबसे चमत्कारी जो चीज लगे, वह लगे नल। रेगिस्तान मे रहनेवाले लोग, पानी के लिए तडफे—बस वे जल्दी से टोटी खोलकर या तो शॉवर के नीचे खडे हो जाये या पानी देखे। उनको देखने मे ही उनको बहुत रस आये। बडी-बडी चीजे थी प्रदर्शनी मे—सारी दुनिया की प्रदर्शनी थी—मगर उन्हे किसी चीज मे रस न था, उन्हे केवल नल की टोटी मे रस था। फिर जिस दिन वे जाने को थे, कार आकर खडी हो गई, सामान लद गया और अरब नदारद। ट्रेन चूकने की नौबत आ गई। तो वह भागा हुआ ऊपर आया कि भाई क्या कर रहे हो? वे सब टोटिया खोल रहे थे—साथ ले जाने को। उसने उन्हें समझाया कि "नासमझो, टोंटियो से कुछ न होगा। टोटी तो तुम ले जाओगे, लेकिन भीतर जल का स्रोत चाहिए। टोटी से जल नही आ रहा है, टोटी से सिर्फ निकल रहा है, आ तो बहुत भीतर से रहा है।"

तुम्हारे सारे कृत्य, प्रेम मे जो करते हो, टोटियो जैसे हैं। तुम किसी को गले लगा लेते हो—वह टोटी है, उससे जल गिरेगा, लेकिन भीतर जल चाहिए, तो ही गिरेगा। भीतर न हो, तो तुम गले से लगा लोगे—हड्डिया मिल जाएगी, चमडी चमडी को छुएगी, लेकिन प्रेम का कोई आदान-प्रदान न होगा, प्रेम की लपट एक हृदय से दूसरे हृदय मे न जाएगी। टोटी तुम खोलकर बैठे रहोगे, जल की एक बूद न टपकेगी।

होना पहले है, करना अभिव्यक्ति है। तो किसी क्रियाकाण्ड से कोई परमात्मा को नही पा सकता, लेकिन कोई परमात्मा को पा ले, तो उसके जीवन के हर कृत्य से वह प्रगट होने लगता है। उसके उठने-बैठने मे भी परमात्मा की अभिव्यक्ति होती है। उसकी आख का एक इशारा परमात्मा का इशारा हो जाता है। फिर वह जो भी करता है, वह सभी पूजा है।

कबीर ने कहा है, 'जो-जो करू सो पूजा।' क्योंकि कबीर न कभी मन्दिर गये, न मस्जिद, कपडा ही बुनते रहे। जुलाहे थे तो काम जारी रखा। लोग कहते भी गए, 'बद कर दो, क्यो कपडा बुनते हो?' वे कहते, 'जो-जो करू सो पूजा। और जिसके लिए कर रहा हू, वह परमात्मा है। झीनी झीनी बीनी रे चदरिया! वह भी परमात्मा के लिए ही बुन रहा हू।' बाजार जाते तो जो भी ग्राहक खरीदता, उसको वे राम ही कहते कि 'राम, सम्हालकर रखना, बहुत प्यार से बुनी है। बडी प्रार्थना से बुनी है। एक-एक धागे मे प्रार्थना है। ऐसे ही नही बुन दी है, राम के लिए बुनी है।' पता नही ग्राहक समझ भी पाते या नही, या इस आदमी को पागल समझते। लेकिन कबीर कहते है, जो भी मैं करता हू, वह अब सभी पूजा है, जो-जो करता हू, सभी परिक्रमा है।

कृत्य से कोई परमात्मा को नही पाता, परमात्मा को पा ले तो सभी कृत्य धार्मिक हो जाते हैं-सभी! छोटे-छोटे कृत्य प्यास लगी है, पानी पीना—वह भी धार्मिक हो जाता है, क्योकि प्यास भी उसी को लगी है, पानी भी उसी का है। पानी का मिलन प्यास से, परमात्मा का सृष्टि से मिलन है, सृष्टि का स्रष्टा से मिलन है, जैसे कवि का कविता से, जैसे मूर्तिकार का अपनी ही मूर्ति से मिलन हो जाये, जैसे गीतकार को अपना ही गीत वापस लौट आये और मिल जाये। जब प्यास लगती है, तो भीतर स्रष्टा को प्यास लगी है—उसका ही पानी है, उसकी ही सृष्टि है। गीतकार पर गीत वापस लौट आया—वर्तुल पूरा हो गया, सृष्टि स्रष्टा मे लीन हो गई। पानी पीने की छोटी-सी घटना में भी सृष्टि स्रष्टा मे लीन हो रही है।

'जो जो करू सो पूजा!' तब भोजन करो तो भी पूजा है। तब कबीर अलग से भोग नही लगाते परमात्मा को, तब कबीर जो भोजन करते हैं, वही परमात्मा को लगाया गया भोग है, क्योकि भीतर परमात्मा बैठा है।

'ना तो कौना क्रिया कर्म मे, नही जोग बैराग मे। खोजी होय तो तुरतै मिलिहौ, पल भर की तालास मे॥'

और जब जो भीतर ही बैठा है, जो तुम्हारा होना है, जिसका किसी क्रिया से कुछ लेना देना नही, जिससे सब क्रियाए निकलती हैं, जो सभी का मूल है—उसको क्या तुम आसन लगाकर पाओगे? उसे तो लेटकर भी पाया जा सकता है। लेटने मे भी वही मौजूद है। उसे तुम सिर के बल खडे होकर पाओगे? उसे तो पैर के बल खडे होकर बडे मजे से पाया जा सकता है, क्योंकि वह तब भी मौजूद है। उसे तुम उपवास करके पाओगे? उसे तुम शरीर को सताकर पाओगे, धूप मे बैठ-

कर पाओगे? क्योंकि छाया भी उसी की है। सभी कुछ उसका है। इसलिए कुछ भी करने की शर्त नही है। शर्त है तो होने की है कि तुम हो जाओ, कि तुम इतने भरपूर हो जाओ कि तुम्हारे प्रत्येक कृत्य से वही बहने लगे।

और कबीर एक बडा अनूठा वचन कह रहे हैं वह जो झेन फकीर कहते हैं—सडन एनलाइटनमेन्ट—समाधि इसी पल हो सकती है। एक पल तक भी रुकने की कोई जरूरत नही है, स्थगित करने की कोई जरूरत नही। क्योंकि समाधि कोई सरकारी दफ्तर नही है कि कल, कल, कल, और फिर कभी नही होता। समाधि कोई रेड टेप नही है कि उसके लिए कोई बडे दफ्तरो मे प्रार्थना करनी पडती है, फिर वहा से सैक्शन मिले, फिर रिश्वत खिलाओ, फिर लाइसेन्स निकालो—तब तुम्हारी समाधि होगी। समाधि तुम्हारा निर्णय है, उसमें दूसरा है ही नही जिससे पूछना हो। अगर दूसरे से पूछना हो, तो फिर थोडी देर लग सकती है। अगर दूसरे का सहारा लेना हो, फिर पता नही कब वह दूसरा सहारा देगा और कब घटना घटेगी। अगर दूसरे पर थोडी भी निर्भरता हो तो समय लगेगा, क्योंकि दूसरे का क्या भरोसा, दे न दे! लेकिन समाधि तुम्हारा शुद्ध निर्णय है। समाधि एकमात्र घटना है इस जगत मे, जो तुम्हारे अकेले होने से घट सकती है, जिसके लिए दूसरे की जरूरत नही है। सभी घटनाओ मे दूसरे की जरूरत है। प्रेम तक के लिए दूसरे की जरूरत है। दूसरा न हो तो प्रेम कैसे घटे? इसलिए प्रेम भी निर्भर है, मोहताज है। अकेली समाधि एकमात्र घटना है जो मोहताज नही है, जो भिखारी नही है। अकेली समाधि सम्राट है। तुम जिस क्षण चाहो, तुम ही न चाहो—तुम्हारी मर्जी। तुम कई बार सोचते हो कि तुम चाहते हो और घटती नही है, तुम गलत सोचते हो। तुम चाहते नही; नही तो घटेगी ही। वह नियम है। उस नियम मे कोई रूपान्तरण नही हुआ है। कभी नही होगा।

मुझसे कई बार लोग आकर कहते हैं कि आप कहते है, चाहने से घट जायेगी, चाहते तो हम भी हैं। लेकिन उनकी चाह मैं देख रहा हू कि बिलकुल कुनकुनी है। चाह का मतलब हडरड डिग्री, सौ डिग्री पर होनी चाहिए, तभी पानी उबलता और भाप बनता है। भाप बनाने की इच्छा है, बडा तबेला रखे बैठे हैं मन का और एक अगारा लगा रखा है नीचे—उससे होता ही नही।

ऐसा हुआ कि एक सम्राट ने एक फकीर को, उसकी यह बात सुनकर—फकीर ने कहा कि परमात्मा मेरी सब जगह रक्षा करता है, हर हालत मे मेरी रक्षा करता है, मुझे किसी और चीज की रक्षा की जरूरत नही है, वह काफी है—सम्राट ने कहा, 'ठीक!' सर्द रात थी, बर्फ पडती थी। उस फकीर को महल के पास की नदी

में नग्न खडा करवा दिया गले-गले पानी मे, और कहा, 'देखें, तेरा परमात्मा कैसे बचाता है!' सुबह फकीर ताजा था, बिलकुल ठीक-ठीक था—गुनगुनाता गीत—जैसी उसकी आदत थी। वह महल आया। सम्राट देखकर भरोसा न कर सका। इतनी सर्द रात थी कि मर ही जाता, जम ही जाता खून। क्या मामला है? उसने कहा, 'तो तुम बच गए? तुमने कोई सहारा तो नही लिया?' सैनिक ने कहा—जो इसे लेकर आया था—कि 'सहारा लिया है, मैंने रात देखा था। महल के ऊपर जो दीया जलता है, उसको वह देख रहा था। उसी से, मालूम होता है, इसको गर्मी मिली है। कहा महल का दीया, दो फर्लांग के फासले पर नदी, बर्फ पडती रात! मगर सम्राट ने कहा कि 'यह तो तुमने धोखा दिया। परमात्मा पर्याप्त नही है।'

फकीर कुछ बोला नही। वह लौट गया। कुछ दिनो बाद फकीर ने दावत दी सम्राट को। उसके दरबारियो को, सभी को बुलाया। बडी दावत दी। करीब-करीब नगर को निमन्त्रित कर लिया। सब लोग पहुचे। फकीर की दावत थी। सम्राट भी आया। बैठे लोग। फकीर अन्दर जाये बार-बार, फिर बाहर आ जाये। पूछा कि बडी देर हुई जा रही है, बात क्या है? उसने कहा कि भोजन पक जाये, तो मैं खबर दू। फिर देर बहुत होने लगी, भूख भी बढने लगी। और फकीर फिर इधर-उधर की बातें करे। आखिर सम्राट ने कहा कि 'मामला क्या है? मैं अदर चलकर देखना चाहता हू। दोपहर भी हो गई, अब साझ भी करीब आई जाती है। यह क्या भूखे मार डालोगे?' अन्दर जाकर देखा तो वहा कुछ भी न था, खाली चूल्हे पर एक बडा तबेला रखा था। मीठे चावल उसमे भरे हुए थे। आग तो वहा थी ही नही। उसने कहा, 'तू यह कर क्या रहा है?' उसने कहा, 'आपके महल का दीया! हम उसी आग पर तपा रहे हैं, जिस आग से हम उस रात बच गये थे। कभी-न-कभी जरूर भोजन पक जायेगा।'

मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते है कि चाह तो है। लेकिन जब वे कहते हैं चाह तो है, तब भी मैं देखता हू कि वे डर रहे है कि कही ऐसा न हो कि समाधि लग ही जाये। चाह तो है, उसमे भी पैर पीछे खीचते हुए मैं उनको देखता हू। वे मेरी तरफ ऐसा देखते हैं, 'ऐसा नही कि आप पक्का ही मान ले। मतलब है, थोडी जिज्ञासा है। जानने का थोडा खयाल है।'

चाह जब पूरी होती है, जब चाह समग्र होती है, जब तुम्हारे प्राण मे सिर्फ चाह ही चाह होती है; जब तुम्हारे रोए-रोए से एक ही पुकार उठती है परमात्मा को पाने की—तब कबीर ठीक कहते हैं 'खोजी होय तो तुरतै मिलही।' जितनी गहन चाह है, उतनी ही परमात्मा और तुम्हारे बीच की दूरी कम हो जाती है।

अगर चाह परिपूर्ण है तो दूरी समाप्त हो गई। चाह का ही सवाल है।

श्री अरविंद ने उस तरह की चाह के लिए एक नये शब्द का प्रयोग किया है, वह ठीक है। इसे वे कहते हैं 'अभीप्सा। आकांक्षा नहीं, अभिलाषा नहीं—अभीप्सा। अभीप्सा शब्द मे बल है। उसका अर्थ है ऐसी चाह कि पूरा जीवन दांव पर लगा है कि कुछ बचाने का सवाल नहीं है, संदेह रत्तीभर नही है—तब उसी पल घट जाती है घटना।

देर लग रही है, क्योंकि देर तुम लगा रहे हो। देर लग रही है, क्योंकि तुम चाहते हो कि देर लगे। अभी कही-कही ससार मे रस बाकी है। सोचते हो, एक दिन और गुजर जाये, समाधि न लगे, कि यह सौदा किया है, यह निपट जाये, कि यह जो नया-नया प्रेम हो गया है किसी स्त्री से, इससे तृप्ति हो जाये—जरा और देर समाधि न लगे।

देखना अपने मन मे गौर से तुम इसी क्षण समाधि चाहते हो? कुछ राग-रग बचा नही है? सब तरफ से तुम भर गये हो ससार से? कोई और चाह नहीं बची?

जब सभी चाहे—जैसे सभी नदिया सागर मे गिर जाती हैं—जब सभी चाहे एक चाह मे गिर जाती हैं, उसी क्षण, उसी क्षण परमात्मा मिला ही हुआ था, बस तुम जाग जाते हो, नींद टूट जाती है, सपना मिट जाता है। सपने तक से जागने में आदमी डरता है, अगर सपना अच्छा चल रहा हो। और बुरा भी चल रहा हो तो आशा तो बनी रहती है कि आज बुरा चल रहा है, आज जरा धधा ठीक नही चल रहा है, कल चलेगा, कौन जाने कल सब ठीक हो जाये!

मुल्ला नसरुद्दीन ने एक रात सपना देखा। सपने मे देखा कि कोई एक देवदूत कह रहा है कि निन्यानवे रुपये ले लो। मुल्ला ने कहा, "निन्यानवे? सौ लूगा। और जब लेने ही है तो निन्यानवे क्यो? क्यो मुझे चक्कर मे निन्यानवे के डालते हो? सौ ही दे दो।" लेकिन उसने इतने जोर से कहा कि सौ ही दे दो, कि खुद के मुह से आवाज निकल गई और नीद टूट गई। नीद टूट गई तो उसकी आख खुल गई। उसने पत्नी से कहा कि बडी मुसीबत हो गई। फिर उसने आख बद की, और कहा, 'भाई, कोई हर्जा नही, निन्यानवे ही दे दो।' मगर अब वहा कोई है नही। अठानवे, सतानवे—वह उतरता आया और उसने कहा, "अच्छा, एक ही दे दो, जिसके लिए जिद खडी हो गई थी। तुम निन्यानवे कह रहे थे, हम सौ कह रहे थे। अब हम एक पर भी राजी हैं।"

मगर अब सपना नही है वहा।

आदमी सपने में भी, सुखद सपना चल रहा हो तो चलाये रखना चाहता है,

दुखद चल रहा हो तो सोचता है कि आज दुख है, कल सब ठीक हो जाएगा। सुख हो तो पकड़ने का मन होता है, दुख हो तो कल की आशा बांधे मन अटके रहता है।

समाधि का अर्थ है कि न तो अब सुख की कोई चाह रही, न कोई सुख की आशा रही। ससार जैसा था वैसा देख लिया—आर-पार, व्यर्थ पाया, स्वप्न पाया, अब तो जागने की ही एकमात्र इच्छा रह गई। सभी इच्छाए जो ससार में नियोजित थी, अब एक ही चाह मे आ गिरी कि जाग जाऊ। फिर तुम्हे कोई रोक न सकेगा। कोई रोकने को नही है। तुम्हारी चाह मे ही तुम बटे हो। तुम्हारी शक्ति इधर लगी उधर लगी, हजारो तरफ लगी है। वह सारी शक्ति एक ही चाह में गिर जाये, अभीप्सा बन जाये—'खोजी होय तो तुरतै मिलिहौ'—वही मतलब है कबीर का।

खोजी कौन है?—परमात्मा की चाह जिसकी अभीप्सा हो गई है, जो सब दाव पर लगाने को राजी है, जो कुछ भी बचाना न चाहेगा। 'खोजी होय तो तुरतै मिलिहौं'—और तब तुरन्त एक पल भी न जाएगा—'पल भर की तालास मे।'

'मैं तो रहौ सहर के बाहर, मेरी पुरी मवास मे।' कबीर कह रहे हैं कि परमात्मा ससार में नही रह रहा है, शहर के बाहर है। शहर यानी ससार—वह जो चारो तरफ फैला है। परमात्मा वहा नही रह रहा है। मेरा रहना तो भीतर के गढ़ मे है। मैं तो वहा हू। सब तरफ ससार है, सिर्फ भीतर ससार नही है, वहा मोक्ष है।

लोग पूछते हैं, मोक्ष कहा है? और मदिरो मे नक्शे भी टगे है कि ऐसा-ऐसा-ऐसा जाओ। फिर यहा ये-ये सीढ़िया पड़ेगी और ये-ये द्वार मिलेगे। और नीचे नर्क है और ऊपर स्वग है और उसके ऊपर मोक्ष है।

मोक्ष भीतर है। खोजनेवाले मे छिपा है वह जिसकी खोज चल रही है। पूछनेवाले मे छिपा है वह, जिसको तुम पूछ रहे हो।

'मैं तो रहौ सहर के बाहर, मेरी पुरी मवास मे।' मवास का अर्थ होता है भीतर का दुर्गम गढ़।

'कहै कबीर सुनो भाई साधो, सब सासो की सास मे।'

'सब सासो की सास।' कहा है सब सासो की सास?

तुम सास से नही जी रहे हो, क्योकि तुम चाहो तो एक क्षण को सास रोक दे सकते हो। जब सास नही होती, बद है, तब भी तुम हो। तुम्हारा होना बिना सास के भी हो सकता है। फिर अगर तुम इसका अभ्यास करो तो दस मिनट के लिए रोक सकते हो, दस दिन के लिए रोक सकते हो। लोगो ने सालो तक के लिए सास रोक दी है। अब तो वैज्ञानिक भी इससे राजी हो गये हैं कि सास जीवन का

लक्षण नही है, सिर्फ जीवन की अभिव्यक्ति है। योगियों ने तो वैज्ञानिको को बडे सकट मे डाल दिया, क्योकि उनकी परिभाषा थी सास बद हो गई—आदमी मर गया, सास की जाच-पडताल कर लो—आदमी मर गया। लेकिन पश्चिम में, पूरब में अनेक योगियो ने प्रयोग करके दिखाये, जहा कि वे दस मिनट के लिए सास बद कर लेते, बिलकुल बद कर लेते। डॉक्टर जाच करके कह देता है कि हमारे हिसाब से तो यह आदमी मर गया है, और दस मिनट बाद वह आदमी फिर सास लेने लगता है।

जीवन सास से भी गहरा है। सास से तो शरीर चल रहा है, जीवन नही।

'सब सासो की सास मे'—उसका मतलब है कि सब सासो के भीतर भी जो छिपा है जीवन, वहा मैं हू। वही जीवन सब सासो की सास है। श्वास शरीर का जीवन है। शरीर टूट जायेगा श्वास के बिना, लेकिन उसको भी बचाये रखने के उपाय है।

रणजीत सिंह ने एक सन्यासी को—नाम था हरिदास—एक वर्ष के लिए जमीन के अदर सुला दिया। एक वर्ष के बाद वह आदमी वापस खोल लिया गया। शरीर पीला पड गया था, शरीर दुर्बल हो गया था, लेकिन वह पूरी तरह जीवित था।

इजिप्त मे १८८० मे, एक फकीर को जमीन मे दफनाया गया—जिन्दा। और उसने कहा, चालीस साल बाद मुझे निकालना। जिन्होंने दफनाया था, वे सब मर गये। चालीस साल! एक आदमी न बचा गवाह, जो मौजूद था दफनाते वक्त। लोग धीरे-धीरे भूल ही गये। चालीस साल इतना लम्बा वक्त है! सयोग की बात थी कि एक आदमी को लायब्रेरी मे पढ़ते-पढते एक पुरानी किताब मिल गई, और उसमे इसका उल्लेख था। तो उसने इन्तजाम करवाया। १९२० में वह कब्र खोदी गई, वह आदमी जिन्दा बाहर आया, और तीन साल तक जिन्दा रहा, बाद मे भी।

श्वास शरीर का हिस्सा है। कबीर कहते हैं, 'सब सासो की सास मे!' और परमात्मा को अगर खोजना है, तो तुम्हे वहा खोजना होगा, जहा श्वास भी निस्पद हो जाती है, विचार भी बन्द हो जाते हैं, श्वास भी निस्पन्द हो जाती है। सब गति शून्य हो जाती है, क्रिया लीन हो जाती है, सिर्फ होना मात्र बचता है, सिर्फ तुम होते हो शुद्ध—एक शात झील की भाति, जिस पर एक भी लहर नही, एक शुद्ध दर्पण की भाति, जिस पर एक भी प्रतिबिम्ब नही, एक गहन सन्नाटा, जिसमे सन्नाटे की भी आवाज नही—वहा सब सासो की सास मे छिपा है।

जिस दिन अभीप्सा होगी, उसी दिन द्वार खुल जाएगे। जिस दिन तुम पुकारोगे पूरे प्राण से, उसी दिन द्वार खुल जाएगे।

जीसस ने कहा है, 'खटखटाओ—और द्वार खुल जाएंगे। पुकारो, आवाज दो—प्रत्युत्तर मिलेगा।' लेकिन तुम पुकारते नहीं, न तुम द्वार खटखटाते हो। तुम बातचीत करते हो। तुम पूछते हो, कैसे खटखटायें? तुम पूछते हो, कैसे पुकारें?

जब बच्चे को भूख लगती है, वह पूछता है किसी से, कैसे पुकारे? किसी बच्चे ने किसी से पूछा? बडी हैरानी की बात है। बच्चा पैदा ही होता है, भूख लगती और आवाज देता है, रोता-चिल्लाता है। यह बच्चा कहा सीखा होगा? इसको सीखने की कोई भी तो सुविधा नही थी गर्भ मे। ये गर्भ से सीधे चले आ रहे हैं और भूख लगी और पुकार देते हैं।

तुम जिस परमात्मा के गर्भ से आये हो, वही से तुम पुकार सीखकर आये हो। जिस दिन तुम्हारी अभीप्सा होगी, उसी दिन पुकार उठ जाएगी। एक गहन आवाज तुम्हारे भीतर से उठेगी। उस गहन आवाज मे कोई भाषा न होगी। क्योकि भाषा तो सब सीखी हुई है। उस गहन आवाज का तुम एक ही अनुमान कर सकते हो, बच्चे के रुदन से, जब वह भूखा है। तब तुम रो उठोगे। तुम्हारा रोआ-रोआ उस रोने मे सम्मिलित हो जाएगा। तब तुम कुछ कहोगे नही, तुम्हारा पूरा रोना ही तुम्हारा कहना होगा।

सूफी फकीर कहते हैं कि मत पूछो, प्रार्थना कैसे करे? क्योकि अगर किसी ने बता दिया तो तुम सदा के लिए भटक जाओगे। मत पूछो कि प्रार्थना कैसी करे?

वे कहते है कि एक भिखारी एक सम्राट के द्वार पर खडा था। सम्राट ने उसे देखा और लाकर धन-सम्पत्ति से उसकी झोली भर दी। उसने कुछ कहा नही। और देखनेवाले चकित हुए। उन्होंने उस भिखारी को, जब सम्राट वापस चला गया भीतर महल के, पूछा। उसने कहा, "कहने को क्या है? मेरा पूरा होना ही कह रहा है। देखो मेरे फटे-चीथडे। मेरी दीन आखे, मेरी दुर्बल देह, मेरे चेहरे पर लिखी हुई असफलता की कथा! अब और कहने को क्या है? मैं सिर्फ खडा हो गया वहा। सम्राट ने मुझे देखा। बात खत्म हो गई। कहने को क्या है? और अगर सम्राट अधा हो, और देख न सके तो कहने से भी क्या होगा?"

परमात्मा के द्वार पर तुम्हे कुछ गायत्री-मत्र थोडे ही बोलना है, कि अल्लाह-हू अकबर की आवाज लगानी है। तुम्हारी सीखी कोई प्रार्थना की वहा जरूरत नही है, तुम ही वहा प्रार्थना बनकर खडे हो जाओ। तुम्हारा होना ही तुम्हारी प्रार्थना हो। तुम्हारा रोआ-रोआ प्यासा हो। तुम्हारी धडकन-धडकन मे चाह हो—ऐसी चाहत कि शब्द भी छोटे पड जाये। तुम एक लपट की तरह जिस दिन खडे हो जाओगे, उसी क्षण

'खोजी होय तो तुरतै मिलिहौं, पल भर की तालास में।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, सब सांसों की सांस में॥'
'कस्तूरी कुंडल बसै!'

* * *

मन रे जागत रहिये भाई

सातवां प्रवचन

दिनांक १७ मार्च, १९७५; प्रातःकाल; श्री रजनीश आश्रम, पूना

मेरा तेरा मनुआ कैसे इक होइ रे ।
मैं कहता हौं आंखन देखी, तू कागद की लेखी रे ।।

मैं कहता सुरझावनहारी, तू राख्यो अरुझाई रे ।
मैं कहता तू जागत रहियो, तू रहता है सोई रे ।।

मैं कहता निरमोही रहियो, तू जाता है मोहि रे ।
जुगन जुगन समुझावत हारा, कहा न मानत कोई रे ।।

तू तो रंडी फिरै बिहंडी, सब धन डार्‌या खोई रे ।
सतगुरु धारा निरमल बाहै, वामें काया धोई रे ।।

कहत कबीर सुनो भाई साधो, तब ही वैसा होई रे ।।

ज्ञान की यात्रा मे श्रद्धा के चरण चाहिए। अश्रद्धा तो जंजीरों की तरह है बाध लेती है, रोक लेती है। श्रद्धा पख की भाति है मुक्त करती है खुले आकाश मे।

लेकिन श्रद्धा बडी कठिन घटना है। अश्रद्धा मन के लिए बडी सुगम और सरल है, क्योकि अश्रद्धा भय है, श्रद्धा अभय है।

अश्रद्धा का अर्थ है कि जो मुझे ज्ञात है, बस उतना ही सत्य है, कही और जाने की जरूरत नही, जो मैने जान लिया वह काफी है, कुछ और जानने की न तो जरूरत है, न कुछ और जानने को है। इसलिए अश्रद्धा ज्ञात से चिपकने का नाम है, ज्ञात को जकड लेने का नाम है।

श्रद्धा अज्ञात मे यात्रा है जो मैं जानता हू, वह बहुत ना-कुछ है। जैसे विराट सागर के किनारे, और मैंने चुल्लूभर पानी अपने हाथ मे ले लिया हो, ऐसा है मेरा जानना, और जो शेष है जानने को वह विराट सागर है।

जो जान लिया है, श्रद्धावान उसे सीढी बनाता है--उसमे उठ जाने की, जो नहीं जाना है। अश्रद्धावान, जो जान लिया है उसे कारागृह बना लेता है, दीवाल बना लेता है--अवरोध के लिए ताकि वह जो खुला आकाश है अज्ञात का, उससे सुरक्षा हो सके।

साधारणत अश्रद्धालु समझते हैं कि वे बहुत शक्तिशाली, साहसी हैं। बात बिल-कुल उलटी है। अश्रद्धा कायरता का निचोड है, श्रद्धा साहस का नवनीत। क्योकि श्रद्धा का अर्थ है कि मैं अज्ञात मे, अनजान मे, बे-पहचाने मे कदम उठाने को राजी हू। बडा साहस चाहिए। और शिष्य होने का कोई और अर्थ नही होता है। श्रद्धा मे गति बढे, श्रद्धा मे रस बढ़े, तो ही शिष्यत्व का फूल खिलता है, अन्यथा गुरु और शिष्य के बीच सेतु क्या होगा ?

गुरु ऐसे है जैसे आखे मिल गई, और शिष्य ऐसे है जैसे अधा। अधे और आख-वाले के बीच विवाद क्या हो सकता है ? क्योकि जिसके पास आखें हैं, उसे प्रकाश के किसी और प्रमाण की जरूरत नही। प्रमाण है भी नही कोई और। क्या प्रमाण

है प्रकाश का, सिवाय तुम्हारी आखो के ? जिसके पास आखे हैं, उसके लिए प्रकाश स्वयसिद्ध है। और जिसके पास आखें नही हैं, उसके लिए प्रकाश का अनुभव भी असम्भव है। जानना तो दूर, अनुमान करना भी कि प्रकाश जैसी कोई चीज हो सकती है, अधे के लिए असम्भव है। प्रकाश भी दूर, अधे को अधेरा भी दिखाई नही पडता। तुम शायद सोचते हो कि अधा तो अधेरे मे जीता है, तो तुम गलती मे हो। अधेरे को देखने के लिए भी आख चाहिए। प्रकाश को देखने के लिए तो आख चाहिए ही, अधेरा भी आख का ही अनुभव है। बिना आख के अधेरे का भी कोई पता नही चल सकता। अधे को अधेरे का भी पता नही है, और प्रकाश के प्रमाण मागेगा, प्रकाश के लिए तर्क करेगा, तो सदा अपने अधेपन से बधा रह जाएगा।

और, प्रकाश को जिसने जान लिया, वह प्रकाश का वर्णन भी नही कर सकता, प्रमाण देना तो बहुत दूर है। वह यह भी नही कह सकता कि प्रकाश कैसा है। उसका तो स्वाद ही लिया जाता है। स्वाद से ही उसकी प्रतीति होती है।

आखवाले के लिए परमात्मा के अतिरिक्त कुछ भी सत्य नही है। और जिसके पास आख नही है, उसके लिए परमात्मा को छोडकर सभी चीजे सत्य हैं, परमात्मा एकमात्र असत्य है।

तो शिष्य और गुरु के बीच सेतु क्या होगा ? कैसे शिष्य और गुरु मिलेगे ? कैसे उनके बीच एक ही दिशा मे यात्रा का प्रारम्भ होगा। वे कैसे प्रस्थान करेगे? क्या होगा जोड ?

अगर शिष्य की तरफ विवाद की आकाक्षा हो, तो जोड नही हो सकता। तब वे विपरीत दिशाओ मे यात्रा करेगे। शिष्य की तरफ अगर तर्क का आग्रह हो, तो यात्रा असम्भव है। क्योकि वस्तुओ का स्वभाव ऐसा है कि उन्हे जाना जा सकता है, लेकिन जानने के पहले उनके लिए कोई तर्क नही दिया जा सकता।

कुछ वर्ष पहले, पहलगाव (कश्मीर) मे एक घटना घटी, जो मुझे भूले नही भूलती। एक वृक्ष के नीचे बैठा था। ऊचाई पर वृक्ष मे छोटा-सा एक घोसला था, और जो घटना उस घोसले मे घट रही थी उसे मैं देर तक देखता रहा, क्योकि वही घटना शिष्य और गुरु के बीच घटती है। कुछ ही दिन पहले अण्डा तोडकर किसी पक्षी का एक बच्चा बाहर आया होगा, अभी भी वह बहुत छोटा है। उसके माता-पिता दोनो कोशिश कर रहे हैं कि वह घोसले पर पकड छोड दे और आकाश मे उडे। वे सब उपाय करते हैं। वे दोनो उडते है आसपास घोसले के, ताकि वह देख ले कि देखो हम उड सकते हैं, तुम भी उड सकते हो।

लेकिन अगर बच्चे को सोच-विचार रहा हो तो बच्चा सोच रहा होगा, 'तुम उड सकते हो, इससे क्या प्रमाण कि हम भी उड सकेंगे। तुम तुम हो, हम हम हैं। तुम्हारे पास पख हैं, माना, लेकिन मेरे पास पख कहां हैं?'

क्योकि पखो का पता तो खुले आकाश में उडो, तभी चलता है, उसके पहले पखो का पता ही नही चल सकता। कैसे जानोगे कि तुम्हारे पास भी पख हैं, अगर तुम चले ही नही, उडे ही नही?

तो बच्चा बैठा है किनारे घोसले के, पकडे है घोसले के किनारे को जोर से, देखता है, लेकिन भरोसा नही जुटा पाता। मा-बाप लौट आते हैं, फुसलाते हैं, प्यार करते हैं, लेकिन बच्चा भयभीत है। बच्चा घोसले को पकड़ रखना चाहता है। वह ज्ञात है। वह जाना-माना है। और छोटी जान, और इतना बडा आकाश, घोसला ठीक है, गरम है, सब तरफ से सुरक्षित है, तूफान भी आ जाये, तो कोई खतरा नही है, भीतर दुबक रहेंगे। सब तरह की कोशिश असफल हो जाती है। बच्चा उडने को राजी नही है।

यह अश्रद्धालु चित्त की अवस्था है। कोई पुकारता है तुम्हे, 'आओ खुले आकाश मे', तुम अपने घर को नही छोड पाते। तुम अपने घोसले को पकडे हो। खुला आकाश बहुत बडा है तुम बहुत छोटे हो। कौन तुम्हे भरोसा दिलाये कि तुम आकाश से बडे हो? किस तर्क से तुम्हे कोई समझाये कि दो छोटे पखो के आगे आकाश छोटा है? कौन-सा गणित तुम्हे समझा सकेगा? क्योकि नाप-जोख की बात हो तो पख छोटे हैं, आकाश बहुत बडा है। पर बात नाप-जोख की नही है। दो पखो की सामर्थ्य उडने की सामर्थ्य है बडे से बडे आकाश मे उडा जा सकता है। और पख पर भरोसा आ जाये तो आकाश शत्रु जैसा न दिखाई पडेगा, स्वतत्रता जैसा दिखाई पडेगा आकाश मित्र हो जाएगा।

परमात्मा मे छलाग लेने के पहले भी वैसा ही भय पकड लेता है। गुरु समझाता है, फुसलाता है, डाटता है, डपटता है, सब उपाय करता है—किसी तरह एक बार।

जब उन दो पक्षियो ने—मा-बाप ने—देखा कि बच्चा उडने को राजी नही तो आखिरी उपाय किया। दोनो ने उसे धक्का ही दे दिया। बच्चे को खयाल भी न था कि वे ऐसी क्रूरता कर सकेंगे, कि इतने कठोर हो सकेंगे।

गुरु को कठोर होना पडेगा। क्योकि तुम्हारी जडता ऐसी है कि तुम्हे धक्के ही न लगे तो तुम आकाश से वचित ही रह जाओगे। उस कठोरता मे करुणा है।

अगर मा-बाप करुणा कर लें तो यह बच्चा सदा के लिए पगु रह जाएगा। इसकी नियति भटक जाएगी, खो जाएगी। यह सड जाएगा उसी घोसले मे। घोसला घर

न रहेगा, कब्र बन जाएगा। और यह बच्चा अपरिचित रह जाएगा अपने स्वभाव से। उस स्वभाव का तो खुले आकाश मे उडने पर ही एहसास होगा। वह समाधि तो तभी लगेगी जब अपनी क्षुद्रता को यह विराट आकाश मे लीन कर सकेगा, जब अपने छोटेपन मे यह बडे से बडा भी हो जाएगा। जब इसकी आत्मा परमात्मा जैसी मालूम होने लगेगी, तभी इसकी समाधिस्थ अवस्था होगी।

बच्चे को पता भी नही था कि यह होगा। धक्का खाते ही, वह दो क्षण को खुले आकाश मे गिर गया—फडफडाया, घबडाया, वापस लौटकर घोसले को और जोर से पकड लिया, लेकिन अब उस बच्चे मे एक फर्क हो गया, जो उसके चेहरे पर भी देखा जा सकता था। अश्रद्धा खो गई है। पख है। छाटे होगे। आकाश इतना भयभीत नही करनेवाला है जितना अब तक कर रहा था। और एक क्षण को उसने खुले आकाश मे सास ले ली। अब अश्रद्धा नही है। थोडी देर मे, धक्के की अशान्ति चली गई, कम्पन खो गया। मा-बाप उसे बडा प्यार दे रहे हैं, चोचो से सहला रहे है, उसे आश्वस्त कर रहे हैं कि वह अपने अनुभव को पी जाये। उसे अपने पखो की समझ आ गई। वह पख फडफडाता है बीच-बीच मे। अब पहली दफा उसे पता चला कि उसके पास पख है वह भी उड सकता है। फिर घडीभर बाद मा-बाप उडे और बच्चा उनके साथ हो लिया।

ठीक यही घटना घटती है हर शिष्य और हर गुरु के बीच, और सदा से घटी है, और सदा ऐसी ही घटेगी। किसी न किसी तरह गुरु को शिष्य की अश्रद्धा को तोडना है, किसी न किसी तरह शिष्य को यह भरोसा दिलाना है कि उसके पास पख हैं, और आकाश छोटा है।

और उडे बिना जीवन मे कोई गति नही है। रोज रोज उडना है। रोज-रोज अतीत का घोसला छोडना है। रोज-रोज जो जान लिया, उसकी पकड छोड देनी है, और जो नही जाना है उसमे यात्रा करनी है। सतत है यात्रा। अनन्त है यात्रा। कही भी ठहर नही जाना है। पडाव भले कर लेना, घर कही मत बनाना। यही मेरी सन्यास की परिभाषा है।

पडाव—ठीक। रात अधेरा हो जाये, घोसले मे विश्राम कर लेना, लेकिन खुले आकाश की यात्रा बद मत करना। रुकना, लेकिन रुक ही मत जाना। रुकना सिर्फ इसलिए ताकि शक्ति पुन लौट आये, तुम ताजे हो जाओ, सुबह फिर यात्रा हो सके।

बस ज्ञात पर उतना ही पडाव करना कि अज्ञात मे जाने की क्षमता अक्षुण्ण हो जाये। ज्ञानी मत बनना। ज्ञानी बने तो घोसला पकड गया। यही तो पडित की परेशानी है जो भी जान लेता है, उसको पकड लेता है। उसको पकडने के कारण

हाथ भर जाते हैं, और जो बहुत जानने को शेष था, वह शेष ही रह जाता है। जानना और छोडना। जानना और छोडना।

कहावत है नेकी कर और कुए मे डाल। ठीक वैसा ही ज्ञान के साथ भी करना। जानो, कुए मे डालो। तुम सदा अज्ञात की यात्रा पर बने रहना। तो ही एक दिन उस चिरतन से मिलन होगा। क्योकि वह चिरतन अज्ञात ही नही, अज्ञेय है।

ये तीन शब्द ठीक से समझ लेना। ज्ञात तो वह है जो तुमने जान लिया। अज्ञात वह है जो तुम कभी न कभी जान लोगे। अज्ञेय वह है जिसे तुम कभी न जान सकोगे। उसका तो स्वाद ही लेना होगा। उसे तो जीना ही होगा। जानने जैसी दूरी उसके साथ नही चल सकती। उसके साथ तो एक ही हो जाना होगा। उसके साथ तो डूबना होगा। वह तो मिलन है, ज्ञान नही। वहा तो तुम और उसका होना अलग न रह जाएगा। वहा तुम जाननेवाले न रहोगे, वहां तुम उसी के साथ एक हो जाओगे।

उस परम घडी को लाने के लिए, ज्ञात को छोडना है, अज्ञात मे यात्रा करनी है। और जब तुम अज्ञात की यात्रा मे कुशल हो जाओगे, तब तुम्हे गुरु आखिरी धक्का देगा कि अब अज्ञात को भी छोड दो और अज्ञेय मे प्रवेश कर जाओ। ज्ञात को जो छोड देता है और अज्ञात की यात्रा पर निकल जाता है, वह सन्यस्थ। और अज्ञात को भी जो छोड देता है और अज्ञेय मे लीन हो जाता है, वह सिद्ध। फिर कुछ और पाने को नही बचता। पानेवाला ही खो गया, तो अब पाने को क्या कुछ बचेगा?

ये कबीर के पद, ये वचन शिष्य और गुरु के बीच सेतु बनाने के लिए महत्वपूर्ण हैं। एक-एक शब्द को गौर से समझने की कोशिश करे।

'मेरा तेरा मनुआ कैसे इक होइ रे।' कबीर शिष्य से कह रहे है कि मेरा और तेरा होना एक कैसे हो? और जब तक एक न हो, तब तक गुरु जो भी बताये वह बाहर ही बाहर होगा। तुम उससे सीख लोगे शब्द, सिद्धान्त, पर गुरु जो वस्तुत देना चाहता था, तुम उससे वचित रह जाओगे।

बहुत मेरे पास भी मित्र आ जाते है जो थोडा-सा ज्ञान अर्जित करके सतुष्ट हो जाएगे।

ज्ञान तो कूडा-कचरा है, उससे सतुष्ट मत हो जाना। जीवन चाहिए! ज्ञान से क्या होगा? जान लो कितना ही परमात्मा के सबध मे—क्या सार है? ऐसे ही जैसे भूखा कितना ही जान ले भोजन के सबध मे, सारा पाकशास्त्र कठस्थ कर ले—क्या होगा? पूरा पाकशास्त्र भी तो एक जून की भूख नहीं मिटा सकता।

वेद पाकशास्त्र हैं। उपनिषद, गीता पाकशास्त्र हैं। उनमे भोजन की चर्चा है, वहा भोजन नही है। चर्चा मे कही भोजन होता है ?

मैं तुमसे कुछ कहता हू—उसमे भोजन नही है, वह जो कहता हू, वह तो केवल इशारा है। वह तो केवल इशारा है—उस तरफ, जहा भोजन है। तुम उससे ही तृप्त मत हो जाना। तुम इशारे को ही सम्हालकर मत रख लेना। उसको सम्पदा मत समझ लेना। मैं जो कहू, उसे तो भूल जाना, मैं जिस तरफ इशारा कर रहा हू, तुम उस तरफ की यात्रा पर निकल जाना। मुझे सुनकर भी तुम पडित हो सकते हो—तब तुम चूक गये, तब तुम सरोवर के किनारे थे और प्यासे ही लौट गये, सरोवर के किनारे थे, और पानी के सबध मे जानकर लौट गए, और पानी को न पीया।

परमात्मा के सबध मे जानने का कुछ भी तो सार नही। कोरे शब्द हवा मे बने बबूले हैं। उनमे कुछ भी नही है। लेकिन वे बडे महत्त्वपूर्ण मालूम होते हैं, क्योकि अहकार को भरते हैं। थोडा ज्यादा जान लिया, थोडी सम्पदा और भीतर शब्दो की इकट्ठी हो गई—अकड और बढ जाती है।

अहकार पडित होना चाहता है प्रज्ञावान नही। अहकार सग्रह करना चाहता है, समर्पण नही। अहकार खोना नही चाहता, बचना चाहता है। और तुम जब तक खोओगे नही, तब तक तुम्हारे बचने का कोई भी उपाय नही।

तो कबीर कहते हैं, 'मेरा तेरा मनुआ कैसे इक होई रे।' हो कैसे यह घटना कि मेरा-तेरा मन एक हो जाये ? क्योकि तू सब तरह की अडचने खडी कर रहा है। शिष्य अडचने खडी करता है। पहले तो वह विवाद खडा करता है। पहले तो वह कहता है, 'सिद्ध करो, जब तक सिद्ध न करोगे, मानेगे कैसे ? हमे कोई अधा समझा है ? हम कोई अधे अनुयायी हैं ? हम तो सोच-विचार करके चलेगे।'

सोच-विचार ही तुम्हारे पास होता तो गुरु की कोई जरूरत न थी। तुम सोच-विचार मे ही समर्थ होते तो तुम अपने ही पैर यात्रा कर लेते, किसी के सहारे की जरूरत नही थी।

और तुम कहते हो, 'हम अधे थोडे ही हैं ?' अधे तुम हो, बडे गहन रूप से अधे हो। और यह अधापन कोई आखो का ही नही है, भीतर की आखो का है। यह अधापन आध्यात्मिक है। और इस अधेपन मे तुम जिद करो, विवाद करो—तुम किस चीज को बचाने के लिए विवाद कर रहे हो ? तुम्हारे पास कुछ भी तो नही है। अगर तुमने ज्यादा विवाद किया, ज्यादा तर्क का सहारा लिया—अपने अधेपन को ही बचा लोगे, और तुम्हारे पास बचाने को कुछ भी नही है।

विचार तुम्हारे पास है नही . विचारों की भीड है, विचार नहीं है । विचार क्षमता का नाम है, विचारो की भीड का नाम नही है । तुम्हारे पास विचार तो बहुत हैं । तुम्हारी खोपडी एक बाजार है, जहा हजारो तरह के विचार हैं; लेकिन विचार नहीं है । विचार का अर्थ होता है जानने की क्षमता । और ये जो विचार हैं, जिनको तुम अपने कह रहे हो, कोई भी तुम्हारे नही हैं, सब उधार हैं । न मालूम कहा-कहा की झूठन तुमने इकट्ठी कर रखी है । और उस पर तुम इतरा रहे हो । कूडाघर पर बैठकर तुम सिंहासन समझ रहे हो । इनमे से एक भी विचार तुम्हारा नही है । बचाओगे क्या ? विवाद क्या करना है ?

ज्यादा विवाद और तर्क तुम्हे तुम्हारे गुरु से दूरी पर रख देगी । इसमे गुरु कुछ नहीं खो रहा है । वहा तो पाने-खोने को कुछ बचा नही । तुम्ही खो रहे हो ।

यह तो ऐसे ही है, जैसा बुद्ध ने कहा है कि किसी गाव मे ऐसा हुआ कि एक आदमी को तीर लग गया । भूल से लग गया । जगल से गुजरता था शिकारी, उसका तीर लग गया । फेंका तो किसी जानवर की तरफ गया था, आदमी बीच में आ गया । पर आदमी कोई साधारण आदमी न था, विवादी था, दार्शनिक था, बडा तर्कनिष्ठ था । भीड इकट्ठी हो गई । लोग उसका तीर निकालना चाहते हैं । गाव का वैद्य आ गया । पर उसने कहा कि 'ठहरो, पहले यह पक्का हो जाये कि तीर किसने मारा ? क्यो मारा ? तीर विष-बुझा है या साधारण है, घातक है या मैं बच सकूगा ? तीर मत निकालो अभी । पहले सब तय हो जाये ।' और वह मायावादी दार्शनिक था । उसने कहा कि पहले यह भी पक्का हो जाये कि तीर है भी ? क्योकि ज्ञानियो ने कहा है, ससार माया है । जब पूरा ससार ही स्वप्नवत् है तो तीर स्वप्न मे लगा है या यथार्थ मे ?

बुद्ध उस गाव से निकलते थे । वे भी उस भीड मे खडे थे । उन्होने अपने शिष्यों से कहा, "ठीक से सुन लो इसकी बात । यही तुम्हारी दशा है । यह ना-समझ, यह सब चर्चा बाद में कर ले तो अच्छा है, पहले तीर निकल जाने दे । मगर इसका कहना भी ठीक है कि अगर तीर है ही नही तो निकालोगे क्या ? यह पहले सब जान लेना चाहता है, तब तीर को निकालने देगा । और इसे पता नही कि इस बीच, इस जानकारी में यह समाप्त हो जाएगा और तीर कभी न निकलेगा ।"

बुद्ध ने अपने शिष्यो से कहा, "ऐसा ही दुख का तीर तुम्हारे जीवन मे लगा है । मैं तुमसे कहता हू कि निकाल लेने दो । तुम कहते हो, 'दुख क्या है ? है भी ? सुख मिल सकता है ? कोई सम्भावना ? कभी किसी को मिला है कि सब कपोलकल्पित है ?' तुम पूछते हो, 'दुख कहा से आया ? क्यो आया ? हम दुखी

क्यो हैं ? परमात्मा ने दुख क्यो बनाया ? और जो दुख बनाता है, वह परमात्मा कैसा है ?' तुम पूछते हो, दुख स्वप्न है या सत्य है ।" और बुद्ध ने कहा, "मैं उस वैद्य की तरह हू जो तुमसे प्रार्थना कर रहा है कि तीर निकाल लेने दो, फिर पीछे समय बहुत है, तब तुम चर्चा कर लेना । लेकिन तुम कहते हो, पहले सब साफ हो जाये, तब तीर निकालने देंगे । तब तुम मर जाओगे, तीर न निकल पाएगा ।"

और बुद्ध ने यह भी कहा, "और मैं जानता हू कि एक दफा तीर निकल जाये, फिर कोई तीर के सबध मे चर्चा नही करता । (तब तो) बात ही खत्म हो गई ।"

गुरु कहता है, 'तुम्हारी अज्ञान की अवस्था को बदल देने दो ।' तुम कहते हो, "पहले सब निर्णय हो जाये, पहले सब तर्क से सिद्ध हो जाये, सब प्रमाण मिल जाये, साक्षी, गवाहिया जुटा ली जाये—तभी मैं आगे बढूगा । मैं कोई अधा अनुयायी नही हू, मैं सोच-विचारवाला आदमी हू ।"

तब तुम ऐसे ही खो जाओगे । तब सरोवर निकट था, लेकिन सरोवर असमर्थ था, क्योकि तुमने अजुलि ही न बाधी । सरोवर निकट था, तुम्हारी प्यास को बुझाने को तत्पर था, आतुर था, लेकिन तुम झुककर अजुलि बाधकर सरोवर से पानी लेने को तैयार न हुए । तुम प्यासे ही मर जाओगे । ऐसे ही बहुत बार तुम मरे हो । ऐसे ही बहुत बार तुम विवाद मे जीये हो ।

और अज्ञान बडा विवादी है । ज्ञान तो निर्विवाद है । वहा कोई विवाद नही है । अज्ञान बडा विवादी है । विवाद अज्ञान की रक्षा का उपाय है । अज्ञान अपनी रक्षा करता है ।

'मेरा तेरा मनुआ कैसे इक होइ रे ।
मैं कहता हौं आखन देखी, तू कागद की लेखी रे ।'

और बहुत कठिनाई है । कबीर कहते हैं, हम आख की देखी बात कर रहे है, तुम कागज की लिखी बात कर रहे हो । तुमने वेद पढ लिये, अब तुम वेद से भरे हो । तुमने गीता पढ ली, अब गीता के श्लोक तुम्हारी खोपडी मे घूम रहे हैं । तुम कुरान कठस्थ किये हो । और इन कागज पर लिखी बातो के सहारे तुम आखवाले के पास विवाद करने पहुच जाते हो । कुछ उसकी हानि नही । करो मजे से—तुम्हारी मौज है । लेकिन वह देखता है कि तीर चुभा है तुम्हारे जीवन मे । जहर उसका फैलता जाता है प्रतिपल । तुम्हारा खून उसके जहर को तुम्हारे शरीर मे दौडा रहा है । तुम जल्दी ही चुक जाओगे । और ये कागज की लिखी बाते कुछ भी सहारा न बनेगी ।

तुम मर रहे हो प्रतिपल, क्योकि मौत किसी भी क्षण आ सकती है । और तुम

किताबों में बड़े कुशल हो गये हो।

एक मित्र मेरे पास आये। कहने लगे, "और सब ठीक है, वेद के संबंध में आपका क्या खयाल है?" वेद का क्या करोगे? उसके संबंध मे खयाल का भी क्या करोगे? "नहीं", कहने लगे, "मैं आर्यसमाजी हू और जब तक यह साफ न हो जाये कि वेद के संबंध में आपकी क्या दृष्टि है, तब तक मेरा और आपका कोई तालमेल नहीं हो सकता। अगर आप वेद से राजी हैं तो सब ठीक हैं। लेकिन मैंने सुना है, आप वेद से राजी नही हैं।"

'मैं कहता हौं आखन देखी, तू कागद की लेखी रे।'

सिद्धान्त भारी हैं लोगो के मन पर। बड़ी गहन पकड है उनकी। और उन सिद्धान्तो मे है क्या?

मैंने उनसे कहा कि 'अगर वेद को पढ़कर, जानकर आप कहीं पहुच गये, तो मेरे पास आने की कोई जरूरत नही। बात खत्म हो गई। अगर वेद आपकी नाव बन गया तो ठीक है।' लेकिन कागज की नाव से कभी कोई पार नहीं हुआ। फिर कागज की नाव चाहे वेद की हो, चाहे कुरान की, चाहे बाइबिल की, चाहे गीता की, चाहे मेरी किताबो की—इससे कोई फर्क नही पडता। नाव कागज की है—डूबेगी।

उन्होंने कहा, "और किताबे और हैं, वेद की बात और है। वेद तो स्वय परमेश्वर ने रचा है।" वही कुरान का माननेवाला भी कहता है। वही बाइबिल को माननेवाला भी कहता है। जिस किताब मे भी तुम्हे डूब मरना हो, जिस किताब की भी नाव बनानी हो, उसी किताब के माननेवाले यही कहते हैं कि यह परमात्मा की रची हुई है। लेकिन शब्द की नाव से कब कौन पार हुआ है? नाव तो नि:शब्द की चाहिए। नाव तो अनुभव की चाहिए, सिद्धान्तो की नही। लेकिन अनुभव कीमती चीज है। जीवन से चुकाना पडता है मूल्य। वेद तो बाजार से खरीद लाओ, सस्ता मिलता है। और वेद के तो तुम जो भी अर्थ करना चाहो, कर लो, अर्थ तो तुम ही कराोगे? वेद तो कुछ तुम्हे रोक न सकेगा कि यह अर्थ मेरा नही। इसलिए वेद को थोडे ही तुम पढते हो, पढते तो तुम अपने ही अर्थ को हो—वेद मे पढते हो। पढ़ते तुम अपने ही अर्थ को हो; वेद का तो बहाना है। अपने ही अज्ञान को तुम वहा से भी सुरक्षित करते हो।

ध्यान रहे, तुम्हारे पास कुछ भी नहीं है—ऐसी जब तुम्हे प्रतीति हो, ऐसा जब तुम पाओ कि दीन-हीन, कि न कोई ज्ञान है, न कोई प्रेम है, जीवन में कुछ भी नही है, पाओ बिलकुल रिक्त—तभी तुम गुरु के पास आने के योग्य हो पाओगे। क्योंकि अगर तुम अपने से भरे हो, तो गुरु तुममे कैसे भर सकेगा? तुम जब खाली आओगे,

खाली और नग्न, निर्वस्त्र, सब वस्त्र सिद्धान्तो के, शास्त्रो के छोडकर आओगे, तुम ऐसे आओगे, जैसे छोटा बच्चा आता है, बिना किसी धारणा के, निर्धारणा में—तभी तुम गुरु से मिल सकोगे। और गुरु जीवित शास्त्र है, मुर्दा शास्त्रो को लेकर तुम गुरु के पास मत आना। क्योंकि गुरु खुद ही वेद है, गुरु खुद ही गीता है—और जीवन्त है। गुरु का अर्थ ही इतना है जिसमें धर्म पुनरुज्जीवित हुआ है, जिससे परमात्मा फिर से बोला है, जिसकी बासुरी को परमात्मा ने फिर अपने ओठो पर रखा है। तुम पुराने गीत लेकर आते हो, जो बासे हो चुके, और सदियो मे जिन पर धूल जम गई, और सदियो मे आदमियो के हाथ चलते चलते जो बहुत दिन चले हुए नोट की तरह गदे हो गए। ताजा बरसता हो, वहा तुम बासे को लेकर आते हो? जहा सद्य स्नात सत्य जन्म रहा हो, वहा तुम सिद्धान्तो और शास्त्रो की सडी-गली बातो को लेकर आते हो। ये बाते भी सड-गल जाएगी। और मुझे पक्का पता है कि लोग इन बातो का लेकर भी दूसरे गुरुओ के पास जाएगे, जो जीवित होगे। वही भूल होगी, जो अभी हो रही है। वही भूल सदा होती जाती है।

बुद्ध के पास लोग वेद की बात लेकर जाते थे, चूकि बुद्ध ने वेद का समर्थन नही किया। और कोई बुद्ध कभी किसी वेद का समर्थन नही करेगा। यह कोई वेद का विरोध नही है, यह तो सिर्फ एक छोटी सीधी-सी बात है कि जीवन्त सत्य मरे हुए शब्दो का समर्थन नही करेगा। अगर आज बुद्ध हो, तो अपने ही वचनो को, धम्मपद मे जो वचन उन्होने कहे, उनको भी वे उसी तरह इनकार कर देगे, जिस तरह उन्होने वेद के वचन इनकार कर दिये। सवाल वेद का नही है, सवाल किताब और जीवन्तता का है।

कबीर कहते हैं, 'मैं कहता हौ आखन देखी, तू कागद की लेखी रे।' मेल कैसे हो? ऐसा शिष्य अगर गुरु के पास आ भी जाये, तो कितना ही पास रहे, मेल नहीं हो पाता। वह ऐसा होता है जैसे रेल की पटरिया पास-पास होती है दोनो, मगर समानान्तर, कही मिलती नही एक कागज से उलझा, एक जीवन जी रहा। कागज और जीवन मे क्या सम्बन्ध?—समानान्तर! शास्त्र और सत्य समानान्तर रेखाए हैं, जो कभी भी नही मिलती—बस रेल की पटरिया हैं। पास ही पास बनी रहती हैं, चार फीट का फासला है, लेकिन वह फासला पूरा नही हो पाता। और तुम्हे अगर कही मिलती दिखाई पडती हो तो समझना कि वह भ्रम है। बहुत दूर, अगर तुम देखोगे, तो क्षितिज पर रेल की पटडिया मिलती हुई मालूम पडती हैं। बस वे मालूम पडती हैं, अगर तुम जाओगे, वहा भी तुम पाओगे, वही चार फीट का फासला है। वे कही मिलती नही। समानान्तर रेखाए कही मिलती ही नही।

और कबीर यही कह रहे हैं कि आख की देखी बात और कागज की लिखी बात समानान्तर रेखाए हैं। 'मेरा तेरा मनुआ कैसे इक होइ रे।'

'मैं कहता सुरझावनहारी, तू राख्यो अरुझाई रे।' मैं सुलझाने की कोशिश कर रहा हू, और तू और उलझाये चला जा रहा है।

सिद्धान्त सुलझाते नहीं, उलझाते हैं, क्योकि एक सिद्धान्त दस प्रश्न खडे करता है। एक प्रश्न का उत्तर अगर तुमने किताब से चुन लिया, तो वह उत्तर हजार नये प्रश्न खडे कर देता है।

जीवन मे समाधान है। किताबो मे प्रश्न है, उत्तर हैं, उत्तरो से पैदा हुए नये प्रश्न हैं। इसलिए हर किताब और किताबो को जन्म देती है। जैसे आदमी बच्चो को जन्म देते हैं, वैसे किताबे किताबो को जन्म देती हैं क्योकि एक किताब प्रश्न उठा देती है, अब दूसरी किताब उत्तर देती है, उत्तर से और प्रश्न उठते हैं—तीसरी किताब की जरूरत हो जाती है। तो सातत्य बना रहता है।

हजारो टीकाए है गीता पर। क्योकि गीता कोई प्रश्नो का हल नही कर सकती। और जो भी हल देती है, उन पर नये प्रश्न खडे हो जाते हैं, उनका उत्तर देना पडता है। फिर हर टीका पर टीकाए हैं। और टीकाओ पर टीकाओ पर भी टीकाए हैं—सिलसिला जारी है। उसमे कोई अन्त नही हो सकता। वह जारी रहेगा।

शब्द किसी प्रश्न का हल करते ही नही। हल तो दूर है, शब्द प्रश्न को छू भी नहीं पाते। क्योकि प्रश्न तो उठता है जीवन से, और उत्तर आता है किताब से—समानान्तर।

जीवन मे दुख है। तुमने दुख को जाना है। तुमने दुख के आसू बहाये हैं। दुख मे तुम्हारा हृदय जार जार रोया है। दुख मे तुम्हारे रोए-रोए ने तडफन अनुभव की है। यह दुख तो आया जीवन से, अब तुम जाते हो किताब मे उत्तर लेने कि दुख क्यो है? किताब कहती है, पिछले जन्मो के कर्म के कारण। लेकिन सवाल यह है कि पिछले जन्मो मे दुख क्यो था? वह और पिछले जन्मो के कर्म के कारण। लेकिन तब सवाल उठता है कि पहला जब जन्म हुआ होगा, तब कहा से दुख आया? तब किताब कहती है, सब भगवान की लीला है। पहले ही कह देते, इतनी देर क्यो लगाई? भगवान की लीला से कुछ हल होता है? फिर तुम वही के वही आ गये।

जीवन का दुख भीतर है। भगवान की लीला से क्या हल होता है? भगवान क्या कोई दुष्ट परपीडक, कोई महा हिटलर की भाति है कि लोगो को सता रहा है, इसमे लीला ले रहा है? लोग कष्ट पा रहे हैं तो भगवान क्या उन बच्चो की

तरह है जो मेंढको को सताते हैं ? अगर उनसे पूछो तो वे कहते हैं, खेल रहे हैं।

आदमियो को भगवान सता रहा है, दुखी कर रहा है ? यह उसकी लीला है ? तो भगवान के दिमाग को इलाज की जरूरत है। वह सेडिस्ट मालूम होता है, दुखवादी मालूम होता है, दुष्ट मालूम होता है। मस्तिष्क उसका ठीक नहीं है।

लेकिन ये किताब से आनेवाले उत्तर सब ऐसे ही होंगे। थोडी-बहुत देर किताब मे तुम उलझ जाओ, बस इतना ही है। जैसे ही लौटकर आओगे, पाओगे कि दुख तो अपनी जगह खडा है, किताब हल नही कर पाती। और इसे जान लेने से भी कि पिछले जन्मो के कारण दुख है, दुख मिटेगा नही। इसे भी जान लेने से कि परमात्मा की लीला है, दुख मिटेगा नही, दुख तो रहेगा।

दुख मिटेगा ध्यान से, विचार से नही। और ध्यान की यात्रा बडी अलग है। वह कागज मे लिखी हुई यात्रा नहीं है, वह आखो से देखने की यात्रा है। ध्यान का अर्थ है दृष्टि का आविर्भाव। ध्यान का अर्थ है तुम्हारा जाग जाना। वहां मिटेगा दुख, और वहा सब समाधान हो जायेगा। और असली सवाल यह नहीं है कि दुख कहा से आया है, असली सवाल यह है कि दुख कैसे मिटे ?

जब तुम किसी बीमारी से ग्रस्त होते हो, तो तुम चिकित्सक से यह नही पूछते कि 'बीमारी कहा से आई, क्यो आई, जिस बैक्टीरिया की वजह से बीमारी पैदा हुई, वह कहा से आया ? भगवान ने बैक्टीरिया बनाये क्यो टी बी कैन्सर के ? इनके बिना बनाये न चल सकता था ? सिर्फ फूल और तितलियो से काम नही चल सकता था ?' नही, तब तुम इसकी चिंता नही करते। तुम चिकित्सक से कहते हो, 'इस फिक्र मे पडो ही मत। तुम मेरा इलाज करो।' दुख कैसे जाये, तुम यह पूछते हो।

किताब के साथ बधा हुआ आदमी हमेशा पूछता है, दुख कहा से आया ? और सद्गुरु बताता है कि दुख कैसे जाये।

बुद्ध ने कहा है, "तुम मुझसे पूछो मत कि परमात्मा है या नही। तुम मुझसे इतना ही पूछो कि दुख कैसे जाये। जब दुख चला जायेगा, तब तुम जान लोगे कि परमात्मा है या नही।" उस दुख-निरोध की अवस्था मे तुम्हारी आखे साफ होगी, आसू सूख गये होगे। जीवन की पीडा तिरोहित हो गई होगी। स्वास्थ्य की मगनता उठेगी भीतर—एक झलक की भाति। तुम्हारा जीवन एक उत्सव बन जाएगा। उस उत्सव मे तुम जान पाओगे कि परमात्मा की लीला क्या है। दुख में कही कोई जान सकता है लीला को ? उत्सव मे, आनन्द की अवस्था मे, जब तुम नाच उठोगे, तभी . ।

तो बुद्ध कहते हैं, "मत पूछो ईश्वर, मत पूछो, किसने दुनिया बनाई ? . व्यर्थ की बातें हैं। दार्शनिको को करने दो यह व्यर्थ बकवास।"

'मैं कहता सुरझावनहारी ।' कबीर कहते हैं, "मैं सुलझाने की कोशिश कर रहा हू कि दुख कैसे जाये, अधेरा कैसे मिटे, अधापन कैसे मिटे, 'तू राख्यो अरुझाई रे–' तू ऐसे सवाल उठाता है कि चीजें और उलझ जाती हैं।"

इस बात को बहुत ठीक से समझ लेना, क्योकि यही तुम्हारे और मेरे बीच भी घट रहा है। मेरी सारी चेष्टा है कि तुम कैसे सुलझ जाओ। लेकिन तुम सब तरह के प्रतिरोध खडे करते हो। तुम सब तरह की बाधाए डालते हो। निश्चित ही तुम्हे पता नही है, तुम क्या कर रहे हो, अन्यथा तुम क्यो करते ? तुम सब तरह की बाधाए डालते हो।

एक मित्र कुछ दिन पहले आये। उन्होने कहा, "यह ध्यान जो आप करवा रहे हैं, मैंने करके देखा–शाति मिलती है, बडा अच्छा लगता है, लेकिन जैन-धर्म मे इसका उल्लेख नही है।" तुम्हे शाति मिलती है, तो जैन-धर्म मे कही उल्लेख नही है–उस उल्लेख को चाटोगे ? उस उल्लेख का करना क्या है ? 'नही,' उन्होने कहा कि 'मैं तो जैन-धर्म का अनुयायी हू तो थोडा शक होता है, क्योकि अगर यह ध्यान ठीक होता, तो महावीर स्वामी ने कही-न-कही उल्लेख तो किया होता। सब शास्त्र देख डाले, मगर इसका कही उल्लेख नही है। इसलिए ध्यान करना बद कर दिया है।'

शान्ति पर भरोसा नही है। अपनी ही शाति पर भरोसा नही है। अपने अनुभव पर भरोसा नही है। आदमी कितनी गहन मूढता मे रहता है। वह महावीर ने क्यो नही कहा–वह उलझा रहा है मामले को। और चूकि महावीर ने नही कहा, इसलिए जरूर कही कोई न कोई गडबड होगी। महावीर ने कुछ ठेका लिया है सब कुछ कह जाने का ? ये सज्जन उनको भी मिल जायें तो वे भी अपना सिर पीट ले। महावीर ने जो भी कहा है, उसकी सीमा है, कहने की सीमा है। अन-कहा बहुत रह गया है, जो कभी न चुकेगा। सद्गुरु आते रहेंगे, और अन-कहा सदा बाकी रहेगा। यह सागर बडा है। इसमे महावीर भर लाये थोडा-सा पानी अपने पात्र मे, उससे कोई सागर थोडे ही चुक जाता है।

तुम प्यासे मर रहे हो, लेकिन तुम कहते हो, यह जो जल आप बता रहे हैं, यह महावीर की गगरी में नही है। तुम्हे प्यास की फिक्र है ? नही, लेकिन लोग बडे । बडी हैरानी की घटना है यह कि तुम अपनी अशान्ति को टूटने नही देते, अपने दुख को टूटने नही देते, तुम अपनी भटकन को मिटने नही देते। तुम उलझाये

चले जाते हो। अजीब-अजीब प्रश्न लेकर लोग उलझाते हैं। और अगर उनकी तरफ तुम देखो तो वे बड़े गभीर मालूम पड़ते हैं। उनको होश भी नहीं कि वे क्या कह रहे हैं, किसलिए ये बातें उठा रहे हैं?

आदमी बिलकुल बेहोश है।

'मैं कहता सुरझावनहारी, तू राख्यो अरुझाई रे। मैं कहता तू जागत रहियो, तू रहता है सोई रे।' कबीर कहते हैं कि सारी शिक्षाओ की शिक्षा तो एक ही है कि तुम जागते रहो, मगर तुम सो-सो जाते हो। तुम हजार बहाने खोज लेते हो सोने के।

जीसस आखिरी रात, जिस दिन उन्हे फासी लगनेवाली है, उसकी एक रात पहले, अपने शिष्यो को इकट्ठा किये एक बगीचे मे, और उन्होने कहा कि 'मैं आखिरी प्रार्थना कर लू, तुम जागते रहना। यह रात आखिरी है। और यह ईश्वर का बेटा फिर दुबारा तुम्हारे साथ प्रार्थना करने को नही होगा।'

जीसस ने प्रार्थना की, घडीभर बाद वे वापस आये, देखा, सारे शिष्य सो रहे हैं। उन्होने जगाया। उन्होंने कहा, "यह आखिरी रात ।" उन्होने कहा, "क्या करे? दिनभर के थके-मादे हैं, झपकी लग गई। अब फिर कोशिश करेंगे।" जीसस फिर घडीभर बाद प्रार्थना से आख खोले, देखा, वे सब फिर घुरा रहे हैं।

"क्या हो गया?"

उन्होने कहा, "कोशिश तो करते हैं, लेकिन नीद आ-आ जाती है।" कोशिश करते ही नही हैं। वह भी बहाना है। वह भी सिर्फ तरकीब है। अगर तुम कोशिश करो, तो नींद कैसे आ जायेगी? अगर तुम कोशिश करो तो नीद तो आ ही नही सकती। अगर ठीक से समझो तो जिन लोगो को नीद नही आती, उनको इसलिए नही आती कि वे कुछ कोशिश करते हैं नीद को लाने की। सौ मे निन्यानवे आदमी जिनको रात मे नीद नहीं आती, उनका कुल कारण इतना होता है कि वे नीद को आने नही देते--कोशिश के कारण। वे कोशिश करते हैं। कोई गायत्री-मत्र पढता है, कोई कुछ करता है, कोई करवट बदलता है, सोचता है नीद आ जाये, आख बद करता है, सोचता है, आ रही है, अब नीद आ रही है, वह नही आती है। नीद को लाने के लिए कोशिश की जरूरत ही नही है। नीद तो आती ही तब है जब कोई कोशिश नही होती। क्योंकि कोशिश जगाती है। कोशिश और नीद विरोधी हैं।

तो शिष्य कह रहे हैं, 'कोशिश तो हम करते हैं।' लेकिन वह कोशिश झूठी है। वे करते नही हैं, या वे अपने को समझाते है कि हम कोशिश तो कर रहे हैं।

लेकिन वह कोशिश कुनकुनी है। ऐसा थोड़ा-सा करते हैं कि जब जीसस कहते हैं तो कर लो। वस्तुतः उन्हें भरोसा नहीं है कि यह आखिरी रात है। उन्हें यह भी भरोसा नहीं है कि कल जीसस विदा हो जायेंगे। उन्हें यह भी भरोसा नहीं है कि प्रार्थना मे कोई सार है। श्रद्धा नहीं है।

जब जीसस उनसे विदा होते हैं तो उनमे से एक शिष्य कहता है कि चाहे कुछ भी हो जाये, सदा ही मैं तुम्हारे साथ रहूंगा। जीसस ने कहा, "तू इस तरह की बातें मत कर, क्योंकि मुर्गे के बाग देने के पहले तू तीन दफे मुझे इनकार कर चुका होगा।" आधी रात जा चुकी है। मुर्गे को बाग देने में ज्यादा देर नहीं है। लेकिन उस शिष्य ने कहा कि 'नहीं, मेरी भक्ति अटूट है। मेरी श्रद्धा अपार है। मैं कभी आपको इनकार न करूंगा।' फिर जीसस पकड़ लिये गये। दुश्मन की भीड़ उन्हे ले जाने लगी। वह शिष्य भी पीछे-पीछे भीड़ मे साथ हो लिया कि देखें, क्या होता है। बाकी शिष्य तो भाग गये। वह एक साथ हो लिया। मशालो की रोशनी मे भीड़ ने अनुभव किया कि कोई एक अजनबी साथ है, तो उसको पकड़ लिया और कहा कि 'तू कौन है? क्या तू जीसस का साथी है?' उसने कहा कि 'नहीं, मैं तो उन्हे जानता ही नहीं। कौन जीसस?' जीसस ने पीछे मुड़कर कहा कि 'देख, अभी मुर्गे ने बाग भी नहीं दी। अभी रात बहुत बाकी है।'

शिष्य और गुरु के बीच कौन-सी घटना घटे ताकि सेतु बन जाये। वह घटना है जागरण की। गुरु जागा है, जैसे हिमालय के उत्तुंग शिखर पर है उसका जागरण। तुम सोये हो—गहन अंधेरी घाटी मे। फासला बहुत है। गुरु कुछ कहता है, तुम कुछ और समझते हो। गुरु कुछ और कहता है, तुम कुछ और व्याख्या कर लेते हो। तुम्हारे सपने, तुम्हारी नींद, तुम्हारा अंधापन सब उसमे मिल जाते हैं और सब विकृत कर देते है।

तुम जागो! जैसे-जैसे तुम जागोगे, वैसे-वैसे तुम गुरु के करीब आने लगे। जागरण ही एकमात्र निकट आने का उपाय है।

मुझसे शिष्य पूछते है कि आपके हम ज्यादा से ज्यादा निकट कैसे आयें? एक ही उपाय है कि ज्यादा से ज्यादा जागो। और असली सवाल मेरे निकट आना थोड़े ही है, असली सवाल तो मेरे बहाने परमात्मा के निकट जाना है। मेरे पास बैठ जाने से थोड़े ही तुम मेरे निकट हो जाओगे। मेरे चरणों को पकड़ लेने मे थोड़े ही तुम मेरे निकट हो जाओगे। उससे तो कुछ भी न होगा। वह तो तुम धोखा दे रहे हो अपने-आप को। तुम जागोगे तो ही मेरे निकट होओगे। क्योंकि यह निकटता तो भीतर की है, बाहर की नहीं। तुम मेरे जैसे ही होने लगोगे, तो ही मेरे निकट

होओगे। तुम अपने जैसे बने रहे तो दूरी बनी रहेगी।

दो ही उपाय हैं। या तो गुरु सो जाये तो निकटता हो सकती है, या शिष्य जग जाये तो निकटता हो सकती है। गुरु सो नही सकता, क्योंकि जो जाग गया, उसके सोने का उपाय नहीं। पीछे लौटना होता ही नहीं। जो जान लिया, उससे वापस लौटना होता ही नही। गुरु सो नही सकता। एक ही उपाय है कि तुम जाग जाओ।

कबीर कहते हैं, 'मैं कहता तू जागत रहियो, तू रहता है सोई रे।'

और जागना कोई ऐसी बात नहीं है कि मत्र की तरह तुम रटते रहो तो जाग जाओगे। जागना कोई मत्र नही है, जागना तो जीवन की विधि है। तुम चौबीस घटे जागे हुए जीओगे तो ही धीरे-धीरे करके जागरण का गुण तुममें इकट्ठा होगा, बूद-बूद जागरण इकट्ठा होगा, तब तुम्हारी गागर भरेगी। एक-एक कण इकट्ठा करना पडेगा, तब तुम्हारे जागरण का सग्रह होगा। भोजन करो तो जागे हुए। भोजन करते वक्त, बस भोजन ही करो, मन मे दूसरे विचार न आने दो, क्योंकि वे नीद ले आते हैं, सपना ले आते हैं। जागरण खो जाता है। राह पर चलो तो जागे हुए, एक-एक कदम होश मे उठे। छोटे-से छोटा काम भी करो तो जागे हुए। जागने को तुम जीवन की विधि बना लो, जीवन की शैली बना लो। ऐसा नही कि एक घटेभर सुबह बैठकर जागने का उपाय कर लिया और फिर तेईस घटे भूल गये—तो जागरण कभी भी पैदा न हो पाएगा। सतत चौबीस घटे चोट मारनी पडेगी, तो ही तुम्हारी नीद टूटेगी। हथौडी की तरह तुम चोट मारते ही रहो कि मैं जागा हुआ ही सब कुछ करूगा। और अगर कभी तुम कोई काम कर रहे हो—समझो कि तुम स्नान कर रहे हो, और भूल गये, स्मृति खो गई, ऐसे ही कर लिया यत्रवत्, डाल लिया पानी बिना होश के, जैसे ही याद आ जाये, फिर से स्नान करो, जागकर करो। उतनी सजा दो कि ठीक इतना समय गया बिना जागे, अब फिर से जागकर करेंगे।

ऐसा हुआ कि बुद्ध जब बुद्ध न हुए थे, तब एक गांव से गुजर रहे हैं। एक साधक साथ है। एक मक्खी बुद्ध के कान पर आकर बैठ गई। वे साधक से बात कर रहे हैं। उन्होने मक्खी को ऐसे ही मूर्छित, बात को बिना तोडे, होश को बिना मक्खी की तरफ ले जाये, यत्रवत् उडा दिया—जैसा कि हम करते रहते है। कोई जरूरत नही है, नीद मे भी कोई मक्खी बैठ जाये तो तुम उडा देते हो, मच्छर आ जाये तो हाथ हिला देते हो। वह ऑटोमेटिक है, यत्रवत् है। इसमे तुम्हारे होश की कोई जरूरत नही है। लेकिन तत्क्षण बुद्ध को याद आया। वे खडे हो गये। तब मक्खी न थी कान पर, उड चुकी थी। क्योंकि मक्खी थोडे ही फिक्र करती है

कि तुम जागकर उड़ाते हो कि सोये हुए उड़ाते हो। मक्खी तो उड़ गयी थी। बुद्ध खड़े हो गये, बात रोक दी। हाथ को फिर से उठाया और मक्खी को उड़ाया जो थी ही नही। वह जो साधक खड़ा था, उसने कहा, "क्या आपका दिमाग कुछ अस्तव्यस्त हो गया है? यह क्या कर रहे हो? मक्खी तो जा चुकी। वह तो आप उड़ा चुके।" बुद्ध ने कहा, "मक्खी को नही उड़ा रहा हू, अब जागकर उड़ा रहा हू। मक्खी से क्या लेना-देना! लेकिन भूल हो गई, चूक गया। उतना कृत्य मूर्च्छा मे हो गया, नीद में हो गया।"

और जितने कृत्य तुम नीद मे करोगे, उतनी ही नीद इकट्ठी होती चली जाती है। नीद एक गुणधर्म है, एक क्वालिटी है, और जागना भी एक गुणधर्म है। ये चेतना के दो ढग हैं।

तो तुम जो भी करो, हाथ का इशारा भी करो यह हाथ मैंने उठाया, यह हाथ मैं ऐसे ही उठा सकता हू--यन्त्रवत्, और यह हाथ मै जागकर भी उठा सकता हू। तुम दोनो तरह करके देखना। जब तुम जागकर उठाओगे तब तुम पाओगे कि हाथ के उठने का गुणधर्म और है। हाथ बडे माधुर्य से उठेगा, एक शालीनता होगी उसमे क्योकि होश होगा। और भीतर हाथ बड़ा विश्राम मे रहेगा, तनाव नही होगा। हाथ ऐसे उठेगा जैसे परमात्मा उठा रहा है, तुम जैसे सिर्फ उपकरण हो। अगर तुमने मूर्च्छा मे उठाया, तो हाथ हिंसा के ढग से उठेगा, उसमे झटका होगा, वह शालीन न होगा। उसमे प्रसाद न होगा, माधुर्य न होगा। और उसके भीतर एक तनाव होगा। जैसे-जैसे तुम जागोगे, तुम पाओगे, तुम्हारा शरीर थकता ही नही, क्योकि जागकर सब चीजे इतनी शान्ति और माधुर्य से भर जाती है, तनाव नही रह जाता। इसलिए थकान नही रह जाती। जितने तुम सोये-सोये जीओगे उतना तनाव रहता है। जितना तनाव रहता है उतने तुम थक जाते हो। थकान श्रम के कारण नही आ रही है, तुम्हारी मूर्च्छा के कारण आ रही है। इसलिए तो बुद्धपुरुषो को तुम सदा ताजा पाओगे, जैसे अभी-अभी स्नान करके आये हो। उनके ऊपर तुम सुबह की छाप पाओगे। उनके शब्दो मे तुम ओस की ताजगी पाओगे, जैसे सब नया-नया है, सब अभी-अभी है, कुछ भी बासा नही है, कही धूल नही जम पाती। उनकी आखो मे तुम्हे झलक मिलेगी--शान्त झील की। उनके सारे व्यक्तित्व मे तुम्हे दर्पण की तरह गहराई, अनन्त गहराई और अनन्त ताजगी झलकेगी! एक कुआंरापन तुम्हे बुद्धपुरुषो के पास मिलेगा। इसे धीरे-धीरे तुम भी अनुभव कर सकते हो, जैसे-जैसे जागो।

इसको ही तुम अपनी साधना बना लो उठोगे, बैठोगे, बात करोगे, हसोगे

रोओगे—मगर जागकर करोगे। कभी जागकर हसना, तुम तत्क्षण फर्क पाओगे।
फर्क भारी है जब तुम ऐसे ही हस देते हो मूर्च्छा मे, तब तुम्हारा हसना पागल जैसा होता है, हिस्टीरिकल होता है। और जब तुम जागकर हसोगे, तब तुम पाओगे, हसने का गुणधर्म बदल गया, उसमे पागलपन नहीं है, उसमें एक बडी मधुरिमा है। वह तुम्हारी विक्षिप्तता से नही आ रहा है, तुम्हारी सजगता से आ रहा है। और तुम्हारे हसने की हिंसा खो जाएगी, धीरे-धीरे तुम्हारी हसी मुस्कान मे बदलने लगेगी। धीरे-धीरे तुम्हारी हसी मुस्कान से भी गहरी हो जाएगी। एक ऐसी घडी आयेगी कि हसी तुम्हारी मुखाकृति का अग हो जाएगी। तुम पागल की तरह हसोगे नही, तुम मुस्कराओगे भी न। चौबीस घटे हसी का एक भाव, जैसे फूलो की एक गध तुम्हारे चेहरे को घेरे रहेगी, तुम हसे हुए रहोगे। जो जानेगा वही जान पाएगा कि तुम कैसे प्रफुल्लित हो! तुम्हारी प्रफुल्लता गहन हो जाएगी, मौन हो जाएगी।

झरने जब उथले होते हैं तो शोरगुल करते हैं। जब नदी गहरी हो जाती है तो कोई शोरगुल नही होता। इसलिए तो हमें कुछ पता नही कि बुद्ध हसते हैं कि नही, कि महावीर हसे या नही, कि जीसस हसे या नही। पता न होने का कारण यह नही है कि वे नहीं हसे, पता न होने का कारण इतना ही है कि उनकी हसी इतनी गहरी है कि तुम उसे देख न पाओगे। वह अदृश्य मे लीन हो गई है। वे चौबीस घटे प्रफुल्लित हैं। तुम हसते हो—चौबीस घटे दुख मे घिरे हुए। तुम्हारी हसी दुख मे एक टापू की तरह होती है—दुख के सागर मे एक टापू। बुद्ध की हसी एक महाद्वीप है—वह चौबीस घटे है।

साधना तो वही जो अखड है। जागो अखडता से। और एक दिन तुम अचानक पाओगे कि रात तुम तो सो गये हो और फिर भी जाग रहे हो। अगर तुमने दिन के हर कृत्य मे जागरण को साधा, एक दिन तुम अचानक पाओगे कि शरीर तो सो गया है, तुम जागे हो। कृष्ण उसी को योगी कहते हैं गीता मे जब सब सो जाये, जब सब की रात हो तब भी जो जागा रहे, वही योगी है। निश्चित ही कृष्ण ने ठीक परिभाषा पकडी। वही परिभाषा है योगी की निद्रा मे भी जो जागा रहे। वह जागे मे तो जागा ही रहेगा, निद्रा मे भी जो जागा है, अखड है उसके जागने का स्वर।

'मैं कहता तू जागत रहियो, तू रहता है सोई रे। मैं कहता निरमोही रहियो, तू जाता है मोहि रे।' मोह निद्रा का अग है। वह एक तरह की नीद है। निर्मोह जागृति की छाया है, वह जागरण का अग है।

तुम अगर निर्मोही बनने की कोशिश करो, बिना जागने की कोशिश के, तो

तुम्हारा निर्मोह बड़ा कठोर और पाषाणवत् हो जाएगा। अगर तुम निर्मोही बनने की कोशिश करो बिना जागे हुए, तो तुम्हारा निर्मोह होना एक तरह की हिंसा होगी, जबरदस्ती होगी, निर्मोहिता तो कम होगी, कठोरता ज्यादा होगी। तुम अपनी पत्नी को छोड़ सकते हो, कह सकते हो कि मैं निर्मोही हो गया, लेकिन उस निर्मोह में प्रेम न होगा, घृणा होगी। अगर तुम जागते हो, तो भी तुम निर्मोही हो जाओगे एक दिन, लेकिन उस निर्मोह में परम करुणा होगी, प्रेम होगा। तुम चीजों को तोड़कर नही हट जाओगे, तुम हटोगे भी तो भी चीजों को जोड़े रखोगे। और अगर तुम्हारे जागरण से तुम्हारा निर्मोह आया है—तुम्हारी पत्नी भी समझेगी, तुम्हारे बच्चे भी समझेगे कि इस निर्मोह में कठोरता नहीं है। निर्मोह तो बड़ा मृदुल है, बड़ा प्रीतिपूर्ण है।

इसलिए कबीर या मैं तुम्हे निर्मोही बनने को नही कह रहे हैं। इसलिए कबीर ने पहले तो जागने की बात कही कि 'मैं कहता तू जागत रहियो,' फिर कहा कि 'मैं कहता तू निरमोही रहियो, तू जाता है मोहि रे।'

'जुगन जुगन समुझावत हारा, कहा न मानत कोई रे।' और कबीर कहते हैं, कितने युगो से समझा रहा हू। बुद्धपुरुष युगों से समझा रहे हैं, हर युग मे समझाते रहे हैं। यह कबीर कोई अपने ही बाबत नही कह रहे हैं। कबीर जैसे व्यक्ति जब बोलते हैं तो अपने बाबत नहीं बोलते, वे तो सारे बुद्धपुरुषो के बाबत बोल रहे हैं।

'जुगन जुगन समुझावत हारा, कहा न मानत कोई रे।'

'तू तो रंडी फिरै बिहंडी, सब धन डार्या खोई रे।'

मन वेश्या की तरह है। किसी का नही है मन आज यहा, कल वहा, आज इसका कल उसका। मन की कोई मालकियत नही है। और मन की कोई ईमानदारी नही है। मन बहुत बेईमान है। वह वेश्या की तरह है। वह किसी एक का होकर नही रह सकता। और जब तक तुम एक के न हो सको, तब तक तुम एक को कैसे खोज पाओगे? न तो प्रेम में मन एक का हो सकता है, न श्रद्धा मे मन एक का हो सकता है—और एक के हुए बिना तुम एक को न पा सकोगे। तो कही तो प्रशिक्षण लेना पड़ेगा—एक का होने का।

इसी कारण पूरब के मुल्को ने एक पत्नीव्रत को या एक पतिव्रत को बड़ा बहुमूल्य स्थान दिया। उसका कारण है। उसका कारण सासारिक व्यवस्था नही है। उसका कारण एक गहन समझ है। वह समझ यह है कि अगर कोई व्यक्ति एक स्त्री को प्रेम करे, और एक ही स्त्री का हो जाये, तो शिक्षण हो रहा है एक के होने का। एक स्त्री अगर एक ही पुरुष को प्रेम करे और समग्र भाव से उसकी हो

रहे कि दूसरे का विचार भी न उठे, तो प्रशिक्षण हो रहा है, तो घर मदिर के लिए शिक्षा दे रहा है, तो गृहस्थी मे संन्यास की दीक्षा चल रही है। अगर कोई व्यक्ति एक स्त्री का न हो सके, एक पुरुष का न हो सके, फिर एक गुरु का भी न हो सकेगा; क्योकि उसका कोई प्रशिक्षण न हुआ। जो व्यक्ति एक का होने की कला सीख गया है ससार मे, वह गुरु के साथ भी एक का हो सकेगा। और एक गुरु के साथ तुम न जुड पाओ, तो तुम जुड ही न पाओगे। वेश्या किसी से भी तो नही जुड पाती। और बडी आश्चर्य की बात तो यह है कि वेश्या इतने पुरुषो को प्रेम करती है, फिर भी प्रेम को कभी नही जान पाती।

अभी एक युवती ने सन्यास लिया। वह आस्ट्रेलिया मे वेश्या का काम करती रही। उसने कभी प्रेम नही जाना। यहा आकर वह एक युवक के प्रेम मे पड गई, और पहली दफा उसने प्रेम जाना। और उसने मुझे आकर कहा कि इस एक प्रेम ने ही मुझे तृप्त कर दिया, अब मुझे किसी की भी कोई जरूरत नही है। और उसने कहा कि आश्चर्यों का आश्चर्य तो यह है कि मैं तो बहुत पुरुषो के सबध मे रही, लेकिन मुझे प्रेम का कभी अनुभव ही नही हुआ। प्रेम का अनुभव हो ही नही सकता बहुतो के साथ। बहुतो के साथ केवल ज्यादा-से-ज्यादा शरीर का भोग, उसका अनुभव हो सकता है। एक के साथ आत्मा का अनुभव होना शुरू होता है, क्योंकि एक मे उस परम एक की झलक है। छोटी झलक है, बहुत छोटी, लेकिन झलक उसी की है।

आकाश मे चाद निकलता है—सागर मे भी प्रतिबिम्ब बनता है, छोटी-छोटी तलैयो में भी प्रतिबिम्ब बनता है चाद वही है, तलैया छोटी सही, प्रतिबिम्ब तो वही है। कोई फर्क तो नही है तलैया के प्रतिबिम्ब मे और सागर के प्रतिबिम्ब मे। इसलिए पूरब के मुल्को ने, विशेषकर भारत ने, इस पर बडा आग्रह किया कि एक स्त्री एक ही पुरुष मे लीन हो जाये, एक पुरुष एक ही स्त्री मे लीन हो जाए। इससे एक का प्रशिक्षण होगा।

प्रेम पहला कदम है—एक की शिक्षा का। फिर श्रद्धा दूसरा कदम है कि एक गुरु मे लीन हो जाये। फिर प्रार्थना अतिम कदम है कि एक परमात्मा मे लीन हो जाये। प्रेम, श्रद्धा, प्रार्थना—ऐसी सीढिया हैं।

'तू तो रडी फिरै बिहडी'—कबीर कहते हैं कि तू तो वेश्या की भाति है। वे शिष्य को कह रहे हैं। और इस तरह अपना ही नाश कर रहा है। 'सब धन डार्‌या खोई रे।' और अपना ही धन खो रहा है—आत्म-धन खो रहा है, अपने अस्तित्व को खो रहा है अपने को गवा रहा है।

'सतगुरु धारा निरमल बाहै, वामे काया धोई रे।' और सतगुरु की निर्मल धारा बह रही है, उसमें तू काया धोने के लिए तैयार नही, और गदे डबरो मे—वासना के, न मालूम कहा-कहा भटक रहा है।

'तू तो रडी फिरै बिहडी सब धन डार्‌या खोई रे। सतगुरु धारा निरमल बाहै, वामे काया धोई रे। कहत कबीर सुनो भाई साधो, तब ही वैसा होई रे।'

और अगर तू सत्‌गुरु की निर्मल धारा मे नहा ले, तू सत्‌गुरु जैसा ही हो जाएगा। और जब शिष्य गुरु जैसा होता है, उसी क्षण एक और द्वार खुलता है, जो आखिरी द्वार है। जब शिष्य गुरु जैसा होता है, तभी परमात्मा का द्वार खुल जाता है।

तो गुरु बडा पडाव है। वह कोई आखिरी मजिल नही है, वहा रुक नही जाना है। मगर वहा से गुजरे बिना कोई आगे नही जाता है। वह बडा पडाव है, और जितनी जल्दी उसमे डूब जाओ, उतनी जल्दी उसके पार हो जाते हो। गुरु के बाद परमात्मा ही बचता है, और कुछ नही बचता है। और गुरु के पहले केवल ससार है, परमात्मा नही है। गुरु मध्य मे खडा है, इस पार ससार है, उस पार परमात्मा है। जो गुरु मे लीन हो जाता है, वह तत्क्षण परमात्मा की तरफ गतिमान हो जाता है।

'सतगुरु धारा निरमल बाहै, वामें काया धोई रे। कहत कबीर सुनो भाई साधो, तब ही वैसा होई रे॥' और कोई अडचन नही है, वैसा हो जाने मे, क्योकि वस्तुत गहनतम स्वभाव मे तुम अभी भी वैसे ही हो—तभी तो वैसे हो सकते हो। जो तुम हो वही तो हो सकते हो। जो तुम नही हो, वह तुम कभी भी न हो सकोगे। तुम गुरु के साथ एक हो सकते हो, क्योकि तुम्हारे भीतर सद्‌गुरु छिपा है। तुम परमात्मा के साथ एक हो सकते हो, क्योकि तुम्हारे भीतर परमात्मा का आवास है।

'कस्तूरी कुडल बसै।'

★ ★ ★

शिष्यत्व महान क्रान्ति है

आठवां प्रवचन

दिनांक १८ मार्च, १९७५; प्रातःकाल, श्री रजनीश आश्रम, पूना

गूगा हूवा बावला, बहरा हूवा कान ।
पाऊ थै पगुल भया, सतगुरु मार्‍या बान ।।

माया दीपक नर पतग, भ्रमि भ्रमि इवै परत ।
कहै कबीर गुरु ग्यान थै, एक आध उबरत ।।

पासा पकडा प्रेम का, सारी किया सरीर ।
सतगुरु दाव बताइया, खेलै दास कबीर ।।

कबिरा हरि के रुठते, गुरु के सरने जाय ।
कह कबीर गुरु रुठते, हरि नहि होत सहाय ।।

या तन विष की बेलरी, गुरु अमृत की खान ।
सीस दिये जो गुरु मिलै, तो भी सस्ता जान ।।
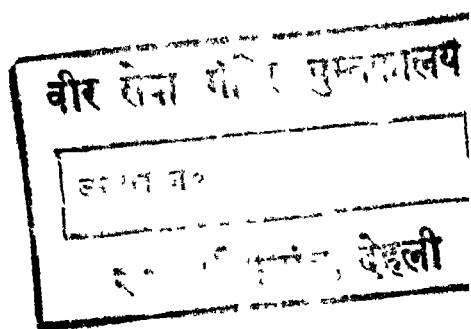
ज्या जैकस रूसो (Jean Jacques Rousseau) का एक प्रसिद्ध वचन है—वचन है कि मनुष्य स्वतन्त्रता मे पैदा होता है और परतन्त्रता में जीता है। वह वचन बहुत गहरा नही है।

ऊपर से देखने पर ऐसा ही लगता है कि मनुष्य स्वतन्त्रता मे पैदा होता है, और फिर समाज, राजनीति, सभ्यता, सस्कृति, हजार तरह की परतन्त्रताओ मे उसे बाध देती हैं।

और गहरे देखने पर पता चलता है कि मनुष्य परतन्त्रता मे ही पैदा होता है। जो स्वतन्त्र है, वह तो फिर पैदा होता ही नही, उसका तो फिर आवागमन नहीं होता। जो बधा है, वही ससार मे आता है। जो अन-बधा है, उसके आने का उपाय ही समाप्त हो जाता है। बन्धन ही ससार में लाता है।

इसलिए बच्चे भी परतन्त्रता मे ही पैदा होते हैं, यद्यपि बच्चे बेहोश हैं और उन्हे अपनी परतन्त्रता का पता लगते-लगते समय बीत जायेगा। जब उन्हे पता चलेगा कि वे परतन्त्र है, तभी वे जानेगे। यह देरी इसलिए होती है जानने मे कि बच्चे के पास अपना कोई होश नही है, जब होश आएगा तभी पता चलेगा कि मैं परतन्त्र हू।

और बहुत थोडे-से लोग ही जान पाते हैं कि वे परतन्त्र हैं। अधिक लोग तो ऐसे ही जी लेते हैं जैसे वे स्वतत्र थे। परतन्त्र ही मरते हैं, परतन्त्र ही पैदा हुए थे और परतन्त्रता का चाक चलता ही रहता है। परतन्त्रता राजनैतिक हो तो तोड देना बहुत आसान है। हजारो राजनीतिक क्रान्तिया होती रहती हैं, आदमी की परतन्त्रता नही टूटती। परतन्त्रता आर्थिक हो तो समाजवाद, साम्यवाद उसे मिटा देते, लेकिन रूस और चीन मे नयी परतन्त्रताए निर्मित हो गईं। और मजे की बात तो यह है कि नयी परतन्त्रता की जजीर पुरानी परतन्त्रता से ज्यादा मजबूत होती है। पुरानी परतन्त्रता की जजीरे तो जीर्ण-शीर्ण हो जाती हैं, नयी जजीर बिलकुल अभी-अभी ढाली होती है, ज्यादा मजबूत होती है। लेकिन नयी परतन्त्रता

को आदमी स्वीकार कर लेता है स्वतन्त्रता के खयाल से, और जजीर को आभूषण समझ लेता है। थोड़े दिन चलता है यह नशा, फिर टूट जाता है। फिर क्रान्ति की जरूरत आ जाती है।

बाहर के जगत में रोज क्रांति की जरूरत रहेगी, और क्रांति कभी होगी नहीं। असली परतत्रता भीतरी है, न राजनीतिक है, न आर्थिक है, न सामाजिक है। असली परतत्रता आध्यात्मिक है। तुम परतत्र हो, तुम्हे किसी ने परतत्र बनाया नही है। तुम्हारे जीवन का ढग ही परतत्रता को पैदा करनेवाला है। तुम स्वतत्र होने को तैयार ही नही हो, स्वतत्र होने की क्षमता और साहस ही तुममे नही है। इसलिए कौन तुम्हारे लिए परतत्रता की जजीरे ढाल देगा, इससे बहुत फर्क नही पडता, कोई न कोई ढालेगा। तुम्हारी जरूरत है परतत्रता। इसलिए मैं कहता हू रूसो की जगह, हर आदमी परतत्र ही पैदा होता है। और करोड मे कभी कोई एक व्यक्ति जागता है कि वह परतत्र है, शेष तो परतत्रता मे ही जीते हैं और परतत्रता मे ही समाप्त हो जाते हैं। उन्हे पता ही नही चलता कि वे परतत्र थे।

और यह पता ही न चले कि हम परतत्र हैं, तो स्वतत्रता का उपाय कैसा? फिर तुम परतत्र लोगो के भीड मे ही जीते हो। वहा कौन तुमसे कहेगा? वे सभी कारा-गृह के कैदी हैं। उनमे से किसी ने भी स्वतत्रता को चखा नही। उन्हे कुछ भी पता नहीं है उस मुक्त आकाश का। वे अपने पखो पर कभी उडे नही। वे सभी पिजरो मे बद कैदी हैं। उनमे से किन्ही के पिजरे लोहे के हैं–वे गरीब कैदी हैं, किन्ही के पिजरे सोने के हैं–वे अमीर कैदी हैं, किन्ही के पिजरो में हीरे-जवाहरात लगे हैं–वे सम्राट कैदी हैं लेकिन कैदी सभी हैं, और सभी ने उडने की क्षमता खो दी है। आज अचानक कोई पिजरे का द्वार भी खोल दे, तो भी तोता उडेगा नही, उडना ही भूल गया है। पिजरा ही तो नही उसे परतत्र बना रहा है, अब तो परतत्रता और भी गहन है–पखो ने उडने की क्षमता खो दी है, भरोसा भी खो दिया है। और अगर उड भी जाये तोता तो मुश्किल में पडेगा। पिजरे में तो जिन्दा रह सकता था, बाहर जिन्दा न रह सकेगा, बाहर के सघर्ष को सह न सकेगा। हजार पक्षी हैं। बाहर मार डाला जायेगा। पिजरे में तो प्राण बचे थे, परतत्रता ही सही, लेकिन सुरक्षा थी। बाहर सुरक्षा भी नही है। और जो उड नही सकता है ठीक से अपने पखो पर, वह कही भी किसी का भी शिकार हो जाएगा। पिजरे मे रहा तोता मुक्त होकर केवल मरता है, परतत्र होकर जी सकता है। इसलिए तो परतत्रता छोडने मे इतनी घबडाहट होती है। क्योकि पर-तत्रता अगर अकेली परतत्रता होती तो तुम उसे कभी का तोड देते। वह जीवन

को बचाने की व्यवस्था भी है। ये पिंजरे के चारों तरफ लगे हुए सींकचे तुम्हें उड़ने से ही नहीं रोक रहे हैं, शत्रुओं को भीतर आने से रोक रहे हैं। उनका काम दोहरा है।

स्वतन्त्र होने के लिए पहले तो प्रशिक्षण चाहिए—पिंजरे के भीतर ही कोई सिखाने-वाला चाहिए, जो पखों का बल लौटा दे, जो भीतर की आत्मा को आश्वस्त कर दे। इसके पहले कि तुम उड़ो खुले आकाश में, कोई चाहिए जो तुम्हे खुले आकाश मे उड़ने की योग्यता दे दे। गुरु का यही अर्थ और प्रयोजन है। गुरु का अर्थ है कारागृह में तुम्हे कोई मिल जाये, जिसने स्वतन्त्रता का स्वाद चखा है। कारागृह के बाहर तो बहुत लोग हैं, जिन्हे स्वतन्त्रता का स्वाद है, लेकिन वे कारागृह के बाहर हैं, उनसे तुम्हारा सबध न हो सकेगा। बुद्ध हैं, महावीर है, कृष्ण हैं, क्राइस्ट हैं—अब सब कारागृह के बाहर हैं। अब उनसे तुम्हारा मिलन नहीं हो सकता। वे कारागृह के भीतर नहीं आ सकते, क्योंकि वे परिपूर्ण स्वतन्त्र हो गये हैं। अब उनका जन्म नही हो सकता। तुम कारागृह के बाहर नही जा सकते, क्योंकि बाहर जाने की योग्यता ही होती तो कृष्ण का और क्राइस्ट का और राम का और महावीर का सहारा ही जरूरी न था।

गुरु का अर्थ है ऐसा व्यक्ति जो अभी कारागृह मे है और मुक्त हो गया है। उसकी भी नाव किनारे आ लगी है। जल्दी ही वह भी यात्रा पर निकल जायेगा। थोड़ी देर और वह किनारे पर है। वह तुम्हारे ही जैसा है, लेकिन अब तुमसे बिलकुल भिन्न हो गया है। तुम जहा खड़े हो, वहीं वह खड़ा है। जल्दी ही तुम उसे वहा न पाओगे, क्योंकि जिसके पख पूरे खुल गये, और जिसने स्वतन्त्रता का स्वाद भी चख लिया, अब वह ज्यादा देर परतन्त्रता मे न रुक सकेगा। थोड़ी देर और, और वह अपनी नाव पर सवार हो जाएगा। फिर वह भी कारागृह के बाहर होगा।

तो गुरु का क्या अर्थ है?

गुरु का अर्थ है ऐसी मुक्त हो गई चेतनाए जो ठीक बुद्ध और कृष्ण जैसी हैं, लेकिन तुम्हारी जगह खड़ी हैं, तुम्हारे पास हैं। कुछ थोड़ा-सा ऋण उनका बाकी है—शरीर का, उसके चुकने की प्रतीक्षा है। बहुत थोड़ा समय है यह।

बुद्ध को चालीस वर्ष मे ज्ञान हुआ। चालीस वर्ष वे और रुके। उन चालीस वर्षों मे उनके शरीर के जो ऋण शेष थे, वे चुक गये। ऋण चुकते ही नाव खुल जाएगी। फिर तुम उन्हे खोज न पाओगे। फिर वे जैसे धुआ विलीन हो जाता है आकाश मे, ऐसे वे विलीन हो जाएगे। जैसे गध उड़ जाती शून्य मे, वैसे वे उड़ जाएगे। फिर तुम उन्हें कहीं भी खोज न पाओगे। फिर तुम्हे कही उनकी रूपरेखा

न मिलेगी। फिर उनका स्पर्श सम्भव न होगा।

मुक्त हो जाने के बाद, शरीर का ऋण चुकाने की जो थोडी-सी घडिया हैं, उन थोडी ही घडियो मे गुरु का उपयोग हो सकता है। फिर तुम लाख महावीर को चिल्लाते रहो, फिर तुम लाख बुद्ध को पुकारते रहो—बहुत सार्थकता नही है।

सद्गुरु का अर्थ है मध्य के बिन्दु पर खडा व्यक्ति, जिसका पुराना ससार समाप्त हो गया, नया शुरू होने को है। पुराने का आखिरी हिसाब-किताब बाकी है—वह हुआ जा रहा है, जैसे ही वह पूरा हो जाएगा । भीतर से तो बात समाप्त हो गई है, लेकिन शरीर के सम्बन्ध उतने जल्दी समाप्त नही होते। शरीर पैदा हुआ था सत्तर साल या अस्सी साल जीने को। मा-बाप के शरीर से उसे अस्सी साल जीने की क्षमता मिली थी, और व्यक्ति चालीस साल मे मुक्त हो गया, तो शरीर की क्षमता चालीस साल और शरीर बनाये रखेगी। अब वह जीयेगा मृत की भाति यहा होगा, और नही होगा।

गुरु एक पैराडॉक्स है, एक विरोधाभास है वह तुम्हारे बीच और तुमसे बहुत दूर, वह तुम जैसा और तुम जैसा बिलकुल नही, वह कारागृह मे और परम स्वतत्र। अगर तुम्हारे पास थोडी-सी भी समझ हो तो इन थोडे क्षणो का तुम उपयोग कर लेना, क्योकि थोड़ी देर और है वह, फिर तुम लाख चिल्लाओगे सदियो-सदियो तक, तो भी तुम उसका उपयोग न कर सकोगे।

और आदमी अद्भुत है। जब बुद्ध मौजूद होते हैं, तब वह उन्हे चूक जाता है। तब वह निर्णय ही नही कर पाता। तब वह यह सोचता है कल निर्णय कर लेगे, परसो निर्णय कर लेगे, और फिर सदियो तक रोता है। पर वे सब आसू मरुस्थल मे खो जायेगे। उन आसुओ से साधना न जन्मेगी। उनसे, अतीत मे तुम जो चूक गये हो, उसका पश्चात्ताप तो प्रकट होता है, लेकिन बुद्ध के साथ कोई सेतु न बन सकेगा। खोजना पडेगा तुम्हे किनारे पर कोई और, जिसकी नाव आ लगी है, पूछना पडेगा उससे, समर्पित होना होगा उसके प्रति, उसके हाथ मे अपने को छोड देना होगा। समर्पण की इसलिए जरूरत पड जाती है कि उसकी भाषा और, तुम्हारी भाषा और। और उसके पास ज्यादा समय नही है कि तुम्हे समझाये। तुम्हारे पास तो बहुत समय है समझने को, क्योकि बहुत बार जन्मोगे, पर उसके पास ज्यादा समय नही समझाने को। जो बिलकुल समझने को तैयार हैं, उसको ही वह समझा सकेगा। उसके पैर तो पड चुके हैं शरीर के बाहर जाने को अब गया, तब गया।

बुद्ध का एक नाम है तथागत। तथागत का मतलब होता है अब गया, तब

गया; जैसे हवा का झोंका आता है—आया और गया!

मैं एक कविता पढ़ रहा था। शब्द का खेल मुझे प्रीतिकर लगा। बसंत पर किसी ने एक कविता लिखी और मुझे भेजी। पहली पंक्ति है : बसंत . आ गया। दूसरी पंक्ति है बसंत आ.. . गया। ठीक लगा। इतनी ही देर है। बसंत आ गया और बसंत आ गया। इतनी ही देर में गुरु को खोज लिया, खोज लिया। बस 'आ गया' और 'आ गया' के बीच जितना फासला है, उतना ही फासला है। हवा की एक लहर है पकड़ लिया, पकड़ लिया, हो गये सवार उस पर, हो गये सवार, चूक गये, चूक गये! फिर पछताने से कुछ भी नहीं होता।

मनुष्य कारागृह मे है। कोई चाहिए जो कारागृह मे हो और जिसने स्वतन्त्रता जान ली हो—ऐसा ही अनूठा जोड़ गुरु है। कारागृह मे तुम्हें कौन बतायेगा बाहर जाने का राज? जो कारागृह के ही वासी हैं, उन्हे कारागृह का सब पता होगा; लेकिन बाहर जाने का कोई द्वार उन्हे पता नही। उन्हे यह भी पता नही कि बाहर कुछ है भी। उन्हे यह भी पता नही कि बाहर जाना हो सकता है। और उन्हे पता भी चल जाये तो भी बाहर उन्हें डरायेगा, भयभीत करेगा।

सौ वर्ष पहले, फ्रान्स के क्रान्तिकारियो ने फ्रान्स का एक किला तोड़ दिया—बैस्टील (Bastille)। उसमे बड़े जघन्य अपराधी थे। वह फ्रान्स के सबसे बड़े अपराधियों के लिए कारागृह थी। कोई चालीस साल से बंद था, कोई पचास साल से। किसी ने रजत-जयन्ती पूरी कर ली थी, किसी ने स्वर्ण-जयन्ती भी पूरी कर ली थी। वहा आजन्म कैदी थे। उनके हाथो पर बड़ी मजबूत जंजीरें थी, क्योकि वे मरने के बाद ही खुलनेवाली थी। उनमे कोई ताला नहीं था, कोई चाबी नही थी। वे तो जब कैदी मर जाता था तो उसके हाथ को तोड़कर ही बाहर निकाली जाती थीं। उनके पैरो मे भयंकर बेड़िया थी, जिनको एक आदमी के बस के बाहर था कि उठा ले। चलना भी उनके लिए सम्भव न था। वे अपने कारागृह की कोठरियो में—अंध कोठरियो मे—जहा न तो बाहर का आकाश दिखाई पड़ता, न कभी बाहर के सूरज की कोई झलक आती, न कोई हवा का झोंका बाहर की खबर लाता। बसंत आये कि पतझड़, भीतर सब एक-सा ही अंधेरा बना रहता। सुबह हो कि रात, कुछ भेद नहीं होता। उनकी अंध कोठरियो मे बंद, कीड़े-मकोड़ो की तरह वे जीये थे। क्रांतिकारियो ने किला तोड़ दिया, और क्रान्तिकारियो ने सोचा कि बड़े अनुगृहीत होंगे कैदी, अगर हम उन्हे मुक्त कर दें। उन्होने मुक्त किया, लेकिन कैदियो ने बड़ी नाराजगी जाहिर की। कैदियो ने कहा, "हम बाहर नहीं जाना चाहते।"

"पचास साल से मैं यहा हू", किसी कैदी ने कहा, "और अब बाहर जाना? अब फिर से दुनिया मे उतरना?—इस उम्र मे थोडा कठिन है। यहा तो समय पर खाना मिल जाता है। सब व्यवस्थित जीवन है। वहा बाहर कहा रोटी कमाऊगा, कहा छप्पर खोजूगा सोने के लिए? और फिर मेरी आखें अधेरे की आदी हो गई हैं, प्रकाश मे बहुत पीडा पाएगी। और फिर यह देह जजीरो से सहमत हो गई है, बिना जजीरो के तो मैं सो भी न पाऊगा। ये जजीरे तो मेरे शरीर का हिस्सा हो गई हैं—पचास साल, पूरा जीवन!"

लेकिन क्रान्तिकारी किसी की सुनते हैं? क्रान्तिकारी तो क्रान्ति पर उतारू रहते हैं। उन्हे इससे मतलब भी नही कि क्रान्ति जिसके लिए कर रहे है, वह राजी भी है या नहीं। उन्हे क्राति करनी है। वे क्रांति करके ही माने। उन्होने जबरदस्ती कैदियो की जजीरे तुडवा दी, उनको बाहर निकाल दिया। आधे कैदी रात होते-होते वापस लौट आये, और उन्होने कहा, "हमारी कोठरिया हमे वापस दो। बाहर बहुत घबराहट लगती है। न कोई प्रियजन है, न कोई परिचित रहा अब। कहां खोजे? सब पता-ठिकाना खो गया है। और बाहर की दुनिया इतनी बदल गई है। हम जब छोडकर आये थे तो कोई और ही दुनिया छोडकर आये थे, यह तो कुछ और ही हो गया है। और शोरगुल और आवाज—बडी अशाति मालूम पडती है, और बडी असुरक्षा। न हमे कोई जानता, न हम किसी को जानते। हमारी भाषा और, और उनकी भाषा और। अब तालमेल नही बैठेगा।"

अगर दरवाजा खुला भी हो कारागृह का—और मैं कहता हू खुला है, उस पर कोई पहरेदार नही बैठे—तो भी तुम दरवाजे को देखते नही। दिख भी जाये तो तुम बचकर निकल जाते हो, क्योकि तुम्हारी बेडियो मे तुम्हारी सुरक्षा है। और फिर तुमने धीरे-धीरे अपने कारागृह को खूब सजा लिया है, और अब वह घर जैसा है। तुमने दीवालो पर रग-रोगन कर लिया है, फूल-बूटे बना लिये हैं, 'लाभ-शुभ' लिख दिया है—तुमने बिलकुल घर बना लिया है। अब कहा तुम्हे घर से उजड़ने की हिम्मत रही। तुम पूरे सुरक्षित हो गये हो अपनी परतन्त्रता मे। भला वह कब्र हो, लेकिन तुमने उसे अपना शयन-कक्ष बना लिया है। भला वहा तुम सिर्फ मर रहे हो, जी नही रहे हो, फिर भी जीने का भय मालूम होता है, बाहर जाने मे घबडाहट लगती है।

कौन तुम्हें बाहर ले जाये?

जिन कैदियो के साथ तुम हो, वे भी तुम जैसे कैदी हैं। तुम एक-दूसरे का पारस्परिक सहयोग करते रहते हो। कैदी एक-दूसरे से कहते रहते हैं, 'यह कोई कारा-

गृह थोडे ही है, नौ लाख का सरकारी भवन है।' कैदी एक-दूसरे को समझाते हैं कि हम कोई कैदी थोडे ही हैं, अतिथि हैं, सरकारी अतिथि !

कैदी एक दफा कारागृह में रह आये तो फिर वापस बार-बार लौटता है, बाहर अच्छा नही लगता, जल्दी कोई उपाय करके फिर लौट आता है। दुनिया उसकी भीतर है, प्रियजन, सगे-सबधी भीतर हैं, असली परिवार भीतर है। कारागृह के लोग अपने को समझा लेते हैं कि वे बडे प्रसन्न हैं, बडे आनन्दित हैं।

तुमने भी ऐसे ही अपने को समझा लिया है। दुख हो तो तुम कहते हो, 'यह कोई दुख थोडे ही है। सुख के लिए तो दुख झेलना ही पडता है। यह तो सुख पाने का उपाय है।' तुम आशा को नही मिटने देते। आशा तुम्हारे कारागृह पर सुख का सपना बनकर छाई हुई है। रात हो अधेरी तो तुम कहते हो, सुबह होने के करीब है। हालाकि सुबह तुम्हारे जीवन में कभी नही हुई, रात-ही-रात है, लेकिन तुम अपने को समझा लेते हो, कि जब गहन अधेरी रात होती है, तो सबूत है कि सुबह होने के करीब है। और तुमने ऐसी कहावतें बना ली हैं कि 'अधेरे-से-अधेरे, काले-से-काले बादल मे भी छिपी हुई रजत-रेखा की भाति बिजली है, और हर काटे के पास गुलाब का फूल है। चिन्ता है थोडी, माना, लेकिन हर चिन्ता के बाद आनद की सम्भावना है।

आशा कारागृह के बाहर नहीं जाने देती पता नही, तुम बाहर जाओ तभी कुछ घट जाये! आशा तुम्हे भीतर बाधे रखती है। कोई पहरेदार नही है तुम्हारे कारागृह पर, आशा का पहरा है। तुम अपने ही कारण भीतर रुके हो। और भीतर सभी कैदी एक-सी भाषा बोलते हैं। वे सब एक-दूसरे को सभाले रखते हैं।

कौन तुम्हे वहा जगाएगा?

गुरु का अर्थ है जो कारागृह मे रहा हो अब तक और अचानक जाग गया है। गुरु का अर्थ है जिसने किसी भीतर के मार्ग से कारागृह से बाहर होने का उपाय खोज लिया। गुरु का अर्थ है जिसने कोई सेंध लगा ली है, और जो बाहर के खुले आकाश को देख आया है, फूलो की सुगध ले आया है, पक्षियो के गीत सुन आया है, जो कारागृह के भीतर बाहर के आकाश के एक टुकडे को ले आया है। वह तुम्हे जगा सकता है। वही तुम्हे होश दे सकता है, मार्ग दे सकता है। वही तुम्हे बाहर ले जाने का उपाय दे सकता है और वही तुम्हे तैयार करेगा, इसके पहले कि तुम बाहर जाओ, नही तो बाहर बडी घबडाहट है—तुम वापस लौट आओगे।

कारागृह मे तैयारी करनी होगी। सारे साधन, सारी विधिया वस्तुत मोक्ष की विधिया नही हैं, सिर्फ तुम्हारे पखो को तैयार करने की विधियां हैं। मोक्ष तो अभी

उपलब्ध है, लेकिन तुम अभी तैयार नहीं हो; तुममें और मुक्ति में अभी तालमेल न हो सकेगा। और अगर तुम्हे आज धक्का भी दिया जाये मोक्ष की तरफ तो तुम वापस अपने कारागृह मे लौट आओगे और जोर से कारागृह को पकड़ लोगे, क्योंकि अभी खुला आकाश तुम्हे डरायेगा। कोई तुम्हें कारागृह के भीतर तैयार करे, तुम्हारे पैरों को मजबूत करे, तुम्हारे हाथो को बल दे, तुम्हारे पखो को सम्हाले, और तुम्हारे भीतर की श्रद्धा को सजग करे कि तुम्हें आत्मभाव जग आये, तुम अपने पर भरोसा कर सको, तुम इतने अपने आत्मविश्वास से भर जाओ कि बडे से बडा आकाश भी तुम्हारे आत्मविश्वास से छोटा मालूम पडे—तभी तुम बाहर जा सकोगे।

स्वतत्रता कोई बाहर की घटना नही है, भीतर का भरोसा है। तुम इतने भीतर आनद-भाव से भर जाओ और इतने बल और आत्मभाव से, आत्मभान से कि सब असुरक्षाए तुम्हे कपा न सकें, तुम निर्भय होकर असुरक्षाओ मे गुजर सको, वस्तुत हर असुरक्षा तुम्हे पखो को फैलाने का एक अवसर बनने लगे, हर कठिनाई तुम्हारे लिए एक चुनौती हो जाये, हर आकाश का खुलापन तुम्हारे लिए और दूर तक उडने की दिशा बन जाये। इसके लिए कोई जो तुम्हे तैयार करे, वही गुरु है।

गुरु का अर्थ होता है जो अब बस गया, गया, ज्यादा देर न रहेगा। इसलिए बहुत थोडे लोग गुरु का लाभ ले पाते हैं। फिर अनेको लोग उसकी पूजा करेगे, उसके गीत गाएगे सदियो तक। वह सब व्यर्थ है। उसका कोई सार नही है। वह पछतावा है। उससे तुम अपनी मूढ़ता तो प्रगट करते हो, लेकिन अपनी समझ नही।

कबीर के इन वचनो को समझने की कोशिश करो '

'गूगा हूवा बावला, बहरा हूवा कान। पाऊ थै पगुल भया, सतगुरु मार्‍या बान।।'

जो गूगा था, वह बोलने लगा।

तुम्हारे भीतर कुछ है जो बिलकुल गूगा है। और जो तुम्हारे भीतर बोल रहा है, वह कोई बहुत सार्थक अग नही है। तुम्हारा हृदय तो गूगा है और तुम्हारी खोपडी बोले जाती है। और तुम्हारी खोपडी के बोलने मे कुछ भी सार नही है। वह विक्षिप्त का उन्माद है। वह एक तरह की रुग्ण दशा है। वह सन्निपात है। अगर तुम बैठकर अपने मन को गौर से देखोगे तो तुम पाओगे कि यह क्या बोल रहा है मन, क्यो बोल रहा है? इस कूडे-कर्कट की चर्चा क्यो? मन क्षुद्र के आस-पास घूमता है।

रामकृष्ण कहते थे, 'चील कितने ही ऊपर आकाश में उठ जाये, तो भी नजर

उसकी कूड़े-घर पर पड़े हुए मरे जानवर पर लगी रहती है।' आकाश में उठती हो, तो भी वह आकाश मे उड़ नहीं सकती, नजर तो नीचे जमीन पर, जहां मांस का टुकड़ा पड़ा है, वहीं लगी रहती है। तुम्हारा मन अगर ईश्वर की भी बात सोचे, तो भी तुम गौर करना तुम्हारी नजर कहीं मांस के टुकड़े पर, जमीन पर लगी होगी, तुम ईश्वर से भी मांस का टुकड़ा ही मागोगे।

अगर ईश्वर मिल जाये—कभी तुमने सोचा? सोचने जैसा है, अगर ईश्वर मिल जाये, तो तुम क्या मागोगे? तुम्हारा मन बहुत-सी चीजे बतायेगा, लेकिन सभी कचरे-घर मे पड़े हुए मास के टुकड़े होगे। ईश्वर अगर मिल जाये तो तुम बड़ी मुश्किल मे पड़ जाओगे। तुम कुछ माग ही न पाओगे, अगर समझदार हो, अगर ना-समझ हो तो कुछ कचरा मागकर लौट आओगे। क्या मागोगे?—इसी ससार का कुछ, इसी कड़े-घर से कुछ।

तुम्हारा मन क्या सोचता रहता है, क्या मागता रहता है? क्या चलती रहती है गुनगुन मन के भीतर? क्या है उसका सार-सूत्र? थोड़ा अपने मन को गौर करके देखो ता तुम पाओगे, सार तो कुछ भी नही, असार की ही बकवास चलती रहती है। यह तुम्हारा बोलता हुआ हिस्सा है, मुखर हिस्सा।

कबीर कहते हैं, 'गूगा हुवा बावला ।' लेकिन गुरु के पास जाकर वह हिस्सा बोलना शुरू करता है जो अब तक चुप ही रहा था। अब तक तुमने उसे बोलने का मौका ही न दिया था। और निश्चित ही अगर एक पागल आदमी और एक स्वस्थ आदमी की मुलाकात हो जाये, तो पागल आदमी स्वस्थ को बोलने का मौका ही न देगा। पागल तो आक्रामक होता है, हिंसात्मक होता है। पागल तो बके ही जायेगा, वह अवसर भी न देगा बोलने का।

यहूदी फकीर हुआ बालसेन। उसके पास एक बकवासी आ गया। और फकीरो में कुछ गुण होता है कि बकवासियो को आकर्षित करते हैं। वह बकवासी कोई घटेभर तक बकवास करता रहा। उसने बालसेन को इतना भी मौका न दिया कि वह कहे, बस करो भाई, इतना भी मौका न दिया। वह दो वाक्यो के बीच में सधि ही नही छोड़ता था। तो वह बोले ही जा रहा था। आखिर उसने एक बात कही कि 'मैं पड़ोस के दूसरे नगर के फकीर के पास भी गया था। उन्होने आपके सबध मे कुछ बातें कही हैं।' जरा-सी सधि मिल गई बालसेन को। उसने जोर से चिल्लाकर कहा, 'बिलकुल गलत। बिलकुल गलत।' वह आदमी थोड़ा हैरान हुआ कि 'मैंने अभी बातें तो बताई ही नही कि फकीर ने क्या कहा, और आप पहले ही कहते हैं, बिलकुल गलत, बिलकुल गलत।' बालसेन ने कहा, 'जब तूने मुझे

मौका नही दिया बोलने का, उसको भी न दिया होगा। मैं मान ही नही सकता कि उसको तूने मौका दिया हो, और मेरे सबध मे वह कुछ बोल पाया हो। असभव।'

बकवासी और शात व्यक्ति मे बकवासी बोलता रहेगा। पागल और स्वस्थ मे पागल बोलता रहेगा। सभ्य और असभ्य मे असभ्य बोलता रहेगा।

तुम्हारे भीतर भी दोनो हैं। तुम्हारा असभ्य हिस्सा है तुम्हारा मन और तुम्हारा सभ्य हिस्सा है तुम्हारा हृदय। मन उसे बोलने ही नही देता। वह चुप्पी साधे है। और वही तुम्हारा केन्द्र है। मन तो तुम्हारी परिधि है। मन तो तुम्हारे बाजार का हिस्सा है, वहा उसकी जरूरत है। जीवन के गहन मे मन का कोई भी काम नही है। न तो प्रेम मे काम पडता है मन, न प्रार्थना मे काम पडता है मन, न सत्य की खोज मे काम पडता है मन, न अमृत की यात्रा मे काम पडता है मन—हा बाजार के सौदे मे, सब्जी खरीदने मे, सब्जी बेचने मे काम पडता है, रुपये-पैसे इकट्ठे करने मे, चोरी करने मे काम पडता है।

मन व्यर्थ की साज-सम्हाल रखता है। उसकी भी जरूरत है। मगर वह तुम्हारे ऊपर फैल जाये पूरी तरह और एकाधिकार कर ले, तो वह तुम्हारी गर्दन घोट देगा। उसने गर्दन घोट दी है। तुम भूल ही गये हो कि तुम्हारे पास हृदय भी है, एक और सुमधुर वाणी है तुम्हारे पास, एक और शात स्रोत है, एक और सगीत का उद्गम है—जहा वाणी बहुत मृदुल है, जहा स्वर बहुत शात है, जहा कुछ कहा कम जाता है और समझा ज्यादा जाता है, जहा बोलना कम है और जीना ज्यादा है, जहा करना कम है और होना ज्यादा है। एक गहनता है अस्तित्व की तुम्हारे हृदय मे, वहा तुम्हारा केन्द्र है।

'गूगा हूवा बावला', कबीर कहते हैं, 'सद्गुरु मार्‍या बान।' और जब गुरु ने बाण मारा तो जो हिस्सा गूगा था सदा से, वह बोल उठा। और जब हृदय बोलता है तो मन एकदम चुप हो जाता है। तुम मन को चुप करने की बहुत कोशिश करके सफल न हो पाओगे, ज्यादा बेहतर हो, तुम हृदय को सुविधा दो। इस पागल से मत ज्यादा उलझो। अपने भीतर गैर-पागलपन के सूत्र को खोजो। तुम्हारा ध्यान, तुम्हारी दृष्टि हृदय की तरफ मुडे। धीरे-धीरे तुम पाओगे, जो आवाज नही सुनी जाती थी, वह सुनी गई। जो अन्तर्ध्वनि तुम भूल ही गये थे, वह मिट नही गयी है, उसकी कल-कल धारा अब भी भीतर बहती है।

तुमने कभी विचार किया?—रास्ते पर शोरगुल चल रहा है, भरा बाजार है, पक्षी एक बोल रहा है वृक्ष पर—तुम अगर आख बद करके पक्षी की तरफ ध्यान से सुनो, बाजार भूल जाएगा, और पक्षी की धीमी-सी आवाज इतनी तीव्र और प्रखर

हो आएगी कि तुम पाओगे, पूरे बाजार की आवाज भी उसे डुबा नहीं सकती। तुम्हारे ध्यान देने की बात है। तुम कभी अगर शात बैठो और सिर्फ अपने हृदय की धडकन सुनो, तो तुम पाओगे कि रास्ते पर चलते हुए ट्रैफिक का कारवा और सब तरफ का शोरगुल फीका पड गया, हृदय की धडकन उस सबके ऊपर उठकर उभर आयेगी।

सिर्फ ध्यान की बात है। जिस तरफ ध्यान, उसी तरफ जीवन की वर्षा हो जाती है। तुम्हारा ध्यान अगर तुमने विचारो की तरफ लगा रखा है, तो तुम विक्षिप्त को ही सुनते चले जाओगे। और मन से ज्यादा उबानेवाला तुमने कभी देखा? मन से ज्यादा व्यर्थ चीज तुमने कही जीवन मे पायी?

'सद्गुरु मार्‌या बान, गूगा हूवा बावला, बहरा हुआ कान।'

तुम सुनते हो, फिर भी सुन नही पाते। क्योकि जिस कान से तुम सुनते हो, वह बाजार के लिए ठीक, ध्यान के लिए ठीक नही। कोई और कान चाहिए। सुनने की कोई और विधि चाहिए। सुनने का कोई और ढग, और शैली।

वैसे तो मैं बोल रहा हू, तुम सुन रहे हो, लेकिन और तरह से भी सुना जाता है। जब कान ही नही सुनते, बल्कि तुम्हारा पूरा व्यक्तित्व कान हो जाता है– 'बहरा हुआ कान'–तुम्हारा रोआ-रोआ जो बहरा पड गया है, तुम्हारी श्वास-श्वास जो बहरी पड गई है, सिर्फ कान सुनता है और तुम्हारा पूरा देह, तन-मन, प्राण, सब बहरा है–ऐसे काम न चलेगा। उस विराट को सुनना हो तो तुम्हे पूरा कान ही हो जाना पडेगा। महावीर ने यही श्रावक की परिभाषा की है। जिसका पूरा व्यक्तित्व कान हो जाये, वह श्रावक। जिसका पूरा व्यक्तित्व आख हो जाये, वह द्रष्टा। जिसका पूरा व्यक्तित्व हृदय की धडकन हो जाये, वह प्रेमी। खड-खड से काम न चलेगा। पूरा अखड होकर कुछ भी करो, उसी से छुटकारा हो जाएगा। इसे तुम सूत्र मानो जिस चीज को तुम अखड होकर कर लोगे वही तुम्हें इस कारागृह के बाहर ले जाने का द्वार हो जाएगी।

'बहरा हुवा कान'–सारा शरीर अब तक बहरा था, वह पूरा का पूरा कान हो गया–'सद्गुरु मार्‌या बान।'

'पाऊ थै पगुल भया ।' और अब तक जो हिस्सा पक्षाघात से पगुल पडा था, हिल-डुल न सकता था, अचानक चलने लगा।

इस पद की मैं ऐसी व्याख्या करता हू। और व्याख्याए हैं, वे मुझे बचकानी लगती हैं। वे व्याख्याए ये है कि जो गूगा था, वह बोलने लगा, जो बहरा था, वह सुनने लगा, जो लगडा था, वह चलने लगा–ऐसा गुरु का चमत्कार है। गुरु कोई 'सत्य

साईं बाबा' नहीं। और इस तरह की व्याख्याए एकदम बचकानी हैं।

इस पद का वचन गहरा है। चमत्कार बच्चो को लुभाने की बातें हैं, सड़क के किनारे जादूगर कर रहा है। उनसे कुछ आत्मक्रान्ति का सेतु नही बनता। बड़ा चमत्कार यही है कि तुम्हारे भीतर जो बोलता नहीं अग, वह बोलने लगे। गूगा बोलने लगे, यह कोई बडा चमत्कार नही है। यह तो विज्ञान ही कर लेगा, इसके लिए संतो की कोई जरूरत नही है। और बहरा सुनने लगे, यह तो दस-बीस रुपये का यंत्र खरीदकर भी हो जाएगा, इसके लिए कबीर जैसे गुरु को उलझाने की जरूरत नही है। और पक्षाघात ठीक हो जाये, यह तो साधारण इलाज की बात है। लेकिन एक और पक्षाघात है, जिसे कोई विज्ञान ठीक न कर सकेगा। एक और आत्मा है तुम्हारे भीतर, जो पत्थर जैसी हो गई है, जिसको पिघलाना है, जिसको चलाना है, जिसको पैर देने हैं। वह कौन करेगा? अगर गुरु भी अस्पतालो का ही ऐक्सटेन्शन हो, उन्ही का ही काम कर रहे हो, तो फिर दूसरा काम कौन करेगा? नही, गुरु कोई चिकित्सक नहीं है, या चिकित्सक है तो अज्ञात का।

तुम्हारे भीतर ये सारी घटनाये हैं। तुम मत सोचना कि किन्ही गूगो, बहरो और लगडो के सबध मे चर्चा हो रही है, यह चर्चा तुम्हारे सबध मे हो रही है। और नही तो अगर गूगे, लगडे, बहरे सब ठीक हो जाये तो गुरु क्या करेगा? एक दिन ऐसा हो ही जाएगा। विज्ञान सारी व्यवस्था कर लेगा, दुनिया मे कोई लगडा न होगा, गूगा न होगा, लूला न होगा। फिर सद्गुरु को सिवाय आत्महत्या के कोई उपाय न रह जाएगा।

ये सारे शब्द तुम्हारे लिए हैं ये किन्ही गूगो और बहरो के सबध मे नही हैं। यह तुम गूगो और बहरो के संबध मे है। और यह बडा चमत्कार है कि तुम्हारे भीतर एक छोटा-सा हिस्सा बोल रहा है, बाकी सब बहरा है, गूगा है, लगडा है। कान सुन रहा है, लेकिन तुम नही सुनते। पैर चल रहे हैं, लेकिन तुम नही चलते। तुम चले ही नही, तुम बिलकुल जड हो। तुम बहे ही नही। तुम्हारे जीवन मे कोई सरिता जैसा भाव नही है। तुम अखीर मे मरते वक्त पाओगे, चले बहुत और बिलकुल कही पहुचे नही। वही पक्षाघात है। पक्षाघात का वही अर्थ है। मरते वक्त तुम पाओगे, जहा पैदा हुए थे, वही मर रहे हो। चले बहुत, लेकिन चलना पैरो का था, आत्मा का न था, भीतर कोई गति न हुई, भीतर गत्यात्मकता है ही नही।

तुम वही-वही रोज करते हो। कल भी क्रोध किया था, परसो भी क्रोध किया था, आज भी किया, कल भी करोगे—तुम वही करते रहोगे, भीतर कोई गति नही

है। जब कोई व्यक्ति क्रोध से अक्रोध को उपलब्ध होता है, तब—'पाऊं थे पंगुल भया।' जब कोई व्यक्ति अशांति से शांति को उपलब्ध होता है, तब—'पाऊं थे पंगुल भया।' और जब कोई व्यक्ति वासना से करुणा को उपलब्ध होता है, तब—'पाऊं थे पंगुल भया।' तब गति हुई, तब चले, तब बर्फ पिघली तुम्हारे भीतर की जड़ता की, तुम तरल हुए, बहे, सागर की तरफ यात्रा हुई। जैसे कोई नदी सागर पहुंच जाये ऐसे जब तुम परमात्मा के सागर मे पहुंच जाओगे, तब—'पाऊं थे पंगुल भया।'
'सतगुरु मारया बान।'

क्या अर्थ है सत्गुरु के बाण मारने का? शिष्य को वैसा लगता है। सत्गुरु तो बाण मारता ही रहता है। लेकिन यहां बड़ी कठिनाई है। यह कोई साधारण धनुर्विद्या नही है। सत्गुरु तो ठीक निशाने पर ही मारता है। लेकिन यहां जटिलता यह है कि लक्ष्य अगर राजी न हो, तो बाण चूक जाता है।

मैं एक बाण तुम्हारी तरफ फेकता हूं। मैं कितना ही निशाना ठीक मारकर फेंकू, इससे कोई फर्क नही पडता, अगर तुम राजी नही हो तो निशाना चूक जायेगा। और मैं गैर-निशाने के अंधेरे मे फेक दूं, अगर तुम राजी हो, तीर पहुंच जाएगा। तुम्हारे राजी होने मे सारी कला है। तुम्हारे तैयार होने मे, खुले होने मे, रिसेप्टिव, ग्राहक होने मे सारी कला है। तुम्हारा द्वार खुला हो, फिर बाण कही भी फेका जाये, तुम खींच लोगे बाण को।

सत्गुरु तो चौबीस घंटे उसके होने मे ही, बाण फेकना छिपा है। उठता है, बैठता है, बोलता है, नही बोलता है—हर घडी वह बाण फेक रहा है। यह कोई बाण फेकना उसके लिए कृत्य नही है, यह उसके होने का ढंग है। क्योंकि जो उसे मिला है, वह बांट रहा है। लेकिन जिन्होंने अपनी झोली खोल दी होगी, उनकी झोली भर जायेगी। और जो संकोच से भरे, भयभीत, डरे, अश्रद्धा, संदेह मे दबे, अपने द्वार को बंद रख खड़े रहेंगे, उनकी झोली खाली रह जायेगी।

कबीर को बाण लग गया होगा सत्गुरु का। इसमे खूबी सत्गुरु की नही है, इसमे खूबी कबीर की है। यह जो आध्यात्मिक जीवन है, इसमे गुरु की बहुत खूबी नही है, इसमे खूबी शिष्य की है। शिष्य को ऐसा ही लगेगा, गुरु ने मारा बाण, गुरु की कला है। शिष्य गुरु को धन्यवाद देगा। और गुरुओं ने सदा शिष्यों को धन्यवाद दिया है, क्योंकि वे ज्यादा गहरी बात जानते हैं साफ है कि शिष्य लेने को राजी था, इसलिए मिल गया है। तुम जितना लेने को राजी हो, उतना पा लोगे। अगर न पा सको तो किसी और को दोष मत देना; अपने राजीपन मे ही तलाश करना तुम राजी ही नही हो, तुम लेने को भी उत्सुक नही हो। तुम्हे

मुफ्त मिल भी मिल रहा हो जीवन का समस्त धन तो भी तुम्हें भरोसा नही है कि यह धन धन हो सकता है। तुम सदिग्ध हो। तुम्हारा सदेह ही गुरु के बाण को चुका देगा। तुम श्रद्धा से भरे हो, बाण लगना निश्चित है।

और उस बाण के लगने का परिणाम यह होगा—और ठीक बाण शब्द बिलकुल उचित है—जैसे हृदय छिद जाए किसी बाण से।

बस दो ही घटनाओ मे यह बाण का प्रतीक सार्थक है। एक तो जब प्रेम में तुम कभी गिरते हो, तब सारी दुनिया मे बाण का प्रतीक उपयोग मे लाया जाता है, कि जैसे एक प्रेम का बाण तुम्हारे हृदय मे आकर छिद गया। बाण के छिदने का अर्थ होता है पीडा, लेकिन मधुर। एक मीठी पीडा तुम्हारे हृदय मे उठ आती है। पीडा होती है—पीडा जैसी नहीं, आनन्द जैसी। तुम उसे छोडना न चाहोगे। चौबीस घटे तुम्हारे हृदय मे कुछ होता रहता है, जब कोई प्रेम मे पडता है।

हिन्दुओ की तो पुरानी प्रतीक-व्यवस्था है, और उन्होने बडे ठीक प्रतीक खोजे हैं। कामदेव सदा ही धनुष-बाण लिये खडा है। प्रतीक है प्रेम का कि लोग हृदय का चित्र बना देते हैं और एक बाण उसमे चुभा देते है। बाण के साथ एक त्वरा और तीव्रता है। और बाण एक क्षण मे लग जाता है, समय नही लगता है, अभी नही था, और अभी है, एक पल नहीं बीता और सब बदल गया। और बाण के लगते ही तुम्हारे हृदय मे एक नयी गतिविधि शुरू हो जाती है—एक पीडा जो मधुर है—और तुम बदलने शुरू हो जाते हो। प्रेम जिस जोर से बदलता है, कोई चीज बदलती नही। अभी तुम चल रहे थे—उदास-उदास, पैरो मे गति न थी, ढोते थे बोझ, अपने को ही खींचते थे, और प्रेम का बाण लग गया—पैरो मे गति आ गई, नृत्य आ गया। अब तुम चलते हो—चाल और है। एक गीत है चाल के भीतर छिपा। कोई भी देखकर कह सकता है कि लग गया बाण। कहते हैं, प्रेम को छिपाना असभव है। वह मुझे भी ठीक लगता है, प्रेम को छिपाना असभव है। कैसे छिपाओगे? तुम्हारा रोआ-रोआ, आख, हाथ, पैर, चलना, उठना, बोलना, हर चीज कहेगी कि तुम प्रेम मे पड गये हो। प्रेम को छिपाना असभव है वह ऐसी आग है!

तो एक तो प्रेम है, जहा बाण ठीक प्रतीक है, और उससे भी ज्यादा ठीक प्रतीक है श्रद्धा के लिए। श्रद्धा भी ऐसे ही बाण जैसी चुभती है। सारी दुनिया श्रद्धा में गिरे आदमी को पागल कहेगी, जैसे प्रेम मे गिरे आदमी को पागल कहती है। सारी दुनिया कहेगी कि 'सम्मोहित हो गये हो। होश खो दिया, विचार खो दिया? किस पागलपन मे पडे हो? सम्हालो।' लेकिन जिसको बाण लग गया सारी

दुनिया फीकी और उदास हो जाती है। जिसको बाण लग गया, वह कैसे कहे अपनी मीठी पीडा को किसी से ? पीडा कहे, ठीक नहीं, सिर्फ मीठा कहे, काफी पीडा-भरी मिठास को बताना और भी मुश्किल, और जटिल हो गया। और लोग कहेंगे, 'पागल हो। पीडा कही मीठी होती है ?' क्योकि उन्होने तो एक ही पीड़ा जानी है—जहरीली, कडवी, पीडा जो दुख देती है। उन्होने सुख जाना है जो सुख देता है। उन्होने दुख जाना है जो दुख देता है। लेकिन जब बाण लगता है श्रद्धा या प्रेम का, तो तुम एक अनूठे अनुभव से गुजरते हो एक ऐसा दुख जो सुख भी है, एक ऐसी तन्द्रा जिसमे जागृति भी छिपी है, एक ऐसा सम्मोहन जिसमे होश आ रहा है। तुम विरोधाभास की सीमा पर आ गये। तर्क की दुनिया पीछे छूट गई, हृदय की दुनिया शुरू हुई।

इसलिए बाण खोपडी मे कभी नही लगाया हुआ बताया जाता—कभी तुमने न देखा होगा, वह सदा हृदय मे लगता है। खोपडी मे बाण लग ही नही सकता, वह काफी सघन है, वह सब तरफ से बद है। हृदय कोमल द्वार है। तुम तैयार हो तो बाण सदा तैयार है। अगर तुम चूके तो अपने कारण चूकोगे।

'गूगा हूवा बावला, बहरा हूवा कान। पाऊ थै पगुल भया, सतगुरु मारया बान ॥'

'माया दीपक नर पतग, भ्रमि भ्रमि इवै परत।' और मनुष्य ऐसा है—अज्ञान से भरा हुआ, माया मे डूबा हुआ, मूर्च्छा से सत्रस्त, जैसे पतग दीये पर आ-आकर गिरता है, ऐसा ही मनुष्य माया पर आ आकर गिरता है। जो देखता है, वह हैरान होता है कि 'इस पतग को क्या पागलपन हुआ है ? यह मरेगा दीये पर गिरकर। दीये से कोई जीवन न मिलेगा, मौत आएगी।' लेकिन पतग वही-वही आकर गिरता है और मरता है। और दूसरे पतग भी देख रहे हैं, लेकिन उनको भी कुछ होश नही आता, वे भी दीये की तरफ चले आ रहे है। सुबह ढेर लग जाता है पतगो का जो दीये पर मरे, लेकिन बाकी पतगो को कुछ भी खबर नही होती, होश ही नही होता।

कबीर कह रहे हैं, 'माया दीपक नर पतग'—माया है दीपक इस ससार का। सारा लोभ, वासना, कामना, तृष्णा—वह है दीपक। और मनुष्य एक पतग की भाति है। और कितनी बार गिरा इसी दीये पर और मरा। जन्मो-जन्मो से यही चल रहा है, फिर भी वही वासना खीचती है, कामना खीचती है—फिर दीये की तरफ चल पडते हैं। हर बार जन्म के बाद मौत के सिवा और कुछ तो मिलता नही। हर जीवन मौत मे ही तो बदल जाता है। पतगे ही नही मरते, हम भी तो आखिर मे मरे हुए ढेर पर पडे पाये जाते हैं। सारे जीवन की निष्पत्ति मौत है,

फिर भी कोई जागता नही है।

'माया दीपक नर पतग, भ्रमि भ्रमि इवै परत।' और बार-बार उसी भ्रम में, बार-बार उसी ना-समझी में, बार-बार उसी अंध कूप मे आकर आदमी गिर जाता है।

'कहैं कबीर गुरु ग्यान थै, एक आध उबरत ।।' लेकिन जिसके हृदय मे गुरु का बाण लग गया, उसके जीवन मे क्राति घटित हो जाती है। कोई एकाध, जो गुरु का निशाना बन गया, जिसने गुरु का निशाना अपने को बनने दिया, वह कोई एकाध उबर आता है, फिर जीवन का सनातन नाद बजता है, फिर जीवन की शाश्वतता उपलब्ध होती है, फिर वही बच रहता है, जिसकी कोई मौत नहीं। और उसे पाये बिना शाति न मिलेगी।

मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, 'हमे शाति चाहिए।' शाति मिल नही सकती, जब तक कि तुम अमृत को न पा लो। मिल ही कैसे सकती है—मौत सामने खडी है, शांति मिल कैसे सकती है? थोडी-बहुत देर को छिपा दो, ढाक दो, भूल जाओ—यह हो सकता है, लेकिन शाति मिल नही सकती। शाति तो अमृत की छाया है। इसलिए मैं यहा तुम्हे शाति के उपाय नही बता रहा हू। शाति मे मेरी उत्सुकता नही है। मेरी उत्सुकता तो अमृत मे है। तुम जिस दिन अमृत को पा लोगे, शाति अपने-आप बधी चली आती है। वह तो अमृत की दासी है, छाया है। और मृत्यु की छाया है अशाति। तुम चाहो कि मृत्यु को पार हुए बिना तुम शात हो जाओ, यह असभव है। और अच्छा है कि यह असभव है। अगर मृत्यु के रहते तुम शांत हो जाओ तो धर्म का द्वार तुम्हारे लिए सदा के लिए बद हो जाएगा। महाकरुणा है अस्तित्व की कि वह तुम्हे शात नही होने देता जब तक कि तुम अतिम द्वार को पार न कर जाओ। नही तो तुम न मालूम किसी कूडे-घर पर बैठकर और शात हो गये होते, तुम न मालूम कोई तिजोरी पकडकर बैठ रहते, छाती से लगाकर और शात हो गये होते। तुम वही सड जाते। नही, परमात्मा तुम्हे छोडेगा नही। परमात्मा तुम्हे धकाता ही रहेगा जब तक कि वास्तविक घटना न घट जाये। और वह घटना है कि तुम अमृत को जान लो।

'कहैं कबीर गुरु ग्यान थै, एक आध उबरत।'

गुरु ज्ञान तो बहुतो को बाटता है, पर एकाध उबरता है। हजारो लेते हैं, एकाध तक पहुचता है। हजारो सुनते हैं, एकाध सुनता है। हजारो चलते है, एकाध ही पहुचता है। बात क्या है? कही गुरु और शिष्य के बीच गडबड हो जाती है। गुरु कुछ कहता है, शिष्य कुछ सुनता है। तुम जब तक सोचते रहोगे, तब तक तुम वही न सुन पाओगे जो गुरु कहता है, तुम कुछ और सुन लोगे। तुम अपने को

शिथिल कर दोगे। तुम गुरु के ज्ञान में अपना अज्ञान डाल दोगे। तुम गुरु के ज्ञान से भी अज्ञान ही ले पाओगे। तुम पंडित हो जाओगे, प्रज्ञावान न हो सकोगे। इसलिए बहुत सुनते हैं, कोई एकाध ही सुन पाता है।

जीसस हर बार कहते हैं जब भी वे बोलते हैं कि 'जिनके पास कान हों, वे सुन ले। जिनके पास आंखें हो, वे देख ले।' हर बार, हर बोलने के पहले, उनका पहला वचन यही है। क्या जीसस अंधो और बहरों के बीच ही रहते थे? निश्चित ही, बुद्ध, कृष्ण, क्राइस्ट अंधो और बहरों के बीच ही रहते हैं।

रोज मुझे अनुभव होता है कि जो मैं कहता हू, तुम कुछ और सुनते हो। जब लोग आकर मुझे कहते हैं कि कल आपने ऐसा कहा, तब मुझे पता चलता है।

मैं अगर कहू कि सघन उपाय करना पडेगा, तभी तुम पा सकोगे—मेरे पास लोग आकर कहते हैं कि सघन उपाय तो होता नहीं, हो नही सकता, क्योंकि और हजार काम हैं, और मन मे इतनी शक्ति भी नहीं है कि सघन उपाय कर सकें—तो यह तो हमसे न हो सकेगा।

मैं कभी बोलता हू कि किसी उपाय की जरूरत नहीं है, तुम सिर्फ शांत होकर बैठ जाओ—तो लोग मुझसे आकर कहते हैं कि यह तो हो ही नही सकता। वही लोग जो कह गये थे, सघन उपाय नही हो सकता। मैं कहता हूं, सिर्फ बैठ जाओ—'यह तो हो ही नहीं सकता। खाली कैसे बैठे? आप कुछ करने को बतायें। आलबन तो चाहिए। कोई विधि, कोई उपाय तो चाहिए, नही तो खाली कैसे बैठे?

दोनो मार्गों से आदमी पहुचता है। या तो सब विधि छोडकर खाली बैठ जाओ—तो भी पहुच जाता है, कोई बाधा नही है। लेकिन सब नही छूटता। वे कहते हैं, कुछ तो आलबन चाहिए। और या फिर किसी विधि में इतने लीन हो जाओ कि पीछे कुछ भी न बचे। वे कहते हैं, यह भी नहीं होता। तो वे कहते हैं, हम बीच का कोई रास्ता निकाल लेते हैं थोडी-थोडी विधि करेंगे, थोडा-थोडा शात बैठेंगे। यह उन्होने अपने को मिला लिया, उन्होने अपना अज्ञान डाल दिया। जो आग मैंने दी थी, उसे उन्होने कुनकुनी कर लिया। अब ज्यादा से ज्यादा वे कुनकुने हो जाएंगे, लेकिन वाष्पीभूत कभी भी न हो सकेंगे।

तुम अपने को मत मिलाओ। तुम जो भी मिलाओगे, वह गलत होगा, क्योंकि तुम गलत हो। लेकिन गलत आदमी को भी यह भ्रांति होती है कि पूरा थोडे ही गलत हू, थोड़ा-बहुत होऊंगा। इस खयाल में तुम पडना ही मत। या तो तुम गलत होते हो पूरे, या तुम सही होते हो पूरे। मैंने अब तक ऐसा कोई आदमी नही देखा जो थोडा-थोडा सही और थोड़ा-थोडा गलत हो। ऐसा आदमी होता ही नहीं।

ऐसे आदमी के होने का प्रकृति में उपाय ही नही है । साथ-साथ प्रकाश और अंधकार नही रहते । या तो तुम्हारे भीतर प्रकाश होता है, या अधकार होता है । तुम कहो, आधे मे तो प्रकाश और आधे मे अधकार है, ऐसा होता नही । क्योंकि अगर प्रकाश होगा, तो वह आधे में अधकार को न बचने देगा । और अगर आधे मे अधकार है तो आधा प्रकाश कल्पना होगा । लेकिन तुम कभी इस भ्राति में मत पडना, जिसमे सभी पडते हैं । तब तुम सुन न पाओगे । तुम अपना ही गणित लगाये चले जाते हो । तुम कुछ करते हो, जो तुमने ही ईजाद कर लिया—जो मैंने कभी कहा नही । और तुम सुनते हो व्याख्या के साथ । जब कोई निर्व्याख्या से सुनता है, तब उसके पास कान हैं । जब कोई मन को और विचारो को और अपने अतीत को बीच मे नही लाता, हटा देता है, सरका देता है किनारे पर, सीधा सुनता है, बीच मे कोई विचार का पर्दा नही होता—तब कभी वह घटना घटती है । 'कहैं कबीर गुरु ग्यान थैं, एक आध उबरत'—और तब गुरु का ज्ञान उबार लेता है ।

ज्ञान नही उबारता, गुरु का होना उबार लेता है । क्योंकि उस घडी मे जब तुम सारे विचारो को हटाकर सुनते हो, तुम सुनते थोडे ही हो, तुम पीने लगते हो, तुम दूर थोडे ही रह जाते हो, तुम पास आ जाते हो, तुम भिन्न थोडे ही रह जाते हो, अभिन्न हो जाते हो ।

बीच मे विचार न हो तो भेद कहा होगा ? बीच में कोई विचार न हो, मेरे और तुम्हारे बीच मे अगर कोई विचार न हो, तो मेरा अत कहा होगा और तुम्हारी शुरुआत कहां होगी ? सीमाए खो जाएगी ।

जब कोई शिष्य ऐसे सुनता है कि गुरु के साथ सीमा खो जाए, उसी क्षण उबर आता है । क्योंकि उसी क्षण गुरु का होना शिष्य के होने के गुणधर्म को बदल देता है—जैसे पारस लोहे को सोना कर देता है । कहीं पारस—तुमने सुनी हैं कहानियां—होता नही । पारस तो आध्यात्मिक प्रतीक है । पारस तो गुरु के पास होने का एक ढग है । तब लोहे जैसी साधारण चीज भी सोने जैसे बहुमूल्य तत्त्व मे रूपातरित हो जाती है ।

'पासा पकडा प्रेम का, सारी किया सरीर । सतगुरु दाव बताइया, खेलै दास कबीर ॥'

'पासा पकडा प्रेम का—' जुआरी खेलता है, पासे फेंकता है, कबीर कहते हैं कि यह पासा प्रेम का है ।

'पासा पकडा प्रेम का, सारी किया सरीर ।' 'सारी' का अर्थ है चौपड । शरीर को चौपड बना दिया । हाथ में प्रेम का पासा ले लिया । 'सतगुरु दाव बताइया'—

सत्गुरु ने इशारा किया कि कहा दांव लगा दो, और कबीर दास खेले।'

प्रेम हो तो ही सत्गुरु दांव बता सकता है। प्रेम हो तो ही शिष्य दाव को समझ सकता है। प्रेम के अतिरिक्त अध्यात्म में और कोई दूसरी समझ नहीं है। प्रेम हो तो ही क्रांति घटित हो सकती है। और शरीर चौपड है, क्योंकि शरीर में ही सारा काम करना है। ध्यान की सारी प्रक्रियाए तुम्हारे अव्यवस्थित शरीर को व्यवस्थित करने के उपाय हैं, तुम्हारी शरीर की ऊर्जा को सतुलित करने की व्यवस्थाए हैं। तुम्हारे शरीर का अगर ठीक-ठीक समायोजन हो जाये, तुम्हारे शरीर की वीणा अगर ठीक-ठीक कस जाये, तो वह मधुर सगीत तुमसे उठने लगेगा, जिसका नाम आत्मा है। वह उठ ही रहा है, लेकिन तुम्हारी वीणा ठीक अवस्था में नही है। वह मौजूद ही है—सोया है, जगा लेने की जरूरत है।

वीणा रखी हो एक कोने मे—सगीत सोया है, छेड दो तान, तार को हिला दो—सगीत जाग गया! ऐसे ही तुम सोये हो—शरीर की वीणा के भीतर छिपे।

'सारी किया सरीर'—शरीर को चौपड बना लिया। 'पासा पकडा प्रेम का, सत्गुरु दाव बताइया, खेलै दास कबीर।' और कबीर तो केवल दास है जैसा गुरु कहते हैं, वैसा करता हैं, जो दाव बताते हैं वैसा चलता है—जैसे गुरु का हाथ है।

दास का अर्थ होता है जिसकी अपनी कोई मर्जी नही। दास का अर्थ होता है समर्पण की आत्यतिकता। दास का मतलब गुलाम नही होता। गुलाम तो वह है जिसे जबरदस्ती दास बना लिया गया हो। दास वह है जो अपनी मर्जी से गुलाम बन गया हो। फर्क भारी है। गुलाम तो वह है जिसको हमने जबरदस्ती ठोक-पीटकर भयभीत करके दास बना लिया है, डर के कारण जिसने सिर झुका दिया है। लेकिन डर के कारण सिर भला झुक जाये, आत्मा कभी नही झुकती। भय से कही आत्मा झुकी है? तो गुलाम का सिर झुका है, भीतर घृणा भरी है, भीतर उबल रहा है बगावत के लिए, ऊपर-ऊपर है सब दिखावा, भीतर मौका मिल जायेगा तो मालिक की गर्दन काट लेगा। दुश्मन है मालिक। गुलाम भय के कारण झुका है।

भय के कारण झुको तो तुम गुलाम हो। अगर भय के कारण तुम्हारी प्रार्थना है तो तो गुलामी है। भय के कारण अगर तुम मदिर मे आते हो, तो मदिर कारा-गृह है। भय के कारण अगर तुम गुरु के पास पहुचते हो, तो गुरु तुम्हारे लिए एक नयी परतत्रता बन जायेगा, एक जजीर होगी।

भय से विपरीत है प्रेम। भय से बिलकुल उलटा है प्रेम। प्रेम के कारण जब कोई समर्पित होता है, तो दास हो जाता है। दास का मतलब है स्वेच्छा से

समर्पण, किसी दबाव में नही, किसी भय के कारण नहीं, आनद में, अहोभाव में, एक महोत्सव मे, अपनी पूर्ण मर्जी से, अपने समग्र सकल्प से समर्पण। और तब दासता में ऐसे फूल खिलते हैं कि मालकियत में भी नहीं खिल सकते; तब झुकने मे ऐसी सपदा उपलब्ध होती है कि अकड़े हुओ को उसका कोई पता ही नही।

कबीर कहते हैं, मैं तो दास हू, और गुरु बता देता है, वैसी चाल चल देता हू। प्रेम का पास पकड़ा है।

इसे ठीक से समझो, क्योंकि ये दो दिशाए हैं प्रेम और भय। और अधिक लोगो का भगवान भय की ही उत्पत्ति है। तुम डरे हुए हो मौत से, चिन्ताओ से, जीवन के सघर्ष से, टूटे, पराजित, हारे, तुम मदिर में हाथ जोड़कर खड़े हो, घुटने टेके—लेकिन अगर भय से, तो तुम्हारा धर्म गुलामी है। और यह धर्म तुम्हें मोक्ष की तरफ न ले जायेगा। यह धर्म तो तुम्हें अतिम गुलामी मे गिरा देगा। लेकिन अगर तुम गये हो नाचते हुए मदिर मे, एक अहोभाव से, जीवन की प्रफुल्लता से, जीवन के वरदान से, देखकर कि इतना दिया है उसने, अकारण, जानकर कि जीवन दिया है उसने बिना मागे, बहुत दिया है, जरूरत से ज्यादा दिया है—इस धन्यवाद से, इस अनुग्रह-भाव से तुम मदिर गये हो, नाचते, गीत गाते और झुक गये हो वहा, तो तुम्हारे झुकने मे ही तुम अपने परम शिखर को उपलब्ध हो जाओगे। उस झुकने मे ही तुम गौरीशकर हो जाओगे। वह झुकने की कला ही लाओत्से की पूरी कला है, जिसको वह 'ताओ' कहता है। इस झुकने से बड़ा कुछ भी नही जगत मे। लेकिन यह स्मरण रहे कि वह हो प्रेम का झुकना। और बारीक फासला है, नाजुक। तुम समझो तो ही समझ पाओगे, वैसे तो दोनो एक-से दिखाई पड़ते हैं।

मदिर मे दो लोग प्रार्थना कर रहे हैं, दोनो घुटने टेके खड़े हैं, दोनो की आख से आसू बह रहे हैं—कैसे फर्क करोगे बाहर से? अगर तुम ले आओ एक चिकित्सक को, फिजियोलोजिस्ट को, शरीरशास्त्रियो को, उनसे कहो जाच करो। वे आसुओ की जाच करेंगे, दोनो को एक-सा पाएगे। क्योंकि प्रेम मे बहे आसू चाहे भय मे, आसू तो एक ही होता है, उसकी केमिस्ट्री मे फर्क नही पड़ता। उसके अध्यात्म मे भेद होता है, लेकिन उसके रसायन मे कोई भेद नही होता। कहा प्रेम के आसू और कहा भय के आसू! दोनो झुके हैं। दोनो के घुटने जमीन से लगे हैं। घुटने तो एक ही हैं। अगर तुम घुटनों की जाच-परख करोगे, कोई फर्क न पाओगे। लेकिन घुटनो के भीतर बड़ा भेद है, आकाश-जमीन का भेद है।

प्रेम से जो झुका है, वह सच मे ही झुका है। प्रेम से घुटने ही नही झुक गये हैं, सारी आत्मा ही झुक गयी है, सारा होना झुक गया है, उसका अहंकार विस-

खिल हो गया है। भय से जो झुका है, उसका अहंकार भीतर खड़ा है। भय से जो झुका है, वह परमात्मा से भी बदला लेना चाहेगा। भय से जो झुका है, वह एक-न-एक दिन, अगर परमात्मा मिल जाये तो उसकी पीठ में छुरा भोंक देगा।

ईसाइयत ने भय सिखाया पश्चिम में, कि डरो। वे धार्मिक आदमी को कहते हैं : गॉड-फीयरिंग, ईश्वर-भीरु। अब यह अधार्मिक आदमी का लक्षण है। ईसाइयत ने भय सिखाया, घबड़ा दिया लोगों को। उसका आखिरी परिणाम हुआ नीत्से का वचन—पचास साल पहले, इस सदी के प्रारम्भ में, उसने कहा, 'गॉड इज डेड'। यह है छुरा भोंक देना छाती में, कि ईश्वर मर चुका है, और आदमी अब स्वतन्त्र है। यह जो नीत्से का वचन है, यह दो हजार साल की ईसाइयत की शिक्षा का अंतिम परिणाम है, निष्कर्ष है।

भय से जो भगवान है, वह मित्र नहीं हो सकता है, वह शत्रु हो सकता है। तुम उसके सामने कंप सकते हो, भयातुर, लेकिन तुम खिल न पाओगे, तुम फूल न बन सकोगे। और तुम्हारे जीवन की परम समाधि और परम सुवास उस भय से न उठ सकेगी। भय से तो सिर्फ दुर्गंध उठती है, सुवास तो प्रेम का ही अंग है।

इसलिए कबीर कहते हैं, 'पासा पकडा प्रेम का, सारी किया सरीर। सतगुरु दाव बताइया, खेलै दास कबीर॥'

'कबिरा हरि के रुठते, गुरु के सरने जाय। कह कबीर गुरु रुठते हरि नहि होत सहाय॥'

कबीर कहते हैं कि ईश्वर रूठ जाये, कोई फिक्र नहीं—गुरु की शरण जाया जा सकता है। लेकिन अगर गुरु रुठ जाये, फिर क्या करोगे? फिर तो हरि भी सहाय नहीं हो सकता।

कारण है। कारण यह है कि तुम्हारे और परमात्मा के बीच खड़ा है गुरु। वह सेतु है। अगर गुरु रूठ जाये तो सेतु हट जाता है। तुम्हे तो परमात्मा की कोई खबर नहीं, सिर्फ शब्द तुमने सुना है। उसका कोई अता-पता भी नहीं। तुम जाओगे कहां उसकी सहायता लेने? तुम कैसे खोजोगे उसे? किससे पूछोगे? न तुम्हें शरीर की चौपड़ का कोई पता है, न प्रेम के पासे का तुम्हे कोई पता है। तुम कारागृह में बंद ही रहोगे, क्योंकि परमात्मा है बाहर का खुला आकाश। तुम कारागृह के अतिरिक्त खुले आकाश को जानते नहीं। तुम्हारा वही जीवन है। बीच का आदमी खो गया, तो परमात्मा सहायता भी करना चाहे तो भी नहीं कर सकता।

यह बड़ी मधुर बात कबीर कह रहे हैं। तुम्हारी सहायता तो वही आदमी कर सकता है जो दोनों के बीच है, जिसका एक पैर परमात्मा में है—खुले आकाश में

है, और एक पैर तुम्हारे कारागृह मे जमा है। वही सेतु हो सकता है, जो आधा तुम जैसा है और आधा परमात्मा जैसा है।

हिंदुओ की धारणा है नरसिंह की—आधा पशु। पश्चिम नही समझ पाता कि यह क्या बात है? नरसिंह मुक्ति का उपाय है।

कथा है कि प्रह्लाद का पिता मर नही सकता था, आशीर्वाद था उसे। उसने सब तरह की सुरक्षा कर ली थी। आशीर्वाद मे उसने व्यवस्था कर ली थी कि मनुष्य न मार सकेगा, पशु न मार सकेगा, घर के भीतर कोई न मार सकेगा, घर के बाहर कोई न मार सकेगा। लेकिन कितनी ही व्यवस्था करो, जीवन कोई कानून नही है। और कानून तक मे से रास्ता निकल आता है, तो जीवन मे से तो निकल ही आयेगा। और मृत्यु हो तो ही उसकी मुक्ति हो सकती थी। और कोई मुक्ति का उपाय नही। मरे बिना कही कोई मुक्त हुआ? तो परमात्मा को आधी देह पशु की, आधी देह मनुष्य की रखनी पडी, और बीच द्वार पर, देहरी पर, प्रह्लाद के पिता की हत्या करनी पडी। यह बडा महत्त्वपूर्ण प्रतीक है।

गुरु नरसिंह है और तुम्हे मारेगा, क्योकि बिना मारे तुम अमृत को उपलब्ध न हो सकोगे। 'सदगुरु मार्‌या बाण'—वह तुम्हे मिटायेगा, क्योकि तुम्हारे मिटने मे ही तुम्हारा असली आविर्भाव है। तुम्हारी राख से ही तो तुम्हारी परमात्म-अवस्था का जन्म होता है। बीज टूटेगा तो वृक्ष होगा। तुम बिखरोगे तो तुम आत्मा बनोगे। तो गुरु मारेगा। और देहरी पर ही मारे जा सकते हो तुम, क्योकि देहरी से बाहर खुला आकाश है। वहा तुम जा नही सकते भय है। भीतर कारागृह है। मध्य द्वार पर जहा गुरु खडा है ।

गुरु यानी द्वार। जीसस बार-बार कहते हैं, 'आइ एम द गेट'—मैं हू द्वार। वे इतना ही कह रहे हैं कि मैं वहा खडा हू जो मध्यबिन्दु है, जहा से एक हाथ तुम तक भी पहुचता है और दूसरा हाथ परमात्मा तक भी।

गुरु नरसिंह है। वह तुम्हे भी द्वार पर खीच लेगा, क्योकि आधा वह तुम जैसा है—पशु, आधा वह परमात्मा जैसा है।

'कह कबीर गुरु रुठते, हरि नहि होत सहाय।' उपाय ही खो गया। हरि हैं उस किनारे, तुम हो इस किनारे—बीच का सेतु गिर गया। और वह दूसरा किनारा बहुत दूर, गुरु के होते, बहुत पास जैसे कभी तुमने अगर दूरबीन से तारा देखा हो, तो एकदम पास, दूरबीन हट गई, तारा बहुत दूर। जब शिष्य गुरु से परमात्मा को देखता है तो वह बहुत पास, और शिष्य गुरु को हटाकर देखता है तो इतना दूर कि सामर्थ्य खो जाये, यात्रा की हिम्मत ही टूट जाये।

'कबिरा हरि के रुठते, गुरु के सरने जाय। कह कबीर गुरु रुठते, हरि नहि होत सहाय ॥'

'या तन विष की बेलरी, गुरु अमृत की खान। सीस दीये जो गुरु मिले, तो भी सस्ता जान ॥'

यह शरीर तो मौत का घर है। 'विष के बेलरी'। यहा तो सिवाय मौत के फल के और कोई फल लगता नही। फल से ही वृक्ष पहचाने जाते हैं। और जिस शरीर मे मौत ही मौत के फल लगते हो, वह 'विष की बेलरी'।

'गुरु अमृत की खान'—गुरु से पहली भनक आती है अमृत की। गुरु के पास बैठकर पहली दफा पगध्वनि सुनाई पडती है अमृत की। गुरु के पास पहली दफा उस सगीत का एकाध टुकडा तुम्हारी तरफ तैरता चला आता है जो अमृत से आता है, जहा कोई मृत्यु नही है।

'या तन विष की बेलरी, गुरु अमृत की खान। सीस दिये जो गुरु मिलै, तो भी सस्ता जान ॥' गदन भी चढाकर मिल जाये गुरु तो महगा मत समझना। क्योकि गर्दन तो चढ ही जाएगी, आज नही कल मरघट पर चढेगी। कोई ज्यादा कीमत भी गर्दन की है नहीं। सिर की क्या कीमत ?

मैंने ऐसा सुना है कि एक सम्राट, जो भी कोई आता, उसी को सिर झुकाकर नमस्कार करता था। वजीरो ने कहा, यह उचित नहीं—सम्राट और सिर झुकाये! तो सम्राट ने कहा, ठीक, कुछ समय बाद उत्तर दूगा। वजीरो ने कहा, उत्तर अभी दे सकते हैं, अगर उत्तर है। सम्राट ने कहा, "उत्तर तो है, लेकिन तुम जब तक तैयार नही तब तक उत्तर न दे सकूगा। प्रश्न पूछ लेना काफी नही है, उत्तर के लिए उत्तर को झेलने की तैयारी भी चाहिए। रुको। समय पर, ठीक जब समय पकेगा, उत्तर दूगा।"

कुछ महीने बीत गये, बात भूल गई। बडे वजीर को बुलाकर एक दिन सम्राट ने एक कारागृह के कैदी की, जिसको फासी की सजा हो गई थी, उसकी गर्दन दी और कहा, बाजार मे जाकर इसे बेच आओ। बडा वजीर भी भूल चुका था, थोडा हैरान भी हुआ। लेकिन जब सम्राट की आज्ञा है तो करनी पडेगी। वह गया बाजार मे। जिस दुकान पर गया, वही लोगो ने कहा, "भागो हटो। यहा गदगी मत करो। आदमी की खोपडी—इसका कोई मूल्य है?" जहा गया वही दुत्कारा गया, जिससे कहा, उसी ने कहा, "हटो यहा से। ले जाओ यहा से। इस भयानक खोपडी को खून टपकते यहा किसलिए ले आये हो? और तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है?" आदमी की खोपड़ी अगर बिकती हाती तो लोग उसको जलाते, कि

मरघट में राख कर आते ? बेच लेते। लोग ऐसे धनलोलुप हैं कि अगर खोपडी बिकती होती, और पत्नी मर जाती तो खोपडी बेच लेते। दूसरी शादी के काम आता पैसा। वह तो बिकती नही है। आदमी के शरीर में कुछ भी बेचने योग्य नही है, इसलिए आदमी को मरघट मे जला आते हो। नही तो तुम निकाल लेते बेचने योग्य जो भी होता।

थका-मादा सांझ वापस लौट आया। उसने कहा, "कहा का काम बताया! जहा गया वही दुत्कारा गया। लोग नाराज हो जाते हैं, बात ही नहीं करते हैं। पैसे की तो बात ही नहीं उठती। मुफ्त भी लेने को कोई तैयार नही है। क्योंकि मैंने अखीर मे यह भी कोशिश की, भई कुछ मत दो, ले लो। उन्होने कहा, क्या करेंगे ? इसको फेंकने की हमें झझट करनी पडेगी, तुम्ही अपना ले जाओ।"

"एक आदमी से तो", वजीर ने कहा, "मैंने यह भी कहा कि भैया कुछ पैसा ले ले, क्योंकि सम्राट ने कहा है, बेच आओ। अब जो भी अपने ही जेब से जाएगा, ठीक है। पैसा ले ले। तो भी वह बोला कि तुम मुझे क्या पागल समझे हो ? हटो यहा से।"

सम्राट ने कहा, "तुम्हे खयाल है, तुम पूछते थे, गर्दन मत झुकाओ, सिर मत झुकाओ ? जिस खोपडी का कोई भी मूल्य नही, उसको झुकाने के काम मे ले आने दो। क्यो मुझे बाधा डालते हो। इतना उपयोग तो कर ही लेने दो, क्योकि इसका कोई और उपयोग तो दिखाई नहीं पडता।

ऐसा हुआ कि एक मुसलमान फकीर डाकुओ द्वारा पकड लिया गया। उस फकीर का नाम था जलालुद्दीन रूमी। बडा अनूठा आदमी हुआ। डाकुओ ने पकड लिया। वे उसे बेचने ले चले। उन दिनो गुलाम बिकते थे। रास्ते मे—जलालुद्दीन मस्त फकीर था, स्वस्थ शरीर था, जवान था, कोई भी खरीद लेता, अच्छे दाम मिलने की आशा थी—रास्ते मे एक आदमी मिला। उसने कहा कि एक हजार दीनार देता हू, एक हजार सोने के सिक्के, अगर यह आदमी बेचते हो। डाकू तो बडे प्रसन्न हुए। उन्होने कभी सुना भी न था कि एक हजार एक गुलाम के मिल सकते हैं। वे तैयार हो गए। जलालुद्दीन ने कहा, "रुको। यह तो कुछ भी नहीं है। तुम्हे मेरी कीमत का पता नही है। ज्यादा मिल सकते हैं। अभी असली कीमत को परखनेवाले को आने दो।" तो डाकू रुक गये। आगे चले। एक सम्राट गुजरता था। उसने भी फकीर को देखा। उसने कहा, मैं इसके दो हजार दीनार देता हूं। तब तो डाकुओं ने कहा, बात तो यह फकीर ठीक ही कहता है। उन्होंने पूछा जलालुद्दीन को कि क्या इरादा है ? उसने कहा कि अभी भी नहीं।

फिर एक रईस गुजरता था। उसने तीन हजार दीनार भी कहे। फकीर से फिर उन्होंने पूछा। अब तो बहुत हो गई बात। उन्होने कहा, तीन हजार कभी सुने नहीं। तो बेचने की तैयारी कर ली। जलालुद्दीन ने कहा, रुको, घाटे मे रहोगे। बडा पशोपेश हुआ, सोचा कि बेच ही दें तीन हजार मे, फिर कोई मिले न मिले। और इसका क्या भरोसा? लेकिन अब तक तो इसकी बात ठीक निकली है, शायद आगे भी ठीक हो।

तो वे रुक गये। आगे एक आदमी मिला–एक घसियारा, वह एक घास की टोकरी अपने सिर पर लिये जा रहा था–घास का बन्डल। उस आदमी ने भी देखा कि इस फकीर को बेचने जा रहे हैं। उसने कहा, भाई, बेचते हो क्या? उन लोगो ने पूछा, "तू क्या देगा? तेरे पास कुछ है?" उसने कहा, घास की गठरी दे दूगा। जलालुद्दीन ने कहा, "दे दो। यह आदमी पहचानता है असली मूल्य। अब मत चूको, क्योकि यही कीमत है इस देह की।"

'या तन विष की बेलरी, गुरु अमृत की खान। सीस दिये जो गुरु मिलै, तो भी सस्ता जान॥' अगर सब कुछ देकर भी गुरु मिल जाये तो भी सस्ता है, क्योकि देने योग्य तुम्हारे पास है भी क्या? दोगे भी क्या? कुछ नही है, उसको भी देने मे भयभीत हो। अगर कुछ होता तो न मालूम तुम क्या करते। ना-कुछ के बदले सब कुछ देने को कोई तैयार है, तुम ना-कुछ देने की भी हिम्मत नही जुटा पाते।

मैं तुमसे मागता ही क्या हू? जो तुम्हारे पास नही है, वह दे दो। सुन लो मेरी बात जो तुम्हारे पास नही है, वह दे दो। और जो तुम्हारे पास है, वह मैं तुम्हें दे दूगा। लेकिन जो तुम्हारे पास नही है, कभी नहीं था, सिर्फ वहम है कि तुम्हारे पास था, वह भी छोडने की हिम्मत नही जुटा पाते–तो फिर गुरु कभी भी न मिल सकेगा।

गुरु कोई बाहर की घटना थोडे ही है?–तुम्हारे भीतर की क्रान्ति है। तुम जब सब देने को तैयार हो, तब गुरु हजारो मील दूर हो, तो भी दौडा चला आयेगा। आना ही पडेगा।

इजिप्त मे वे कहते हैं कि जब शिष्य तैयार है, तो गुरु तत्क्षण मौजूद हो जाता है। गुरु को खोजने जाने की भी जरूरत नहीं है, अगर तुम तैयार हो तो गुरु को आना पडेगा। लेकिन तैयारी चाहिए सब कुछ दे देने की। और कुछ है नही। और जो है उसका तुम्हे पता नहीं है। और जिसे तुम समझते हो कि है, वह सिर्फ सपना है।

'कस्तूरी कुडल बसै।'

★ ★ ★

प्रार्थना है उत्सव

नौवां प्रवचन

दिनांक १९ मार्च, १९७५; प्रातःकाल; श्री रजनीश आश्रम, पूना

सुख में सुमिरन ना किया, दुख में कीया याद ।
कह कबीर ता दास की, कौन सुने फरियाद ॥

सुमिरन सुरत लगाइके, मुख ते कछू न बोल ।
बाहर के पट देइकै, अन्तर के पट खोल ॥

माला तो कर में फिरै, जीभ फिरै मुख माहिं ।
मनुआं तो दहुदिसि फिरै, यह तो सुमिरन नाहिं ॥

जाप मरै अजपा मरै, अनहद भी मरि जाय ।
सुरत समानी सब्द में, ताहि काल नहिं खाय ॥

तू तू करता तू भया, मुझ में रही न हू ।
वारी तेरे नाम पर, जित देखू तित तूं ॥

आनन्द की खोज है। किसकी नही है? कौन है जो आनद नही चाहता।

सत्य की भी खोज है। और ऐसा कौन है जो असत्य से सत्य मे न उठ जाना चाहे, अंधेरे से प्रकाश मे, ससार से परमात्मा मे? नास्तिक भी वही चाहता है, चाहे उसे पता भी न हो। और जितने जोर से कोई नास्तिक कहता है कि मुझे ईश्वर में भरोसा नही, उतनी ही प्रगाढता से बात साफ हो जाती है कि भीतर बड़ी खोज है ईश्वर की। उस खोज को दबाने का ही यह उपाय है—यह नास्तिकता। वह अपने को ही समझा रहा है कि जो है ही नही उसकी खोज पर क्या जाना; लेकिन भीतर कोई गहन चाह है जो धक्के मार रही है—उस चाह को ही वह दबा रहा है।

नास्तिकता आस्तिकता का दमन है। क्योकि ऐसा तो कोई आदमी हो ही नही सकता जो आनन्द न चाहे। और जिसने भी आनन्द को खोजा, अखीर मे वह पाता है कि उसकी खोज परमात्मा की खोज में बदल गई। क्योकि परमात्मा के सिवाय और कोई आनद नही। उससे कम पर तुम नाच न सकोगे। परमात्मा से कम पर तुम आनदित न हो सकोगे। उससे कम के लिए तुम बने ही नही हो। वह परम ही प्रगट हो, वह परम ही तुम्हारे चारो ओर बरसने लगे तभी सतृप्ति होगी, तभी परितोष होगा, तभी तुम्हारे घर के भीतर जो सतत रुदन चल रहा है, वह बद होगा, आसू सूखेंगे, तुम पहली बार हसोगे, तुम्हारा पूरा अस्तित्व पहली बार खिल सकेगा—एक फूल की भांति!

इतनी खोज है! सभी की खोज है। लेकिन मिलन तो बहुत थोड़े-से लोगो का हो पाता है। अगुलियो पर गिने जा सकें, ऐसे लोग उसके मदिर में प्रवेश कर पाते हैं। मामला क्या है? इतने लोग खोजते हैं, सभी खोजते हैं—फिर यह खोज थोड़े-से लोगो की क्यो पूरी होती है? उसके कारण को ठीक से समझ लेना जरूरी है, क्योकि वही कारण तुम्हें भी बाधा डालेगा। उसे अगर न समझा तो तुम खोजते भी रहोगे और पा भी न सकोगे। और वह कारण बड़ा सीधा-साफ है। लेकिन

कई बार सीधी-साफ बातें दिखाई नही पड़ती। कारण है कि लोग गलत मनोदशा में उसे खोजते हैं दुख में तो उसकी याद करते हैं और सुख में उसे भूल जाते हैं। बस यही सूत्र है—इतने लोग नहीं उसे उपलब्ध हो पाते—उसका।

दुख का स्वभाव परमात्मा के स्वभाव से बिलकुल मेल नही खाता। दुख तो उससे ठीक विपरीत दशा है। वह है परम आनद, सच्चिदानद। दुख में तुम उसे खोजते हो। दुख का अर्थ है कि तुम पीठ उसकी तरफ किये हो, और खोज रहे हो। कैसे तुम उसे पा सकोगे? जैसे कोई सूरज की तरफ पीठ कर ले और फिर खोजने निकल जाये, खोजे बहुत, चले बहुत, लेकिन सूरज के दर्शन न हो, क्योंकि पहले ही पीठ कर ली।

दुख है परमात्मा की तरफ पीठ की अवस्था। दुख मे तुम हो ही इसलिए कि तुमने पीठ कर रखी है। और उसी वक्त जब तुम्हारी पीठ परमात्मा की तरफ होती है, तभी तुम्हे उसकी याद आती है। जब तुम सुख मे होते हो तब तुम उसे भूल जाते हो।

परमात्मा सुख भी नही है, दुख भी नही है, लेकिन परमात्मा से दुख बहुत दूर है, सुख थोडा निकट है। दुख है परमात्मा की तरफ पीठ करके खडे होना, और सुख है परमात्मा की तरफ मुह करके खडे होना। जिन्होने सुख मे खोजा उन्होने पाया। जिन्होने दुख मे खोजा वे भटके। दुख का तालमेल नही है परमात्मा से। वहा तुम रोते हुए न जा सकोगे। वह द्वार सदा रोती हुई आखो के लिए बद है। वहां रुदन का प्रवेश नही, नही तो तुम अपने रोने को उसके प्राणो मे भी गुजा दोगे।

अस्तित्व के द्वार बद हैं उनके लिए, जो दुखी हैं। अस्तित्व अपने द्वार खोलता है केवल उन्ही के लिए, जो नाचते, गीत गाते, गुनगुनाते आते हैं। अस्तित्व उत्सव है, वहा मरघटी सूरत लेकर नही जाया जा सकता। अस्तित्व परम जीवन है, वहा उदासी का कोई काम नही है।

लेकिन जब दुख आता है तब तुम याद करते हो। वह याद व्यर्थ हो जाती है। वही तो क्षण थे जब याद का कोई अर्थ ही नही है। लेकिन तुम्हारी भी तकलीफ मैं समझता हू दुख मे तुम याद करते हो ताकि दुख हट जाये। वह भी परमात्मा की याद नही है, सुख की आकाक्षा है। जब तुम दुख से उसे पुकारते हो तो तुम उसे नही पुकारते, तुम सुख को पुकारते हो। तुम उसे पुकारते हो इसीलिए ताकि सुख मिल जाये, यह दुख हटे। इसीलिए तो तुम सुख मे नही पुकारते कि अब जरूरत ही क्या रही, जो पाना था वह मिल ही गया, अब परमात्मा की क्या जरूरत रही!

इसलिए दुख में अगर तुम पुकारो तो तुम सुख की आकांक्षा करते हो। सुख की आकांक्षा से प्रार्थना का कोई सबंध नहीं। सुख मे जब पुकारो तब परमात्मा की आकांक्षा करते हो, क्योंकि सुख तो था ही, सुख के लिए तो पुकार ही नहीं सकते थे—अब तो तुम परमात्मा को उसी के लिए पुकार रहे हो। और जब तुम उसी के लिए पुकारते हो, तभी सुनी जाती है प्रार्थना, उसके पहले नही सुनी जा सकती। सुख में जिसने पुकारा, उसका अर्थ हो गया कि उसे सुख काफी नहीं है, उसने समझ ली सुख की व्यर्थता, तभी तो पुकारा, उसने जान लिया कि सुख क्षणभगुर है अभी है, अभी गया, इसमे ज्यादा रमने की जरूरत नहीं, इसमे उलझने का कोई अर्थ नही। उसने सुख की व्यर्थता को जान लिया तभी तो पुकारा।

दुख की व्यर्थता तो सभी जानते हैं, जो सुख की व्यर्थता जान लेता है, वही सन्यस्थ हो जाता है। दुख को तो सभी छोडना चाहते है, जो सुख को भी छोडने को तत्पर हो जाता है, उसकी ही प्रार्थना सुनी जाती है। अब वह प्रौढ हुआ।

दुख छोडने की बात तो बचकानी है। काटा गड जाये कौन है जो उसे नहीं निकाल देना चाहता? लेकिन जब फूल गडता है तब तुम फूल को भी निकालकर फेक देने को तत्पर हो जाओ . । और फूल भी गडता है। काटे तो गडते ही हैं, फूल भी गडता है। लेकिन फूल की गडन को जानने के लिए बडी सवेदनशील चेतना चाहिए। फूल की चुभन को जानने के लिए बडा होश चाहिए। काटा गडता है तो नीद मे पडे आदमी को भी पता चलता है, शराब पीये आदमी को भी पता चलता है। फूल गडता है, यह तो तभी पता चलेगा जब तुमने ध्यान के मार्ग पर दो-चार कदम उठाये हों और तुम सवेदनशील बने होओ, और तुमने जीवन को जागकर देखना शुरू किया हो, थोडा होश आया हो · तब तुम पाओगे कि फूल भी गड़ता है। तब जो प्रार्थना उठेगी, वही प्रार्थना पहुचती है उसके द्वार तक। और इस प्रार्थना में रुदन नही होगा। इस प्रार्थना मे आखो मे आसू नही होगे। इस प्रार्थना में सुख की मांग नही होगी। यह प्रार्थना भिखारी की प्रार्थना नही होगी। यह प्रार्थना सम्राट की प्रार्थना होगी। क्योंकि अब जिसे सुख की भी आकाक्षा न रही वही सम्राट है।

भिखारी लौटा दिये जाते हैं।

रहीम ने कहा है, 'बिन मागे मोती मिले, मागे मिले न चून।' वह इसी घडी के लिए कहा है कि परमात्मा के द्वार पर जो बिना मांगे खड़ा हो जाता है, उसे तो सब मिल जाता है, मोती बरस जाते हैं; और जो भिखारी की तरह खड़ा होता है, उसे दो रोटी के टुकडे भी नही मिलते। असल मे भिखारियों की अस्तित्व में

कोई जगह नही है, वहा तो जगह केवल सम्राटो की है ।

इसलिए तो सारे ज्ञानियो ने कहा है, तुम इच्छारहित हो जाओ । तुम मांगो मत । तुम जरा रुको, मागो मत—और देखो कि कितना मिलता है ! माग-मागकर ही तुम गवाये आ रहे हो । जितना तुम मांगते हो उतना कम मिलता है, जितना कम मिलता है उतनी तुम्हारी माग बढ़ती जाती है । जितनी ज्यादा तुम्हारी माग बढती है, उतना ही और कम मिलता जाता है । जिस दिन माग पूरी हो जाती है, मिलना बद हो जाता है । उस दिन तुम परम दीन हो जाते हो ।

इससे उलटी है यात्रा ।

मागो कम, मिलता ज्यादा । बिन मागे मोती मिले । और जिस दिन तुम्हे यह सूत्र समझ मे आ जाता है, उस दिन प्रार्थना में माग खो जाती है, प्रार्थना हृदय का उच्छ्वास हो जाती है । उसमे कुछ माग नही होती ।

दुखी आदमी तो बिना मागे कैसे प्रार्थना करेगा ?

दुख के स्वभाव को थोड़ा समझ ले ।

दुख का पहला लक्षण है कि दुख आदमी को सिकोडता है । तुमने भी अनुभव किया होगा जब तुम दुख मे होते हो तो सब सिकुड जाता है—जैसे प्राण सिकुड गये, जम गया पत्थर की तरह सब कुछ । जब तुम दुख मे होते हो तो तुम चाहते हो कि एक कोने मे छिप जाओ, कोई तुम्हे मिले न, कोई तुमसे बोले न ।

इसीलिए तो बहुत दुख की अवस्था मे लोग आत्मघात कर लेते हैं । आत्मघात का मतलब इतना ही है कि वे कब्र मे छिप जाना चाहते हैं, अब उपाय नहीं देना चाहते कि कोई दूसरा उनसे मिले, अब जीवन से वे बिलकुल टूट जाना चाहते हैं ।

दुख सिकोडता है । दुख बद करता है । दुख चाहता है कि अधेरे मे डूब रहो, न मिलो न जुलो, न बोलो, न किसी के पास जाओ । दुख आत्मघात सिखाता है । और परमात्मा है विस्तार और दुख है सिकुडना—उनका ताल-मेल नही । परमात्मा का अर्थ है यह जो फैला हुआ है सब ओर, यह जो अनन्त तक फैलता चला गया है, जिसकी कोई सीमा नही, जिसके कण-कण मे पदचिह्न हैं, और पत्ती-पत्ती पर जिसकी छाप है । लेकिन तुम उसकी सीमा न पा सकोगे, जो सब तरफ फैलता ही चला गया है ।

परमात्मा का स्वभाव विस्तार है । हिन्दुओ ने जो शब्द परमात्मा के लिए चुना है, वह है ब्रह्म । ब्रह्म का अर्थ होता है विस्तीर्ण, जो फैलता ही चला गया है । और दुख सिकोडता है, और परमात्मा है फैलाव । तुम विपरीत हो गये, तुम मेल न खा सकोगे ।

सुख फैलाता है। सुख मे तुम थोडे फैलते हो। सुख में तुम दूसरे से मिलना चाहते हो, भोज देते हो मित्रों को, प्रियजनों और परिवार को निकट बुलाते हो, हसते हो, गाते हो; मिलते हो जुलते हो। सुखी आदमी अपने सुख को बांटना चाहता है, क्योंकि सुख अकेले नही भोगा जा सकता। दुख अकेले भोगा जा सकता है। उसके लिए दूसरे की जरूरत ही नही है। दुख बिलकुल निजी है। सुख फैलाव मागता है, और भी प्राण मांगता है आसपास, जिनमे इस सुख का प्रतिबिम्ब बने, झलक उठे, सुख फैले। इसलिए सुख सदा बटता है, बटना चाहता है। सुख मे तुम्हारे प्राण थोडा-सा आयाम लेते हैं, तुम थोडे-से फैलते हो।

वह थोडा-सा फैलना प्रार्थना का क्षण बन सकता है, क्योंकि अभी तुम परमात्मा जैसे हो—बडे छोटे अर्थों में! अगर वह विराट है—सागर, तो तुम एक बूंद हो। लेकिन अभी तुम्हारा स्वभाव, गुणधर्म एक जैसा है तुम भी फैल रहे हो, परमात्मा भी फैल रहा है। अभी तुम एक कदम उसके साथ चल सकते हो, और जो एक कदम उसके साथ चल लिया, वह फिर कभी वापस नही लौटता। उसके साथ एक कदम चल लेना इतनी परिपूर्ण तृप्ति है, ऐसे अपरिसीम धन की उपलब्धि है, कि फिर कौन पीछे लौटता है, फिर कौन देखता है!

एक कदम उठ जाये, मंजिल आधी पूरी हो गयी। एक कदम उठ जाना ही काफी है। स्वाद आ गया—फिर तो तुम फैलते ही चले जाओगे, फिर तुम भूल ही जाओगे सिकुडना। फिर हजार सिकुडने की स्थितियां खडी हो जायें, तुम छलांग लगाकर बाहर हो जाओगे। तुम कहोगे, 'मैं सिर्फ फैलना जानता हू, मैंने फैलने का रस ले लिया है, अब मैं वह पागल नहीं जो सिकुडे, कि कोई गाली दे और मैं दुखी होकर सिकुड जाऊ। अब सिकुडना मैं चाहता ही नही। अब तुम कुछ भी करो, तुम मुझे सिकोड न सकोगे। अब तुम गाली दोगे, मैं धन्यवाद देकर फैलकर आगे बढ जाऊगा।'

जिसने एक बार स्वाद ले लिया—परमात्मा के साथ एक कदम चलने का, वही जानता है, प्रार्थना क्या है। वह एक कदम चलना सुख में हो सकता है। यह तुम्हे बहुत जटिल लगेगा। मगर इसी कारण तुम चूक रहे हो। तुम दुख में पुकारते हो—तब तुम्हारा कदम उठने को तैयार ही नही, पक्षाघात से भरा है, तब तुम चलने की कोशिश करते हो। और जब तुम्हारे पैर मे ऊर्जा है, और जब तुम नाच सकते हो, दौड सकते हो—तब तुम भूल ही जाते हो कि यह वक्त था जब मैं परमात्मा के साथ हो लेता। सुख मे विस्मरण हो जाता है, दुख मे याद होती है—इसलिए तालमेल नहीं बैठता, तुम चूकते चले जाते हो।

दुख का स्वभाव अंधेरा है। आनन्द का स्वभाव प्रकाश है, परम प्रकाश है। अंधेरे से उठी प्रार्थना प्रकाश के लोकों तक नहीं पहुंच सकती, अंधेरे में ही भटकती है। अंधेरे से उठी प्रार्थना भी अंधेरी होती है, वह रोशनी के जगत मे प्रवेश नही कर सकती।

तुमने कभी अंधेरे के टुकडे को रोशनी मे प्रवेश करते देखा है कि तुम घर में बैठे हो, दीया जला है, सब रोशन है, और देखा है कि खिडकी से एक अंधेरे का टुकडा भीतर चला आ रहा है? कोई ऐसा तुमने देखा है कि एक छोटी बदली, जैसा अंधेरे का टुकडा आ गया घर मे?

रोशनी आ सकती है अंधेरे में, अंधेरा रोशनी मे नही जा सकता। तुम घर मे बैठे हो अंधेरे मे यह हो सकता है, राह से गुजरता राहगीर लालटेन लिये हो तो उसकी रोशनी तुम्हारे कमरे में आ जायेगी, तैर जायेगी। लेकिन अंधेरा प्रकाश मे नही आ सकता। रोशनी प्रकाश में जा सकती है।

तो यह तो हो सकता है कि परमात्मा तुममे आ जाये, जब तुम अंधेरे से भरे हो, लेकिन यह नही हो सकता कि अंधेरे मे उठी प्रार्थना परमात्मा मे चली जाये। और जब तुम अंधेरे मे हो और दुख मे हो, परमात्मा आ जाये तो तुम उसे पहचान न सकोगे। वह आता भी है, लेकिन दुख मे भरी आखे सब तरफ अंधेरा देखती हैं और रोशनी को पहचान नही सकती। वे मान ही नही सकती।

बहुत बार इस पृथ्वी पर परमात्मा चला है, बहुत रूपो मे चला है कभी बुद्ध, कभी कृष्ण, कभी क्राइस्ट के रूप मे। उसने तुम्हारे द्वार पर दस्तक भी दी है, लेकिन तुम पहचान नही पाये, तुमने हजार बहाने खोज लिये हैं अपने अंधेरे मे, और तुमने अपने को समझा लिया है कि यह भी हमारे जैसा ही आदमी है—होगा थोडा ज्यादा समझदार! वह भी बडी मुश्किल से तुमने उतनी स्वीकृति दी है।

प्रकाश अंधेरे मे आये भी तो तुम आख बद कर लेते हो। तुम अंधेरे के आदी हो। और दूसरी बात तो हो ही नही सकती कि अंधेरे मे उठी प्रार्थना, और प्रकाश के लोक मे प्रवेश कर जाये। जो अंधेरे से उठता है, अंधेरे का स्वभाव है उसमे।

जब तुम सुख मे मगन हो, जब तुम सुख मे ऐसे मगन हो कि तुम बाटना चाहते हो, उसी क्षण अगर तुमने प्रार्थना की तो सुख का स्वभाव परम प्रकाश का तो नही है, वह कोई महासूर्य नही है सुख, छोटा मिट्टी का दीया है—लेकिन मिट्टी के दीये में भी जो ज्योति जलती है, उसका स्वभाव तो सूरज का ही है। इसीलिए तो सुख की इतनी आकाक्षा है। सुख की आकाक्षा मे वस्तुत आनद की आकाक्षा छिपी है। किसी दिन तुम खोज लोगे कि सुख की आकाक्षा मे वास्तविक आकाक्षा क्या है।

इसलिए तो तुम सुख को रोकना चाहते हो। वह तो क्षणभगुर है। मिट्टी का दीया कितनी देर चलेगा? ज्योति तो बुझेगी, तेल तो चुकेगा इसलिए तो तुम सुख को जोर से पकडते हो कि खो न जाये, शाश्वत हो जाये सुख। सुख शाश्वत नही हो सकता, यद्यपि शाश्वत सुख भी है। लेकिन तुम्हारी आकांक्षा साफ है कि तुम सुख को शाश्वत बनाना चाहते हो। तुम समझ नही पा रहे हो—तुम आनद की तलाश मे हो।

आनद शाश्वत सुख है। सुख आनद की एक झलक है—इस लोक में उतरी।

ऐसा समझो कि आकाश मे चाद है, और झील के पानी पर उसका प्रतिबिम्ब बनता है—बस ऐसा ही आकाश मे आनद भरा है और तुम्हारे मन की तरगो से भरी झील पर उसका प्रतिबिंब बनता है—वह सुख है। और जब वह भी खो जाता है—प्रतिबिंब भी खो जाता है—तब दुख है। जब प्रतिबिंब बन रहा है तब तो तुम असली चाद की तलाश मे निकल सकते हो, क्योकि तुम्हारे बीच और असली चाद के बीच थोडा-सा नाता है—प्रतिबिंब का ही सही। बहुत सपनीला है, जरा-सा कोई हिला दे झील को, मिट जायेगा। लेकिन अगर झील शात हो तो तुम अपने बनते प्रतिबिंब की राह से ही असली चाद तक भी पहुच सकते हो।

सुख झलक है परमात्मा की ससार मे। दुख उसका अभाव है। जब उसकी झलक है, तभी पुकार लेना, तब वह करीब है, तब कही आसपास है। झलक झूठी है, लेकिन जिसकी झलक है, वह सच है। जब झलक से तुम भरे हो, तब सब काम छोडकर प्रार्थना मे लीन हो जाना। यही बडी कठिनाई है सुख मे तो जरूरत ही मालूम नही पडती।

एक मा अपने छोटे बेटे को कह रही थी कि 'मैं दो दिन से देख रही हू कि तूने रात की प्रार्थना नही की, परमात्मा को धन्यवाद नही दिया।' समझाने के लिए उसने कहा कि 'देख इस गाव मे गरीब बच्चे हैं जिनको दो जून रोटी भी नही मिलती, कपडे फटे-चीथडे पहने हुए हैं। तुझे भगवान ने सब कुछ दिया है। धन्य-वाद देना जरूरी है।' उस लडके ने सिर हिलाया। उसने कहा कि 'यही तो मैं सोचता हू। तो प्रार्थना उनको करनी चाहिए, जिनको न रोटी है, न कपडे हैं, कि मुझको? मैं किसलिए प्रार्थना करू? सब मिला ही हुआ है और बिना ही प्रार्थना किये हुए मिला हुआ है—तो मुझे क्यों झझट मे डालना? प्रार्थना उनको करनी चाहिए जिनको कुछ नही मिला है।'

यह बच्चा तुम्हारे सबके मन की बात कह रहा है। यही तुम कर रहे हो। जब तुम दुख मे हो, तब प्रार्थना, जब तुम सुख में हो तब क्या जरूरत है? इसलिए

सुख में आदमी सहज ही भूल जाता है। जब मौका था नाव को छोड़ देने का सागर में, तब तो तुम भूल जाते हो और जब मौका बिलकुल नहीं था सागर में नाव को छोड़ने का—तूफान था सागर मे, ज्वार उठा था, भयंकर आंधी चलती थी और हवाएं प्रतिकूल थीं—तब तुम अपनी छोटी सी नाव को लेकर सागर के किनारे पहुंचते हो। तुमने डूबने की तैयारी ही कर ली। और जब सागर मे अनुकूल हवा थी कि पतवार भी न चलानी पड़ती, सिर्फ पाल तान देते, और सागर की हवा ही तुम्हे ले जाती, डूबने का कोई खतरा न था, न तूफान था न आंधी थी, सागर में छोटी-छोटी लहरें थी, जिनमे बड़ा निमंत्रण था—तब तुम भूल ही जाते हो कि यात्रा पर निकलना है।

तुम गलत मौका चुनते हो, इसलिए परमात्मा से चूके हुए हो। जब आदमी बीमार होता, अस्वस्थ होता, तब वह प्रार्थना करता है। बीमारी मे परमात्मा की याद कठिन है। हां, जिसने जान लिया, उसको तो हर घड़ी सम्भव है, उसको तो उसकी याद ही है, और कुछ नही रह जाता। लेकिन जो यात्रा पर निकल रहा है, उसको बीमारी में परमात्मा की याद करनी कठिन है। क्योंकि जब शरीर रुग्ण होता है तो शरीर ही ध्यान को आकर्षित करता है। सिर मे दर्द हो तो सिर का दर्द ही याद आता है। उस वक्त तुम कितना ही राम-राम जपो, हर राम के पीछे सिरदर्द होगा, दो राम के बीच मे सिरदर्द होगा, आगे-पीछे सब तरफ दर्द होगा। और राम-राम जपने से और सिरदर्द बढ़ेगा। जब शरीर रुग्ण है तब शरीर मांगता है सारा ध्यान। उस समय तुम प्रार्थना करने बैठे हो। जब शरीर स्वस्थ है तब शरीर भूला जा सकता है। स्वास्थ्य की परिभाषा ही यही है। जिन क्षणो मे तुम शरीर को बिलकुल भूल सको, वही स्वास्थ्य का क्षण है, क्योंकि जब भी शरीर बीमार होगा तो तुम पूरा नही भूल सकते। जहां बीमारी है, वहा शरीर तुमको चोट मारता रहेगा। सिर मे दर्द है तो वह याद दिलाता रहेगा। और यह स्वाभाविक है, नही तो सिरदर्द को तुम मिटाओगे कैसे? शरीर कहता है, यहा तकलीफ है, इसको मिटाओ। वह सूचन कर रहा है। वह खबर भेज रहा है कि सिर मे तकलीफ है, यह पहले जरूरी है, इसको मिटाओ, प्रार्थना वगैरह पीछे कर लेना, अभी अस्पताल जाओ, यह वक्त मंदिर जाने का नही है। वह यह कह रहा है कि शरीर बड़ी तकलीफ मे है।

और शरीर तुम्हारा आधार है। अगर उसकी याद भूल जाये तो शरीर सड़ ही जाएगा। तो शरीर तुम्हारा ध्यान आकर्षित करता है। इसलिए समस्त साधना-पद्धतियां चाहती हैं कि तुम पहले स्वस्थ हो जाओ। लेकिन जैसे तुम स्वस्थ होते

हो, वैसे ही तुम प्रार्थना को एक तरफ रख देते हो। तब दूसरे ज्यादा जरूरी काम तुम्हें करने जैसे मालूम पडते हैं। असल मे जब तुम स्वस्थ होते हो, तब तुम शरीर को भोगना चाहते हो। तब कौन प्रार्थना करे! जब रुग्ण होते हो, जब तुम शरीर को भोग नहीं सकते, तब तुम प्रार्थना करते हो। तब प्रार्थना हो नहीं सकती। जब स्वस्थ होते हो तब तुम कहते हो, 'कर लेंगे प्रार्थना। अभी कोई जल्दी है? अभी तो जवान हैं। आने दो बुढापा, कर लेंगे प्रार्थना। अभी कौन समय खराब करे! अभी जिन्दगी हरी-भरी है। अभी सब तरफ निमन्त्रण है। अभी बहुत कुछ भोगने को है।'

उमरखैयाम ने लिखा है कि सुबह-सुबह मैंने जाकर मधुशाला के द्वार पर दस्तक दी। भीतर से आवाज आई, अभी मधुशाला खुलने का समय नही है। तो मैंने कहा, सुनो, समय-असमय की बात नही, सूरज निकल चुका है, सांझ होने मे देर कितनी लगेगी, थोडा ही समय हाथ मे है, जितना पी सकू, पी लेने दो।

जब तुम स्वस्थ हो, तब लगता है थोडा ही समय हाथ मे है, जल्दी ही सांझ हो जाएगी। तब तुम मधुशाला की तरफ दौडते हो। जब तुम दौड नही सकते, पगु हो, बिस्तर पर पडे हो, जब कुछ और करने को नही सूझता, तब तुम प्रार्थना करते हो। प्रार्थना ऐसी मालूम पडती है कि तुम्हारे जीवन-व्यवस्था की फेहरिश्त पर आखिरी चीज है। जब कुछ करने को नही होता, तब तुम प्रार्थना करते हो। तुम किसे धोखा दे रहे हो?

प्रार्थना तुम्हारी फेहरिश्त पर जब प्रथम होगी तभी सुनी जा सकेगी। वस्तुत तो प्रार्थना ही जब अकेली तुम्हारी फेहरिश्त हो जाएगी, तभी सुनी जा सकेगी। जब तुम जीवन की सभी दिशाओ को प्रार्थना की दिशा मे ही डुबा दोगे, जब प्रार्थना ही तुम्हारा भोग, जब प्रार्थना ही तुम्हारा प्रेम, जब प्रार्थना ही तुम्हारा धन, जब प्रार्थना ही तुम्हारा पद, तुम्हारी प्रतिष्ठा होगी, जब प्रार्थना ही सर्वस्व होगी, तभी सुनी जा सकेगी। जब पूरे प्राणपण से एक लपट की भांति प्रार्थना उठेगी, तभी वह ज्योति परमात्मा के चरणो तक पहुच पाती है।

लेकिन जब तुम दीन-हीन होते हो, रुग्ण, अस्वस्थ, अस्पताल मे पडे, टाग-हाथ बधे, तब तुम प्रार्थना करते हो। तुम्हे प्रार्थना के लिए और कोई समय नही मिलता। जब तुम बूढ़े हो जाते हो, जीवन चुक जाता है, हाथ से समय खो गया होता है, सब अवसर तुमने मिट्टी कर दिये, जब जीवन की आखिरी घडी आने लगी और मौत की पगध्वनि सुनाई पडने लगी—तब तुम भयभीत, भय-कातर प्रार्थना, में सलग्न हो जाते हो।

नहीं, अस्वस्थ दशा मे प्रार्थना नहीं हो सकती। प्रार्थना के लिए एक आधारभूत स्वास्थ्य की जरूरत है। यह तो ऐसे ही है जैसे कि किसी वृक्ष को पानी न मिले, जमीन सूख गई हो, धूप भयकर पडती हो, वृक्ष का तन-प्राण कुम्हला गया हो, और तब वृक्ष फूलो को लाने की कोशिश करे—कैसे फूल आयेंगे? फूल तो वृक्ष के स्वास्थ्य से उत्पन्न होते हैं। फूल तो वृक्ष का अपरिसीम दान है—आनन्द का। फूल तो यह कह रहे हैं कि वृक्ष अब इतना भर गया है ऊर्जा से कि बाटने को तत्पर है, और वृक्ष के पास अब इतना है कि वह देगा। वह अपनी सुवास से अपने को बाटेगा। अनजान-अपरिचित हवाए ले जाए अब उसकी वास को, पहुचा दें दूर-दिगत तक!

वृक्ष में जैसे फूल हैं वैसे ही जीवन मे प्रार्थना है। जब तुम भरे-पूरे होते हो, जब सब तरफ ऊर्जा प्रवाहित होती है, जब सब तरफ भीतर युवापन होता है—तभी जीवन के फूल, तभी प्रार्थना के फूल सम्भव होते हैं।

लेकिन तुम उलटे क्षण चुनते हो।

ध्यान कोई थैरेपी या चिकित्सा नही है। चिकित्सा के लिए अस्पताल है, मदिर नही। चिकित्सा के लिए डॉक्टर है, गुरु नही। गुरु के पास तो तुम परिपूर्ण स्वस्थ होकर आना, तो वह तुम्हे अनन्त की यात्रा पर सरलता से ले जा सकेगा। लेकिन तुम गुरु के पास भी ऐसे आते हो, जैसे वह कोई डॉक्टर हो।

मेरे पास लोग आ जाते हैं। वे कहते हैं, बीस साल से मिर्गी आती है, वह मिटती नही। उसके लिए डॉक्टर है, उसके लिए अस्पताल है। यहा मैं मिर्गी ठीक करने को नहीं हू। और मिर्गी ठीक हो जायेगी, फिर करोगे क्या? जिनकी ठीक है, वे क्या कर रहे हैं? वही करोगे न? मिर्गी मे खुद ही उलझे हो, मिर्गी ठीक होगी तो दस-पाच को और उलझा दोगे। और क्या करोगे?

जीसस के जीवन में उल्लेख है कि जीसस एक गांव मे आये, और उन्होने एक आदमी को, युवा आदमी को, सुन्दर आदमी को एक वेश्या के पीछे भागते देखा। वे पहचान गये उस आदमी को, क्योकि वह आदमी पहले अधा था और जीसस ने ही हाथ से छूकर उसकी आखें ठीक की थी। तो उसे पकडा और कहा कि ना-समझ, क्या मैंने तुझे आखे इसलिए दी थी कि तू वेश्याओ का पीछा कर? उस आदमी ने बडे क्रोध से जीसस की तरफ देखा और कहा, 'आखो का उपयोग ही क्या है? यह तो तुम्हें देने के पहले ही सोच लेना था। आखिर आख मैं चाहता किसलिए था?—इसलिए कि रूप देखू। अब आख देकर शिकायत क्या कर रहे हैं?'

जीसस को उसने चौंका दिया होगा। उन्होने सोचा था कि शायद आख देने से

आंख परमात्मा की तरफ उठेगी। लेकिन बहुत आंखवाले हैं, किसकी आख परमात्मा की तरफ उठ रही है? अंधा जब तक था, तब तक शायद वह प्रार्थना करता रहा हो, और परमात्मा की स्तुति गाता रहा हो, जब आख मिल गई तो आदमी वेश्या की तरफ जाता है। आदमी बहुत अद्भुत है!

वे गाव के भीतर घुसे। उन्होने एक शराब-घर के बाहर, एक शराबी को बड़ा उत्पात मचाते देखा, शोरगुल मचा रहा है, अनाप-शनाप गालिया बक रहा है, मुह से फसूकर गिर रहा है। वे उसको भी पहचान गये। उन्होने कहा, 'अरे मेरे भाई, तू तो बिस्तर पर पडा था, हड्डी-हड्डी हो गया था। भूल गया।' उस आदमी ने भी गौर से जीसस को देखा और कहा, 'हा ठीक, मैं पहचानता हू। तुम्हीं ने मुसीबत खडी की। मैं तो अपनी शाति से अपने बिस्तर पर पड़ा था। अब तुमने मुझे स्वस्थ कर दिया, अब स्वास्थ्य का क्या करू?'

स्वास्थ्य हो तो आदमी शराब-घर जाता है, बीमार हो तो सद्गुरु की तलाश करता है। जीसस उदास होकर गाव के बाहर निकल गये। अपने ही किये पर पछतावा होने लगा होगा कि 'यह मैंने क्या किया! मैं तो सोचता था कि स्वस्थ आदमी पूजा-प्रार्थना मे लीन होगा, और वह मुझ पर नाराज हो रहा है कि अब क्या करू!'

गांव के बाहर जाते थे तो उन्होंने एक आदमी को देखा, जो एक वृक्ष से फदा लगाकर अपनी फासी लगाने की कोशिश कर रहा था। उन्होने उसे रोका कि रुको, यह क्या कर रहे हो? जब वह पास आया तो देखा यह भी पुराने परिचितो में से था। यह आदमी मर चुका था, जीसस ने इसको जिन्दा किया था। उस आदमी ने कहा, 'तुम मेरे दुश्मन हो, मित्र नही। मैं तो मर गया था, तो शाति हो गई थी, तुमने मुझे मरे से उठा दिया। और यह उपद्रव इतना ज्यादा है कि मैं अब जीना नही चाहता। तो मैं मरने का इन्तजाम कर रहा हू। और जो भूल मेरे साथ की, दूसरे के साथ मत करना। जो मर जाये, उसको मर ही जाने देना।'

क्योकि जिन्दगी इतना उत्पात है। आखिर जीवन का करोगे भी क्या? इसे थोडा समझ लेना, क्योकि अनेको को ऐसी भ्राति है कि सद्गुरु कोई चिकित्सक है। है चिकित्सक, लेकिन बीमारियो की चिकित्सा नहीं करता, स्वस्थो की चिकित्सा करता है। वह चिकित्सा स्वस्थ आदमी की है, बीमार की नही। बीमार के लिए तो दूसरे लोग हैं, वे कर लेते हैं। उसके लिए झझट मे पडने की सद्गुरु को कोई जरूरत नही है। सद्गुरु तो स्वस्थ की चिकित्सा करता है, क्योकि एक और महा स्वास्थ्य है, एक और महा जीवन है—जो, जब तुम स्वस्थ हो, तभी उस यात्रा पर

निकल सकोगे। लेकिन अगर तुम स्वस्थ हो जाओ तो तुम सद्गुरु के पास आते ही नहीं।

मेरे पास लोग आते हैं बीमार हैं या अशात हैं—शरीर से बीमार हैं या मन से बीमार हैं। वे कहते हैं, 'बडी अशांति है, कोई मार्ग बताइये।' जब चित्त तुम्हारा अशांत है, तब तो ध्यान करना बहुत मुश्किल होगा। तुम करीब-करीब विक्षिप्त दशा में हो। तुम्हारी अवस्था ऐसी नही है कि मैं तुमसे कहू कि तुम पाच क्षण के लिए शात बैठ जाओ तो तुम बैठ सको। मैं पूछता हू, जब शात थे, तब क्यो न आये? वे कहते हैं, 'जब शात थे तब जरूरत ही क्या थी? अशात है, इसलिए आए हैं।'

इस बात का बहुत बहुमूल्य है। स्मरण रखना जरूरी है, क्योकि जितने शात तुम मेरे पास आओगे उतनी आसानी से काम हो सकेगा। नही तो मेरी ऊर्जा और तुम्हारी ऊर्जा पहले तो तुम्हे शात करने में लगती है। व्यर्थ समय तो उसमे जाता है। और यह भी पक्का नही है कि शात होने के बाद तुम टिकोगे। शात होकर तुम भागोगे बाजार मे, क्योकि शाति तुम इसलिए चाहते हो कि जरा मन शात रहे तो धन थोडा और कमा ले, जरा मन शात रहे तो आनेवाला इलैक्शन लड ले। अब मन इतना अशात है कि कहां जायें, क्या करें—मुसीबत है!

मन की शाति तुम चाहते किसलिए हो कि ससार मे थोडी सफलता और मिल जाये? और ससार के कारण ही अशाति हो रही है। और शाति भी तुम इसी-लिए चाहते हो कि ससार मे और थोडी सफलता मिल जाये। अगर तुम शात हो भी गये तो तुम उस शाति को और नयी अशाति को पाने मे ही लगाओगे, और करोगे क्या?

इसलिए मेरी कोई उत्सुकता नही है कि तुम शांत हो जाओ। मेरी उत्सुकता तो इसमें है कि तुम ठीक से समझ लो कि तुम्हारी अशांति के कारण क्या हैं? और तुम कारणो को छोड दो। शांत होने की फिक्र मत करो, जड को पकड लो कि अशात होने के कारण क्या हैं।

कारण है—महत्त्वाकांक्षा कि बहुत धन इकट्ठा कर ले, कि बहुत बडे पद पर हो जाये, कि जिन्दगी मे लोगो को करके दिखा दें कि कुछ हैं, कि इतिहास मे नाम छूट जाये। यह तो तुम्हे अशात कर रही है बात। अगर तुम सामान्य जीवन के लिए राजी हो जाओ, तो अशान्ति की जरूरत क्या है? रोटी तुम कमा लेते हो। दिल्ली दिक्कत दे रही है! दिल्ली पहुचना है। बिस्तर तुम्हारे पास सोने को हैं, नींद तुम्हे ठीक आ सकती है, लेकिन बिस्तर पर नीद नही आ सकती है, क्योकि मन दिल्ली मे है और तुम यहां पूना मे सोते हो। फासला बहुत रहता है। मन

दिल्ली में, तुम पूना में। दोनों एक साथ सोओ तो ही सो सकते हो। तनाव खड़ा है। इतना तो काफी है कि तुम पानी पी लो, खाना खा लो, छप्पर बना लो। हर आदमी के लिए काफी है। अगर जरूरतें पूरी करनी हो तो पृथ्वी काफी है। लेकिन अगर वासना पूरी करनी है तो यह पृथ्वी क्या, अनन्त पृथ्वियां हों तो भी काफी नही। तब अशांति पैदा होती है। जब तुम किसी ऐसी चीज के पीछे जाते हो जो कि व्यर्थ है, तब अशांति पैदा होती है। होनी ही चाहिए।

मैं शांत करके और तुम्हे मुसीबत मे नही डालूगा। तुम्हे अशांत होना ही चाहिए, तभी तो तुम जागोगे। तुम्हारी अशांति ही तो तुम्हें एक दिन इस बात का बोध दिलायेगी कि जो कर रहे हो, वह ऐसा है कि उससे अशांति होगी ही। अब तुम हाथ आग मे डाल रहे हो और हाथ जलता है और तुम कहते हो कि कुछ उपाय बता दीजिये कि हाथ न जले, और आग मे तुम डाले ही जाते हो। जलना ही चाहिए, क्योंकि जलेगा तो ही तुम शायद खींचोगे।

अशांति मे तुम ध्यान करने को उत्सुक होते हो। शांति मे ध्यान करने को उत्सुक हो तो ही ध्यान लग पाएगा। अशांति को हटाने के लिए कारण अलग कर दो। महत्त्वाकांक्षा छोड़ दो। कुछ होने का कुछ सार नही है। ना-कुछ होने को राजी हो जाओ अशांति ऐसे विदा हो जाएगी जैसे सुबह की ओस सूरज के उगते ही विदा हो जाती है। अशांति को मिटाने के लिए किसी ध्यान की जरूरत नहीं है। अशांति को मिटाने के लिए तो सिर्फ ना-समझी को देख लेने की जरूरत है। सिकंदर होना है, हिटलर होना है—तो अशांत रहोगे ही। इसमे किसी का कोई कसूर नही है। तुम्हारी आकांक्षा यह है कि तुम हिटलर भी हो जाओ और शांत रहते हुए हो जाओ। इसलिए तुम ध्यान की तरफ आते हो। ध्यान तुम्हारे किसी काम न पड़ेगा। ध्यान तुम्हारा लगेगा भी नही।

एक राज्य के मिनिस्टर मेरे पास आते हैं। उनको चीफ मिनिस्टर होना है। और वे बड़ी कोशिश करते हैं कि कुछ भी रास्ता बता दे शांत होने का, सब गुरुओं के पास जाते हैं कि शांति का कोई रास्ता। मैंने उनसे पूछा, 'तुम्हे करना क्या है शांति से?' उन्होंने कहा कि न रात नींद ठीक से आती है, दिन मे चित्त अशांत रहता है, किसी भी काम मे मन नही लग पाता—इसलिए पिछड़ा जा रहा हू। दूसरे लोग मिनिस्टर होते जाते हैं, चीफ मिनिस्टर होते जाते है। और मैं आज पंद्रह साल से बस मिनिस्टर के पद पर ही उलझा हू। अब तक मुझसे पीछे आनेवाले लोग चीफ मिनिस्टर हो गए और मेरी अपनी उलझनें हैं कि कहीं सिरदर्द, कहीं नींद न आना, कहीं यह बीमारी, कहीं वह बीमारी। मैं ज्यादा सफर भी

नही कर सकता, शरीर कमजोर है। तो मैं पिछडा जा रहा हू। आप कुछ रास्ता बता दें कि चित्त शांत हो जाये।

चित्त शांत हो जाये तो उन्हे चीफ मिनिस्टर होना है। अभी मिनिस्टर होने मे इतना अशात है और चीफ मिनिस्टर होकर और भयकर अशाति होगी। अशाति तो सिर्फ देखने की बात है कि देख लो, समझ लो अपने भीतर, पैदा हो रही है, तो उसका अर्थ है कि तुम प्रकृति के प्रतिकूल चल रहे हो। उसका अर्थ है, तुम्हे जो होना चाहिए तुम वैसा नही हो। जो करना चाहिए, वह नही कर रहे हो, इसलिए अशात हो। अशाति तुम्हारा फल है, तुम्हारा कर्मफल है। मेरा कोई कसूर नही है कि मैं उसे शात करू। शात हो जाओ, फिर मेरे पास आओ, क्योकि मैं तुम्हे शात अवस्था मे ही किसी महान यात्रा पर भेज सकता हू, अशात हो तो मनोचिकित्सक है, उसके पास जाओ। बीमार हो तो चिकित्सक है, उसके पास जाओ। जब मन शात हो, शरीर स्वस्थ हो, तब मेरे पास आ जाना। तब सागर शात है, लहरो मे निमत्रण है—तुम्हारी छोटी-सी नाव को परमात्मा की यात्रा पर भेजा जा सकता है। मेरी उत्सुकता उसमे है।

लेकिन शात आदमी कहता है कि हम आये ही क्यो, हम तो शात हैं। स्वस्थ आदमी कहता है, अभी आने की क्या जरूरत है, जब अस्वस्थ हो जाएगे, आ जायेंगे। जवान आदमी कहता है कि अभी तो जवान हैं, अभी तो भोग ले, बाजार मे बडा रस है, जब बूढे हो जाएगे तब आ जाएगे।

मुझसे लोग पूछते हैं कि 'आप जवान लोगो को सन्यास देते हैं? सन्यास तो बुढापे के लिए है।' जब मर ही गये तब के लिए सन्यास है? जब कुछ बचा ही न करने को, हाथ-पैर भी न हिलने को रहे, तब के लिए सन्यास है? तो सन्यास तुम्हारे जीवन का हिस्सा नही है। सन्यास तो तब जब जीवन की ऊर्जा अपनी प्रगाढता मे हो, अपने शिखर पर हो, तभी यात्रा पर निकल पाओगे, क्योकि यात्रा बडी है।

सुखी आदमी भोग मे लीन होता है, और दुखी आदमी प्रार्थना की कोशिश करता है—इसीलिए लोग भटकते है और पहुच नही पाते। सुखी पहुच सकता है, अगर वह प्रार्थना मे लीन हो। शात पहुच सकता है, अगर वह प्रार्थना मे लीन हो।

अब हम इन पदो को समझने की कोशिश करे।

'सुख मे सुमिरन ना किया, दुख मे कीया याद। कह कबीर ता दास की, कौन सुने फरियाद॥'

सुख ही सुमिरन बन सके, इसकी चेष्टा करो। जब तुम पाओ—और अनेक बार तुम पाते हो—कि मन बडा प्रसन्न है, उस क्षण क्लब घर मत जाओ। जब मन बडा

प्रसन्न है, तब होटल में मत जाओ। जब मन बड़ा प्रसन्न है, तब रेडियो या टी वी. खोलकर मत बैठो। यह बहुमूल्य क्षण मुश्किल से मिलता है। यह बहुमूल्य क्षण ऐसा बाजार के कचरे मे फेंक देने के योग्य नही है। हीरे को मत फेंको। जब भी तुम पाओ कि शात क्षण आया है, भागो मदिर की तरफ—यह हीरा परमात्मा के चरणो मे चढ़ाने जैसा है, यह किसी वेश्या के चरणो मे मत चढ़ा आना। जब पाओ कि चित्त स्वस्थ है, हल्का है, उदास नही, एक भीतरी प्रफुल्लता है—तब हजार काम छोड देना यह वक्त प्रार्थना का है।

प्रार्थना को क्रियाकाण्ड मत बनाओ कि रोज सुबह उठकर कर लेंगे, क्योंकि कभी क्षण होगा, कभी नही होगा। मेरे हिसाब मे जब तुम सुख मे हो तभी सुबह है—वही ब्रह्ममुहूर्त है। घडी से नही चलता ब्रह्ममुहूर्त, ब्रह्म-मुहूर्त तुम्हारे भीतर की घडी की बात है। भरी दुपहर मे तुम अचानक पाते हो कि चित्त बड़ा प्रसन्न है इस क्षण मे, अकारण प्रसन्न है द्वार-दरवाजे बद कर दो—यह मौका खोने का नही, अभी प्रार्थना मे डूब जाओ, अभी कर लो स्मरण। यह छोटा-सा क्षण मिला है, इसका कर लो उपयोग। यह ज्यादा देर न रहेगा, लेकिन अगर इसका प्रार्थना मे उपयोग किया तो यह टिकेगा, काफी टिकेगा, यह गहरा होगा।

अगर तुमने सुख मे प्रार्थना की तो तुम पाओगे कि तुम्हारे सुख के क्षण बढ़ने लगे, रोज ज्यादा होने लगे, और सुख की गहराई भी बढ़ने लगी। अगर तुमने सुख का क्षण प्रार्थना के लिए उपयोग कर लिया और परमात्मा को चढाया, तो तुम्हारी भेंट स्वीकार हो जाएगी। तुम जल्दी ही पाओगे कि उसका प्रसाद तुम्हें मिलने लगा, और सुख बरसने लगा। जितना सुख बरसेगा, उतनी ही प्रार्थना तुम करने लगे ज्यादा, उतना ही ध्यान मे लीन होने लगे। जल्दी ही तुम पाओगे कि सुख चौबीस घटे थिर होने लगा और चौबीस घटे स्मरण चलने लगा। अब अलग बैठने की कोई जरूरत भी न रही। अब तुम जहा हो, वही उसकी याद है।

सुख के साथ जोड लो प्रार्थना को, तो इसी जन्म मे यात्रा पूरी हो सकती है। दुख के साथ मत जोड़ो। दुख तुम्हे पसद नही, परमात्मा को भी पसद नही। उदास शक्ले और गभीर लबे चेहरे लेकर मत परमात्मा के पास जाओ।

एक छोटा बच्चा चर्च से घर लौटा। वह पहली ही दफा चर्च गया था। उसकी मा ने कहा, कैसा लगा? उसने कहा कि गीत तो बहुत अच्छे थे, प्रवचन बहुत उबानेवाला था। और उसने पूछा कि एक सवाल मेरे मन मे उठता रहा कि जो लोग वहां बैठे थे, ये लोग क्या रोज चर्च आते हैं? उसकी मा ने कहा कि हा, ये जो लोग वहा बैठे थे, ये वर्षों से चर्च आते हैं, ये बड़े धार्मिक लोग हैं, गाव के

सब धार्मिक लोग हैं। तो उसने कहा कि परमात्मा इनके चेहरे देख-देखकर ऊब गया होगा। ऐसे बैठे हैं मरे-मराये। परमात्मा भी थक गया होगा रोज-रोज इनके चेहरे देख-देखकर।

चर्चों, मदिरो, मस्जिदो से परमात्मा भाग खड़ा हुआ है। वहां सब तरह के रोगी इकट्ठे हो जाते हैं। मदिर तो उत्सव का होना चाहिए। मदिर तो इन्द्रधनुष के रगो का होना चाहिए। मदिर मे तो फूलो की गध और तितलियो के पख होने चाहिए। मदिर मे तो प्रवेश करते ही नृत्य पकड लेना चाहिए--तो ही मदिर मदिर है। लेकिन कठिनाई है क्योकि दुखी लोग मदिर जाते हैं, सुखी लोग मदिर जाते नही। तो धीरे-धीरे मदिर उदास होता जाता है। और जो लोग दुखी हैं, वे मदिर जाकर यह कहते हैं कि जो लोग सुखी हैं, वे सब नर्क जाने की तैयारी कर रहे है। स्वभावत दुखी आदमी सुखी आदमी को बरदाश्त नही कर सकता। और दुखी आदमी चाहता है कि कोई हर्जा नही, आज हम दुख झेल रहे हैं, कल तुम झेलोगे, हमने अपना झेल लिया, तुमने नही झेला--झेलोगे। दुखी लोगो ने मदिरो और मस्जिदो मे बैठकर नर्क की धारणा की है सुख अपने लिए, और जो सुखी है आज ससार मे, दुख उनके लिए, महा नर्क। दुखी आदमी किसी को सुखी नही देखना चाहता, और दुखी आदमी सुखी से बडी ईर्ष्या करता है।

इसलिए तो तुम्हारे मदिर-मस्जिदो मे बैठे गुरु और साधु और सत दुख सिखा रहे हैं। वे सिखा रहे हैं तुम्हें कि उदास हो जाओ। वे सिखा रहे हैं कि उदासी प्रार्थना है। वे सिखा रहे हैं कि गंभीर हो जाओ। वे सिखा रहे हैं कि तुम जितना ही गभीर और मुर्दा चेहरा लेकर आओगे, उतनी ही तुम्हारी गहरी प्रार्थना होगी।

तो जरा बाहर जगत की तरफ देखो--परमात्मा के बनाये जगत को! वहा तुम उदासी देखते हो? अगर आदमी को हटा दो तो सिवाय उत्सव के वहा कुछ भी नही। परमात्मा थकता ही नही। फिर-फिर बसत आ जाता है। फिर-फिर मेघ घिर जाते हैं। फिर-फिर नाद गूजने लगता है मेघो का। प्रपात बहते जाते हैं परम निनाद मे।

परमात्मा की तरफ देखो। उसकी कृति की तरफ देखो। और ध्यान रखो, कृति की तरफ देखकर ही तुम उसके कर्ता की तरफ आख उठा पाओगे। अगर तुम चित्रकार को समझना चाहते हो, उसके चित्रो को देखो। और क्या ढग है इस चित्रकार को समझने का? उसके चित्रो में अगर तुम्हे फूल दिखाई पडते हैं और तितलिया दिखाई पडती हैं और गीत दिखाई पडते हैं, तो जाहिर है कि परमात्मा के मन मे उत्सव है, उदासी नही। लेकिन उदास आदमी, दुखी आदमी, पीडित-

परेशान, उत्सुक होता है प्रार्थना मे; क्योंकि वह सोचता है, शायद प्रार्थना से ये सब चीजें मिट जाये, और वह सारे मंदिरो को अपने साथ डुबा लेता है।

'सुख मे सुमिरन ना किया, दुख मे कीया याद। कह कबीर ता दास की, कौन सुने फरियाद।' कहा सुनी जाएगी उसकी प्रार्थना ? कौन सुनेगा उसकी फरियाद?

आनन्द मे कही गई प्रार्थना ही सुनी जाती है, क्योकि आनन्द परमात्मा का स्वर है, वह परमात्मा की भाषा है। दुख तुम्हारी भाषा है। परमात्मा उस भाषा को समझता ही नही। दुख तुमने अपना पैदा किया है। परमात्मा ने तो तुम्हे भी फूल की तरह नाचने और गाने को ही पैदा किया है। दुख तुम्हारी कृति है, वह तुम्हारा कर्म है। वह तुम्हारी सभावना नही है, सभावना तो तुम्हारे आनन्द की है। दुख की भाषा परमात्मा को समझ ही नही आती। इसलिए जीसस ने कहा है, 'जो छोटे बच्चो के भांति होंगे, वे मेरे प्रभु के राज्य मे प्रवेश पा सकेंगे। छोटे बच्चो की भांति नाचते, कूदते, प्रफुल्लित !

'सुमिरन सुरत लगाइके, मुख ते कछू न बोल।'

प्रार्थना कोई बोलना नही है। प्रार्थना मे कुछ कहना नही है। तुम जो भी कहोगे, वह गलत होगा। तुम गलत हो। तुम जो भी कहोगे, वह अंधेरे का हिस्सा होगा। तुम्हारी सारी वाणी तुम्हारे मन से आती है—जो अधकार है, अज्ञान है।

इसलिए कबीर कहते हैं, 'सुमिरन सुरत लगाइके'—प्रभु की याद करके, मुह को बद करके शात हो रहो। 'मुख ते कछू न बोल'—कुछ कहने की जरूरत नहीं है, परमात्मा समझता है। तुम्हारे चिल्ला-चिल्लाकर कहने की कोई जरूरत नही है।

एक मुल्ला अजान लगा रहा था मस्जिद पर, कबीर पास से निकले, तो उन्होने चिल्लाकर कहा, 'क्या कर रहा है ? क्या बहरा हुआ खुदा ? इतने जोर से क्यो चिल्ला रहा है ? क्या खुदा बहरा हो गया है ?'

शब्द की तो कोई जरूरत नही है। तुम तो अपने हृदय को उसके सामने खोल-कर रख दो। तुम यह भी मत कहो कि मुझे यह चाहिए, वह चाहिए, क्योकि तुम्हारी चाह गलत ही होगी। तुम खुद ही पछताओगे पीछे। अगर तुम्हारी चाह भी पूरी हो जाये, तो तुम रोओगे, पछताओगे, छाती पीटोगे।

मिदास की यूनान मे एक कथा है। उसने पूजा की, प्रार्थना की और किसी देवता को राजी कर लिया, तो उसने कहा, माग ले वरदान। तो मिदास ने कहा, मैं जो भी छुऊ, वह सोना हो जाये। शुरू हो गया दूसरे दिन से, जो भी छुए, सोना होने लगा। फिर छाती पीटने लगा और चिल्लाने लगा, क्योकि पत्नी को छुआ और वह सोना हो गई, बेटे-बेटी भाग गए घर छोडकर, दरबारी फासले

पर खड़े होकर वहा इतने दूर से बात करने लगे, क्योंकि अगर छू दे, तो मारे गये। भोजन करे, सोना हो जाये। पानी पीये, सोना हो जाये। बहुत चिल्लाने लगा कि क्षमा कर दो, भूल हो गई।

तुमने भी मागी होती ! चाह अज्ञान से निकली होगी तो ऐसा ही होगा। मांगते वक्त तो बडी समझदारी की लगी थी। बडे मजे का था, सीधा मामला था—जो भी छुआ, सोना हो जाये। अब इससे बडा और क्या हो सकता था ? महल छुआ, सोना हो गया, पहाड छुआ, सोना हो गया—अब तुम्हारे धन का, धान्य का क्या अन्त था ! लेकिन अज्ञान देख नही सकता पूरी स्थिति। भूखा मरने लगा मिदास। पानी न पी सके, खाना न खा सके। पत्नी मर गई, बच्चे घर छोडकर भाग गये, सारा गाव दुश्मन हो गया। सोना तो हो गई चीजे, लेकिन सोने को खाओगे या पीओगे ?

और मिदास की कथा अधिक लोगो की कथा है। जिन्दगीभर कोशिश करके आखिर मे तुम थोडा-बहुत सोना इकट्ठा कर लेते हो, उसमे पत्नी भी मर गई, बच्चे भी भाग गये, उसी उपद्रव मे—सोना करने मे। उसमे तुम भी भूखे रहे, प्यासे रहे, कभी ठीक से सो न सके, कभी दो क्षण चैन के न पाये। अखीर मे सोना हो गया इकट्ठा तुम मरने को तैयार!

मिदास ने आत्महत्या कर ली, और करने को कुछ बचा नही। चाह पूरी हो तो ऐसी मुसीबत आती है।

नही, तुम कुछ मागना मत।

'सुमिरन सुरत लगाइके . ।' और ये शब्द 'सुमिरन सुरत' समझ लेने जैसे हैं। ये कबीर के पारिभाषिक शब्द हैं।

सुरति शब्द आता है बुद्ध से। बुद्ध जिसको सम्यक् स्मृति कहते थे, वही शब्द लोक-भाषा मे आते-आते स्मृति से सुरति हो गया। स्मृति का अर्थ है माइडफुल-नेस, समग्र होश, होशपूर्वक।

होशपूर्वक बैठ जाना। प्रार्थना की कोई जरूरत नही। मुख से कुछ बोलना नही है। सिर्फ शात रहना। स्मृति का क्या अर्थ है, जिसे कबीर ने कहा है ? कई बार वे एक ही प्रतीक का बार-बार उपयोग करते हैं, क्योंकि वह उन दिनो बडा सार्थक प्रतीक था। वे कहते हैं, गाव की स्त्रिया पनघट से पानी भरकर लाती हैं, तो वे सिर पर दो-दो तीन-तीन घड़े रख लेती हैं, हाथ से पकडती भी नही, दोनो हाथ खुले छोडकर गपशप बातचीत करती हुई गाव के भीतर आती हैं—लेकिन उनकी सुरति घडो मे लगी रहती है। हाथ से पकडा नही है, सुरति से पकडा है। याद

घड़े की बनी रहती है। होश घड़े का बना रहता है कि घडा गिर न जाये। कुछ शब्द की भी जरूरत नही रहती। ऐसा कुछ बार-बार भीतर वे दोहराती नहीं कि कही घडा गिर न जाये। न, शब्द की कोई जरूरत नही, सिर्फ होश. और घडा नहीं गिरता, घडा सम्हला रहता है। बातचीत करती रहती हैं, गीत गाती रहती हैं, उछलती-कूदती गाव की तरफ वापस लौटती हैं। अब तो वैसे दृश्य न रहे, क्योंकि पनघट भी न रहे। नल-घट हैं, और उन पर सिवाय उपद्रव के, झगड़े के और कुछ भी नहीं। लेकिन वह प्रतीक सार्थक है। भीतर एक होश बना है, होश से सम्हाला है घड़े को।)

कबीर कहते हैं, ऐसे ही शात होकर बैठ जाना, सिर्फ होश रह जाये, भीतर का दीया जलता रहे। कुछ बोलना मत।

'सुमिरन सुरत लगाइके, मुख ते कछू न बोल।' लेकिन यह तभी होगा जब तुम सुख मे, जब तुम शाति में, जब तुम स्वस्थ हो, तभी होगा। नही तो अशाति घूमती रहेगी, मुख न बोलेगा तो अशाति घूमेगी। इसलिए सुख के क्षण को खोजो। सुख आता है, क्योंकि एक नियम है जीवन का जब दुख आता है तो सुख भी उसके साथ का पहलू है। तुम्हे पता न चलता हो आपाधापी मे, लेकिन थोडा तुम खोजोगे तो पा लोगे। जैसे दिन के पीछे रात है, रात के बाद दिन है--ऐसा हर दुख के बाद सुख है, हर सुख के बाद दुख है। एक रिदम, एक लयबद्धता है जीवन मे।

तुम दुख को देखते रहते हो, इतने परेशान हो जाते हो दुख मे, कि उसके पीछे आता सुख तुम्हे याद ही नही पडता, दिखाई भी नही पडता। जरा होश सभाल-कर अगर तुमने जागृत होकर देखा तो तुम जल्दी ही पा लोगे कि चौबीस घटे मे कई क्षण आते हैं, जब मन मे एक रस होता है, जब सब शात होता है। उसी क्षण . 'सुमिरन सुरत लगाइके, मुख ते कछू न बोल। बाहर के पट देइकै, अतर के पट खोल।'

अब बाहर के पट बद कर लो। सुख है भीतर, सम्हाल लो। बाहर के सब पट बद कर दो कि कहीं बह न जाये। पुरानी आदत है सुख जब भी आता है, बाहर बहता है। सुख आया कि भागे, कि चलो किसी मित्र को पकड़कर ताश ही खेल ले। सुख आया कि भागे, चलो मित्र के पास बैठकर गाजा पी ले। सुख आया कि तुम भागे--अब सुख को कही व्यय कर ले। सुख को व्यय मत करो। सुख को बचाओ। उससे बडी कोई सपदा नही है। उस लयबद्धता का तुम तरग की तरह उपयोग करो कि वह तरग तुम्हे परमात्मा में ले जाये।

'बाहर के पट देइकै, अन्तर के पट खोल।' अब तुम बाहर की बात ही भूल

जाओ। सुख को भीतर सम्हाल लो। शात बैठ जाओ। कुछ करने का नहीं है, कुछ कहने का नही है, परमात्मा समझता है। तुम जितना अपने को समझते हो, उससे ज्यादा वह तुम्हे समझता है। उसने तुम्हे बनाया है। तुम उससे आये हो। वह तुम्हारे रोए-रोए को समझता है। तुम तो अपनी सतह को ही जानते हो, वह तुम्हारे केन्द्र को भी जानता है। तुम तो सिर्फ अपनी ऊपर-ऊपर की खोल को पहचानते हो, वह तुम्हारे भीतर के अन्तरतम को जानता है। इसलिए तुम कुछ मत करो। तुम सिर्फ बाहर के पट बद कर दो, अन्तर के पट खुले कर दो। हृदय खोल दो परमात्मा के सामने, बस।

'माला तो कर मे फिरै, जीभ फिरै मुख माहि। मनुआ तो दहुदिसि फिरै, यह तो सुमिरन नाहि ॥'

न तो जरूरत है कि तुम हाथ मे लेकर माला फेरो, क्योकि हाथ मे फिरती माला का क्या परमात्मा से सबध है? 'माला तो कर मे फिरै'—और तुम अगर प्रार्थना कर रहे हो कि तुम पतित पावन हो और मैं पतित हू, और तुम यह हो और मैं वह हू—इस सब बकवास मे अगर तुम लगे हो, जैसा कि भक्तगण लगे रहते हैं 'जीभ फिरै मुख माहि'—यह तो सिर्फ जीभ फिर रही है मुख मे, इसमे हो क्या रहा है? 'मनुआ तो दहुदिसि फिरै'—और मन तो दसो दिशाओ मे घूम रहा है।

ग्यारह दिशाए हैं। मन दस दिशाओ मे घूम सकता है, ग्यारहवी मे नही। ग्यारहवी तुम हो। आठ दिशाए चारो तरफ, एक नीचे जानेवाली दिशा, एक ऊपर जानेवाली दिशा—दस दिशाए, और एक भीतर जानेवाली दिशा है। तो मन तो दस दिशाओ मे घूम सकता है, ग्यारहवी दिशा मे उसकी कोई गति नही है। कबीर कहते हैं कि 'सुमिरन सुरत लगाइके,' तुम ग्यारहवी दिशा मे डूब जाओ। न तो हाथ मे माला फेरने की जरूरत है, न मुह मे जीभ फेरने की जरूरत है, न मन को दसो दिशाओ भटकाने की जरूरत है। मन की कल्पनाओ की भी कोई जरूरत नही।

बहुत-से लोग मन की कल्पना करते हैं, जब प्रार्थना करने बैठते है। तब वे सोचते हैं कि प्रकाश दिखाई पड रहा है, कि कुडलिनी जग रही है, कि परमात्मा सामने खडे हैं—बासुरी बजा रहे हैं, कि रामचन्द्र खडे हैं धनुष्य लिये। इस सब मे कुछ सार नही है। यह तो मन दस दिशाओ मे भटक रहा है। मन के बनाये राम, कि कृष्ण, कि क्राइस्ट कुछ काम न आएगे। वह तो कल्पना का जाल है। कुछ भी मत करो, क्योकि तुमने कुछ किया कि तुम बाहर गये। अन-किये हुए रहो। अकर्ता बन जाओ।

'जाप मरै अजपा मरै, अनहद भी मरि जाय। सुरत समानी सब्द मे, ताहि काल नहिं खाय ॥'

तुम कुछ भी करोगे, वह सब मरनेवाला है। तुम्हारे कर्तृत्व से जो भी पैदा होता है, वह सब मर जायेगा। तुम्हारा शरीर मरणधर्मा है। माला फेरोगे मरण-धर्मा से, अमृत मे नही ले जाएगी। मरणधर्मा की यात्रा अमृत मे कैसे ले जा सकती है? तुम्हारे ओठ, जीभ भी मर जाएगे। तो उन ओठ और जीभ की तड़फड़ाहट से पैदा हुए शब्दो का उस परमात्मा तक कैसे पहुचना हो सकता है? जाप जिनसे पैदा होता है, वही कल मिट्टी मे मिल जाएगे, तो जो उनसे पैदा हुआ था, वह भी मिट्टी मे खो जाएगा।

तुम्हारा मन भी मरणधर्मा है, प्रतिपल मरता है। उसकी कल्पनाओ का कुछ सार नही है। तुम क्षणभगुर को मत पकडो। इसलिए कबीर एक बडी क्रान्ति-कारी बात कहते हैं। कहते हैं, 'जाप मरै'–अगर तुमने जाप की, जाप मर जाएगी, 'अजपा मरै'–अगर तुमने अजपा किया तो वह भी मर जाएगा। क्योकि, अजपा जाप का ही सूक्ष्म रूप है। पहले तुम जाप करते हो कि तुम राम, राम, राम, राम दोहराते हो। पहले जोर से दोहराते हो, वह स्थूल रूप है। फिर तुम ओठ बद कर लेते हो, भीतर दोहराते हो–राम, राम, राम–वह सूक्ष्म रूप है। वह जाप है। फिर तुम वह भी बद कर देते हो, कि तुम दोहराते नही, ओठ मे भी नहीं दोहराते, जीभ नही हिलती, ओठ भी नही हिलते, सिर्फ मन मे ही राम, राम, राम–वह और भी सूक्ष्म रूप है। लेकिन सभी के पीछे तुम्हारा कर्तृत्व छिपा है।

'जाप मरै अजपा मरै, अनहद भी मरि जाय।' और तुम जिस अनहद को सुन लेते हो, वह भी मर जायेगा, क्योकि अगर ओम् को तुमने जाप बनाया और तुम ओम् का जाप करते रहे तो एक ऐसी घडी भी आ जाती है जब तुम्हे जाप करने की जरूरत नही रहती। भीतर भी नही रहती, मन मे भी ओम् को दोहराने की जरूरत नही रहती। ओम् तुममे इस तरह समाविष्ट हो जाता है कि तुम बिलकुल शब्द बद कर दो तो भी ओम् गूजता रहता है। वह प्रतिध्वनि है। उसको लोग अनहद समझ लेते है। ऐसा समझो कि जैसे हम एक घटा बजाये घटा बद हो गया, लेकिन थोडी देर पीछे उसकी प्रतिध्वनि गूंजती रह जाती है। धीरे-धीरे धीरे-धीरे प्रतिध्वनि खोती है।

अगर तुम वर्षों तक ओम् का पाठ करते रहो, तो तुम्हारे भीतर इतना मोमे-न्टम इकट्ठा हो जाएगा कि तुम अगर पाठ न भी करो, तुम जाप भी छोड दो, अजपा भी छोड दो, सिर्फ आख बद करके बैठ जाओ तो वह जो वर्षों तक जाप

किया है, वह तुम्हारे रोएं-रोएं मे, तुम्हारे कण-कण में समा गया है। उसमें प्रतिध्वनि गूंजेगी। अब तुम अचानक पाओगे कि ओम् का तो जाप अपने-आप हो रहा है। यह भी मर जाएगा। यह भी प्रतिध्वनि है। जब मूल ही मर गया तो प्रतिध्वनि कितनी देर रह जाएगी! इसलिए कबीर कहते हैं, 'अनहद भी मरि जाय।' अनहद का अर्थ है ओंकार।

'सुरत समानी सब्द में, ताहि काल नहिं खाय ॥' सिर्फ एक ही चीज बचती है, उसी को पकड़ लो, वही सहारा है। उसके अतिरिक्त तुमने कुछ और पकड़ा कि तुम डूबे। 'सुरत समानी सब्द में'—तुम्हारी जो स्मृति की क्षमता है, जागरण की क्षमता है, होश की क्षमता है, यह तुम्हारे भीतर सबद मे समा जाये। सबद पारिभाषिक शब्द है। बाइबिल में कहा है, 'इन दि बिगिनिंग देअर वाज वर्ड, ओनली दि वर्ड एक्जिस्टेड एण्ड नथिंग ऐल्स।' शुरू में सबद था। उस सबद से ही सब पैदा हुआ। उस सबद के अतिरिक्त शुरू मे कुछ भी न था। इस सबद को तुम शब्द मत समझ लेना।

जैसा वैज्ञानिक कहते हैं कि सारे अस्तित्व की मूल ऊर्जा विद्युत है, सभी चीजे विद्युत-कणो से बनी हैं—वैसे ही ज्ञानियों ने कहा है कि सभी चीजो की मूल ऊर्जा ध्वनि है, विद्युत नहीं और सभी चीजें ध्वनि से ही बनी हैं। और इन दोनो मे बड़ा तालमेल है। और दोनो सही हो सकते हैं। दो तरफ से एक ही चीज को देखने का ढंग मालूम होता है। अगर तुम एक ही ध्वनि का उच्चार करते रहो तो ताप पैदा हो जाता है। इतना ताप भी पैदा हो सकता है कि तुम कल्पना भी न कर सको।

तिब्बत मे उसके बड़े प्रयोग किये गये हैं और एक खास योग की साधना है तिब्बत मे ताप पैदा करने की। तो तिब्बत मे तो बर्फ जमी रहती है, चारो तरफ बर्फ पड़ती रहती है, और उस योग का साधक नग्न खड़ा रहता है बर्फ मे और पसीना चूता रहता है। नग्न खड़ा रहता है और शरीर से पसीना झरता रहता है। वह कुछ भी नहीं करता, वह सिर्फ भीतर तिब्बत का एक मंत्र है 'ॐ मणि पद्मे हुम्'—ओंकार का ही एक रूप है—वह उसका भीतर पाठ करता है। वह उसकी जोर से रटन करता है। वह रटन इतनी गहन हो जाती है, उसकी चोट इतनी गहरी पड़ती है कि सारा शरीर उत्तप्त हो जाता है, गिरती बर्फ मे हाथ से पसीना चूने लगता है।

दोनो सही हो सकते हैं।

संगीतज्ञो ने बहुत बार संगीत से दीये को जलाया है। जो लोग मिलिटरी साइंस का अध्ययन करते है, सैन्य विद्या का, उनको पता है कि पुलों पर से जब सैनिक

गुजरते हैं तो उनको कह दिया जाता है कि वे लयबद्धता से न गुजरें, एक साथ पैर न उठायें, पैरों की लयबद्धता तोड़ दें—क्योंकि बहुत बार बड़े-बड़े पुल सैनिकों की लयबद्धता से गिर गये हैं। सैनिक गुजरते हैं तो उनके पैर लेफ्ट-राइट करते हुए एक साथ उठते हैं। उस चोट से एक खास तरह की ध्वनि पैदा होती है, और अनेक बार बड़े से बड़े मजबूत पुल जिस पर से ट्रेनें गुजर जाती थीं, ट्रक गुजर जाते थे, थोड़े-से सैनिकों के गुजरने से गिर गये हैं।

ध्वनि का एक आघात है। और अब तो ध्वनि पर काफी अध्ययन हो रहा है। रविशंकर के सितार पर केनेडा में प्रयोग किया गया है। रविशंकर सितार बजाते रहे और दोनों तरफ दो क्यारियों में बीज बोये गये। वे रोज एक घंटा वहां सितार बजाते हैं और वे बीज धीरे-धीरे बड़े होते हैं। वे सब पौधे सितार की तरफ झुके हुए बढ़े—सब पौधे! एक भी दूसरी तरफ नहीं झुका। सब पौधे—जैसे सुनने को बहरा आदमी कान पास में ले आता है, ऐसे पौधे सितार सुनने को कान पास ले आये। और सितार के कारण जो पौधा तीन महीने में फूल देने योग्य होता, वह डेढ़ महीने में फूल देने योग्य हो गया। तो ध्वनि ने कुछ जीवन-ताप पैदा किया, कुछ ऊर्जा पैदा की, संगीत ने कुछ किया।

मोजर्ट के एक प्रसिद्ध संगीत पर अनेक मुल्कों में कानूनी रूप से रोक लगा दी गई है। उसका कोई उपयोग नहीं करता, क्योंकि बहुत-से लोग उसको सुनते वक्त मर गये हैं। तो उसके एक खास संगीत 'नाइथ सिम्फोनी' पर रोक लगा दी गई है। बाजार में मिलता नहीं उसका रिकार्ड, क्योंकि वह खतरनाक है। वह इतना शांति में ले जाता है कि आदमी तत्क्षण विलीन हो जाता है। तो शांति धीरे-धीरे समाधि बन जाती है, मौत हो जाती है।

कबीर जिसको सबद कहते हैं, उस सबद का अर्थ है इस जगत की मूल ध्वनि, जिससे सारा जगत पैदा हुआ है, वही ओंकार है। उसे तुम्हारे जाप से सुनने की जरूरत नहीं है। जिस दिन तुम बिलकुल ही शांत हो जाओगे, उस दिन वह सुनाई पड़ेगी। सुनाई पड़ेगी, यह कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि वहां सुननेवाला और सुनाई पड़नेवाली ध्वनि दो न होंगे, तुम्हीं सुनोगे तुम्हीं को। तुम्हारा ही अस्तित्व ध्वनित होगा। उस परम ध्वनि का नाम सबद है। इसलिए सबद को मैं सबद ही कह रहा हूं, शब्द नहीं। शब्द मत कहना। सबद कबीर का लोगोस है, जिसको दि वर्ड बाइबिल में कहा है। वह जीवन की, अस्तित्व की परम ध्वनि है, जिससे सब चीजें निर्मित हुई हैं। कबीर कहते हैं, 'सुरत समानी सब्द में'—तुम अपने उस मूल स्रोत में समा जाओ, इतने शांत हो जाओ कि जैसे गंगा गंगोत्री में समा गई हो।

ऐसा समझो कि वृक्ष में फल लगे हैं, फल वापस फूलो मे समा गये, फूल वापस पत्तियो मे समा गये, पत्तिया वापस शाखाओ मे समा गईं, शाखाए पीड मे समा गईं, पीड जडो मे समा गई, जडें वापस बीज मे समा गईं—वह बीज 'सब्द' । तुमने सब विस्तार समेट लिया, सब पसारा समेट लिया, और समाने लगे भीतर । एक ऐसी घडी आती है, जब तुम्हारी चेतना, तुम्हारा होश मूल बीज मे समा जाता है। कबीर कहते हैं, वही एक अमृत है, बाकी तो सब मर जाएगा। तुम्हारा किया कुछ भी न बचेगा। जो तुम्हारे से भी पहले से है, जो तुम्हारे करने के पीछे छिपा है, जो तुम हो, वही बचेगा। कृत्य तो खो जाएगे, कर्ता खो जाएगा, सिर्फ आत्मा बचेगी।

'सुरत समानी सब्द मे, ताहि काल नहिं खाय ।'

'तू तू करता तू भया, मुझ मे रही न हू ।'

और कबीर कहते है कि समाते समाते, भीतर सुरति के डूबते-डूबते—और उस सारे डूबने मे तेरी ही याद थी, शब्दो मे कही नही, माला से फेरी नही, होठो पर दोहराई नही, भीतर जाप न किया, अजपा की फिक्र न की—लेकिन इस सारी यात्रा मे याद तेरी थी, याद शब्दो की न थी, प्राणो की थी, स्मरण तेरा ही बना था।

'तू तू करता तू भया'—और जितनी यह याद गहन होने लगी, उतना ही पाया कि मैं तो मिटता जा रहा हू और तू ही होता जा रहा है ।

'तू तू करता तू भया, मुझ मे रही न हू ।' और एक दिन अचानक पाया कि मैं तो खो ही गया, 'हू' भी खो गई।

'मैं हू' हम कहते हैं। 'मैं'—अहकार, अकड, 'हू'—अकड की छाया, अस्मिता उतनी अकड नही, बडी विनम्र। मैं का आदमी तो अलग दिखाई पडता है अकडा हुआ, उसको तुम पहचान सकते हो—उसकी चाल, उसकी आख, उसका ढग हर घडी वह कह रहा है, अपने चारो तरफ सदेश भेज रहा है, ब्रॉडकास्ट कर रहा है कि मैं कुछ हू, तुमने मुझे समझ क्या रखा है? हर घडी वह बतला रहा है कि मैं कुछ हू—कपडो से, उठने-बैठने से। यह तो सीधी स्थूल अहकार की दशा है। इसको हमने अहकार कहा है। फिर एक और अहकार की दशा है जो बडी विनम्र है साधुओ मे मिलेगी, समाज-सेवको में मिलेगी, सज्जन पुरुषो मे मिलेगी। यह तो दुर्जन मे मिलता है अहकार कि अकडा हुआ खडा है। सज्जन झुका हुआ खडा होता है। वह तो कहता है, मैं ता आपके पैरो की धूल हू।' वह तो लखनवी होता है; वह कहता है 'पहले आप।'

ऐसा मैंने सुना है—पता नही कहा तक सच है—कि लखनऊ में ऐसा हो गया कि एक महिला गर्भवती हुई और पैतालीस साल तक उसको बच्चा पैदा न हुआ।

चिकित्सक भी घबड़ा गये। आखिर ऑपरेशन करना पड़ा, तो पाया कि वहां तो एक बच्चा नही, दो बच्चे थे और पक्के लखनवी थे, और उनसे कहा कि बाहर निकलो। उन्होने कहा, "यही तो अड़चन है, मैं इनसे कहता हू, 'पहले आप'; ये मुझसे कहते हैं, 'पहले आप।' निकलना नही हो पाता। अब यह तो अहकार होगा कि पहले मैं निकल जाऊ।"

तो विनम्रता है, सस्कृति है, सभ्यता है—वहा मैं का स्थूल रूप तो खो जाता है, लेकिन अस्मिता रह जाती है। विनम्र आदमी का भी एक अहकार होता है कि मुझसे ज्यादा विनम्र कोई भी नही, मैं तो आपके चरणो की धूल हूं। कहता वह यही है, लेकिन इसमे भी वह जाहिर कर रहा है कि 'मैं कोई साधारण नही हू, बडा असाधारण पुरुष हू चरणो की धूल—देखो! मैं कोई अहकारी नही हू, मैं तो विनम्र हू!'

इसको कबीर कहते हैं 'हू'। सस्कृत मे उसके लिए शब्द है 'अस्मिता'। अहकार स्थूल रूप है, अस्मिता सूक्ष्म रूप है। अहकार ठोस है, अस्मिता छाया है। पहले अहकार मिटता है, फिर अस्मिता जाती है।

'तू तू करता तू भया, मुझ मे रही न हू।' और अब तो छाया भी न बची मेरी। अब तो यह भी नही कह सकता कि मैं नही हू। अब तो यह भी नही कह सकता—होने की तो घोषणा कर ही नही सकता, नही होने की भी घोषणा नही कर सकता। 'हू' भी जा चुकी।

'वारी तेरे नाम पर, जित देखू तित तू।' और अब जहा देखता हू, तुझे ही पाता हू। बाहर-भीतर सब खो गया, तू ही बचा। अपना पराया सब खो गया, तू ही बचा। पदार्थ-चेतना सब विलीन हो गई, तू ही बचा। बूद सागर मे गिर गई।

यह घडी है समाधि की। यही घडी तुम्हारी परम नियति है। और जब तक तुमने इसे न पाया तब तक कुछ भी पा लो, समझना कि कुछ पाया नही। और जब इसे पा लिया, तब कुछ पाने योग्य बचता नही।

'कस्तूरी कुडल बसै।'

★ ★ ★

उपलब्धि के अंतिम चरण

दसवां प्रवचन

दिनांक २० मार्च, १९७५; प्रातःकाल, श्री रजनीश आश्रम, पूना

पारब्रह्म के तेज का, कैसा है उनमान ।
कहिवे को सोभा नहीं, देखा ही परमान ।।

एक कहौं तो है नहीं, दोय कहौं तो गारि ।
है जैसा तैसा रहे, कहै कबीर विचारि ।।

ज्यों तिल माहीं तेल है, चकमक माहीं आग ।
तेरा साईं तुज्झ में, जागि सकै तो जाग ।।

कस्तूरी कुंडल बसे, मृग ढूंढ़ै वन माहिं ।
ऐसे घट घट राम हैं, दुनिया देखै नाहिं ।।

अछै पुरुष इक पेड़ है, निरंजन वाकी डार ।
तिरदेवा साखा भए, पात भया संसार ।।

गगन गरजि बरसै अमी, बादल गहिर गंभीर ।
चहु दिसि दमकै दामिनी, भीजै दास कबीर ।।

परमात्मा की खोज में, अन्तत वह सौभाग्य की घडी भी आ जाती है जब परमात्मा तो मिल जाता है, लेकिन खोजनेवाला खो जाता है। जो निकला था खोजने, उसकी तो रूपरेखा भी नहीं बचती, और जिसे खोजने निकला था, जिसकी रूपरेखा भी पता नही थी, बस वही केवल शेष रह जाता है। साधक जब खो जाता है तभी सिद्धत्व उपलब्ध हो जाता है।

यह खोज बडी अनूठी है ! यहा खोना ही पाने का मार्ग है। खोज मे अगर तुमने अपने को बचाया, तो तुम भटकते ही रहोगे, पा न सकोगे। इस खोज का आधारभूत नियम ही यही है कि तुम ही हो बाधा, कोई और बाधा नहीं है, और जब तक तुम न हट जाओ—तुम्हारे और परमात्मा के बीच से—तब तक दीवार बनी ही रहेगी। तुम हटे कि परमात्मा तो सदा से था, तुम्हारी दीवाल के कारण दिखाई न पडता था। और तुम्हारी दीवाल बडी मजबूत है। और शायद तुम परमात्मा को इसलिए खोज रहे हो कि दीवाल को और मजबूत कर लो, तुम अपने को और भर लो। ससार की सब चीजे तुमने अपने मे भर ली, यह परमात्मा की कमी खटकती है। अहकार को चुनौती लगती है कि अगर किसी ने परमात्मा को कभी पाया है तो मैं भी पाकर रहूगा। जिसने परमात्मा को चुनौती की तरह समझा और जीवन की अन्य महत्त्वाकाक्षाओ में एक महत्त्वाकाक्षा बनाया, वह खाली हाथ ही रहेगा, उसके हाथ कभी परमात्मा से भरेंगे न, और उसका हृदय सूना ही रह जायेगा, वहा कभी परमात्मा का बीज रोपित न हो पाएगा, और उसके जीवन मे वह वर्षा कभी भी न होगी जिसकी कबीर चर्चा कर रहे हैं।

पहली और आखिरी बात खयाल रखने जैसी है कि तुम अपने को मिटाने में लगना—वही परमात्मा की खोज है। परमात्मा को खोजने की फिक्र ही छोड दो। वह तो मिला ही हुआ है, तुम सिर्फ अपने को मिटा लो। इधर तुमने अपने को साफ किया, इधर तुम खाली घर बने कि उधर परमात्मा का पदार्पण हुआ। इस द्वार से तुम निकले कि दूसरे द्वार से परमात्मा भीतर चला आता है। तुम्हारा

खाली हो जाना ही तुम्हारी पात्रता है। तुम्हारा भरा होना ही तुम्हारी अपात्रता है।

इसलिए तो जिन्होने भी जाना, वे उसके संबध मे कुछ कह नही पाते, क्योकि जाननेवाला तो खो जाता है, कहे कौन ? परमात्मा के सामने जब तुम मौजूद होओगे, तुम तो रहोगे नही--कौन करेगा दावा कि मैंने जान लिया ? कौन लौटकर खबर देगा ? कौन लायेगा प्रतिबिम्ब परमात्मा के ? तुम मिट ही जाओगे, लानेवाला नही बचेगा। इसलिए तो जो गये, वे खुद तो पा लेते हैं, दूसरो को नही जना पाते कि क्या उन्होने पाया। बडी कोशिश करते हैं, लेकिन सब शब्द हार जाते है, सब इशारे छोटे मालूम पडते हैं। और जो भी वे कहते हैं, कहते ही उनको लगता है, भूल हो गयी। जो भी कहा जाता है, वह गलत हो जाता है।

लाओत्से ने कहा है, कहो सत्य को, और सत्य असत्य हो जाता है।

शब्द बहुत छोटे हैं, बहुत सकीर्ण हैं, और जिसे भरना है, वह बहुत विराट है। शब्दो में उसे भरा नही जा सकता। इसलिए जो भी कहा गया है, वह ऐसा ही है कि जैसे किसी ने रात मे उडती जुगनू देखी हो, और फिर अचानक किसी सूरज के सामने खडे होने का मौका आ जाये, तो किस भाति तौलेगा सूरज को ? कितने जुगनुओ का प्रकाश सूरज बनेगा ? या जैसे कोई आदमी चाहे कि चम्मच को लेकर सागर को नापने बैठ जाये--कब तक नाप पायेगा कि कितने चम्मच जल है सागर मे ? पर मैं तुमसे कहता हू कि यह हो सकता है, अगर समय पूरा मिले तो कभी-न-कभी चम्मच से सागर नाप लिया जाये, क्योकि चम्मच छोटी हो भला, सागर बडा हो भला, लेकिन दोनो की सीमा है, दोनो एक ही तल की घटनायें है। तो अगर समय मिले अरबो-खरबो वर्ष का, तो कोई आदमी चम्मच से भी सागर को नाप ले सकता है। सिद्धान्तत यह सम्भव है। लेकिन परमात्मा को तो सिद्धान्तत भी नापने की सभावना नही है, क्योकि नापने का उपकरण सीमित और जिसे नापना है वह असीम। सीमित से कैसे तुम असीम को नापोगे ? और जो भी तुम नापकर ले आओगे खबर, वह झूठी होगी, क्योकि असीम फिर भी बाकी है। जो नापने और नापने और नापने के बाद भी सदा बाकी है, उसी को तो हम असीम कहते हैं।

इसलिए परमात्मा को लोगो ने जाना तो है, कहा किसी ने भी नहीं। नहीं कि कहने की कोशिश नही की है, सभी ने कोशिश की है। क्योकि करुणा कहती है, कहो, जो जाना है वह उनको भी बता दो, जो मार्ग पर भटकते हैं, जो अधेरे मे टटोलते हैं। करुणा कहती है, कहो। लेकिन परमात्मा के अनुभव का स्वभाव ऐसा है कि कहा नही जा सकता।

मैं भी तुमसे रोज कहे जाता हू, और भलीभांति जानता हूं कि जो कहना चाहता हू, वह कह नहीं पाऊगा । और तुम अगर मुझे सुन-सुनकर इतना ही समझ गए तो बस काफी है, कि जो कहना चाहता था मैं, कह नही पाया । अगर मुझे सुन-सुनकर तुमने समझ लिया, कि तुम समझ गये, वह, जो मैं कहना चाहता था कह दिया मैंने, तो तुम भटक गये । फिर तुम मुझे न समझ पाये । अगर सुन-सुनकर तुमने समझ लिया कि ठीक, सवाद हो गया, जो मैं कहना चाहता था तुमसे कह दिया, और तुमने पा लिया, तो तुम चूक गये, तुम सरोवर के किनारे आकर प्यासे लौट गये । जो मैं कहना चाहता हू, वह तो कहा ही नही जा सकता । जो तुम सुन रहे हो, वह वह नही है जो मैं कहना चाहता हू । जो मैं कह रहा हू, वह भी वह नहीं है जो मैं कहना चाहता हू । बडी दूर की फीकी प्रतिध्वनिया हैं । जो कहना है, वह तो तुम तभी समझ पाओगे, जब तुम भी जान लोगे ।

जानना एकमात्र उपाय है परमात्मा के साथ, कोई दूसरा और रास्ता नहीं है जिससे हम उसे बिना जाने जान ले । जानकर ही जाना जा सकता है । कबीर के इन पदो मे जिन कठिनाइयो की तरफ इशारा है, उन कठिनाइयो को हम समझ ले ।

पहली कठिनाई बुनियादी कठिनाई है कि खोजनेवाला खो जाता है, इसलिए कौन खबर लाये ?

मैं तुमसे बोल रहा हू, लेकिन मैं वही नहीं हू जो खोजने निकला था । वह तो खो गया । और अब जो मैं हू, उसका उस खोजनेवाले से कोई भी नाता-रिश्ता नही है, जैसे वह खोजनेवाला एक स्वप्न था और विलीन हो गया । उसमे और मुझमे कोई तारतम्य नही है । वह कोई और था, मैं कोई और हू । वह बिलकुल अजनबी है । उससे मेरी कोई पहचान ही न रही । वह तो एक छाया थी जो केवल अंधेरे मे ही रह सकती थी । रोशनी मे वह छाया खो गई । और अब जो मैं हू, वह बिलकुल ही भिन्न है । जो खोजने निकला था, वह तो अब नही है, और जिसने खोज लिया है वह बिलकुल ही भिन्न है, उसका खोजी से कुछ लेना-देना नही है । यह पहली अडचन है ।

दूसरी अडचन, कि जब खोज पूरी हो जाती है, तो जाननेवाले मे और जो जाना गया है, फासला नही रह जाता । सब ज्ञान मे फासला चाहिए । तुम्हे मैं देख रहा हू क्योकि तुम दूर बैठे हो, तुम्हारे और मेरे बीच मे फासला है । अगर तुम करीब आते जाओ, करीब आते जाओ, करीब आते जाओ, तुम इतने करीब आ जाओ कि मेरी आख और तुम्हारे बीच फासला न रहे, तो फिर मैं तुम्हें देख न पा पाऊगा, जान न पाऊगा । तुम इतने करीब आ जाओ कि बिलकुल मेरे हृदय मे बिराजमान

हो जाओ, तब तो पहचान बिलकुल मुश्किल हो जाएगी। और तुम इतने करीब आ जाओ कि तुम मेरा हृदय हो जाओ, तब तो कौन पहचानेगा, किसको पहचानेगा?

परमात्मा की खोज में हम निकट आते हैं, निकटता बढ़ती है, सामीप्य बढ़ता है। जैसे-जैसे समीपता आती है, वैसे-वैसे जानना मुश्किल हो जाता है, जगह नहीं बचती बीच में। और एक ऐसी घड़ी आती है छलांग की, जब या तो तुम छलांग लगाकर परमात्मा में डूब जाते हो, या परमात्मा छलांग लगाकर तुममें डूब जाता है। दोनों घटनायें घटती है। ज्ञान के मार्ग से जो चलता है, वह छलांग लगाकर परमात्मा में लीन हो जाता है। भक्ति के मार्ग से जो चलता है, उसमें परमात्मा छलांग लगाकर लीन हो जाता है। या तो बूंद सागर में गिर जाती है, या सागर बूंद में गिर जाता है और तब कुछ पता नहीं चलता कि कौन बूंद थी, कौन सागर है, कौन तुम हो, कौन परमात्मा है। जरा भी रत्तीभर फासला नहीं रह जाता। भेद करने की व्यवस्था नहीं रह जाती। परिभाषा नहीं हो सकती। इसलिए तो ज्ञानी उद्घोष कर बैठते हैं 'अहं ब्रह्मास्मि', 'अनलहक'; मैं वही हूं, तत्त्वमसि! इस घोषणा के बाद अब किसकी चर्चा करोगे? अब तो परमात्मा की चर्चा भी अपनी ही चर्चा है। अब तो अपनी ही चर्चा परमात्मा की भी चर्चा है। अब तो चर्चा करनेवाला और चर्चित दो न रहे, जाननेवाला और जाना गया दो न रहे। और हमारा सारा जानना दो पर निर्भर है, द्वैत पर निर्भर है। अद्वैत का जानना बड़ी ही अनूठी घटना है। वह आयाम और! और जब दोनो एक हो गये, तो कौन खबर दे, कैसे खबर दे, किसकी खबर दे?

ज्ञानी और ज्ञेय जहां एक हो जाते हैं, वहीं तो परम ज्ञान का जन्म होता है। दोनो किनारे खो जाते हैं, सरिता रह जाती है—अधर में लटकी—न इस तरफ किनारा, न उस तरफ किनारा, बस ज्ञान रह जाता है। और हमने ऐसा कोई ज्ञान नहीं जाना है। हमारा तो सारा ज्ञान ऐसा ही है, जैसे नदी के दोनो तरफ किनारे हैं, दोनो किनारों में बंधी हुई नदी बहती है। कभी-कभी वर्षा में जब बड़ा पूर आता है, बाढ़ आती है, किनारे टूट जाते हैं, नदी उन्मत्त होकर बहने लगती है, लेकिन तब भी पुराने किनारे टूट जाते हैं, नदी नये किनारे बना लेती है, किनारे से मुक्त नहीं होती।

परमात्मा ऐसी बाढ़ है जहां पुराने किनारे तो टूट ही जाते है, नये किनारे नहीं बनते।

परमात्मा का कोई तट नहीं है, क्योंकि तट यानी सीमा, तट यानी अंत। तट पर ही तो नदी समाप्त हो जाती है। परमात्मा की कोई सीमा नहीं है, कोई तट

नही है। वह कही समाप्त नही होता। और जब तुममें गिर जाती है उसकी धारा, या तुम उसमें गिर जाते हो—जो कि एक ही बात के दो नाम हैं, एक ही घटना के दो नाम हैं—तब कहना मुश्किल हो जाता है।

तीसरी बात जिन शब्दो से हम कहते हैं, वे बने हैं साधारण कामकाज के लिए। उनमें उतना अर्थ है, जैसे छोटे बच्चो के पास बदूक होती है खिलौनो की आवाज भी करती है, धुआ भी निकालती है, पर किसी को मारती नही। वह खिलौना है। उस बदूक से तुम युद्ध के मैदान पर मत चले जाना। वहा वह काम न आयेगी, वहा बुरी तरह मारे जाओगे।

हमारे जो शब्द हैं, वे ससार के लिए बने हैं। परमात्मा के जगत मे उन शब्दो की सार्थकता ही कोई नही है। परमात्मा के जगत में वे सभी शब्द असगत हो जाते हैं, उनकी सगति खो जाती है, जो भी कहो, गलत मालूम होता है, जैसे भी कहो, गलत मालूम होता है, व्याकरण बिलकुल शुद्ध रहे तो भी सब गलत होता है, भाषा बिलकुल शुद्ध हो तो भी सब गलत होता है, कितने ही सुदर ढग से कहो तो भी फीका और बासा होता है। क्योकि, शब्द मन-निर्मित हैं और परमात्मा मन के पार है। शब्द स्वप्न-निर्मित हैं और परमात्मा सत्य है। शब्द माया और ससार के बीच खेल-खिलौने हैं, यथार्थ नही हैं। बच्चा भी जब जवान हो जायेगा, खिलौनो को फेंक देगा एक कोने मे, उनकी याद भी उसे न आयेगी कि क्या हुआ। कभी उन्ही खिलौनो के लिए लडा भी था, कभी उन्ही खिलौनो के लिए रो-रोकर जार-जार हो गया था, कभी उन्ही खिलौनो के लिए आखें सूज आई थी, कभी पाकर ऐसा नाचा था खुशी से, खोकर रोया था। अब तो याद भी नही आती। वे कोने मे पडे-पडे अपने-आप धूल-धवास से भरकर किसी दिन नौकरानी झाडकर उन्हे कचरे-घर मे फेंक आयेगी। बच्चा जवान हो गया, प्रौढ़ हो गया।

जैसे-जैसे तुम्हारे भीतर परमात्मा की तरफ निकटता बढेगी, एक प्रौढता बढेगी। जिन शब्दों को तुमने बडा मूल्य दिया था, जिनके लिए तुम कभी लड-लड पडे थे—किसी ने हिन्दू-धर्म को कुछ कह दिया, या किसी ने तुम्हारे परमात्मा के खिलाफ कुछ बोल दिया, या किसी ने तुम्हारे गुरु की निन्दा कर दी—सब शब्द हैं, हवा मे बने बबूले हैं, तुमने तलवार खीच ली थी, तुम धर्म की रक्षा के लिए तत्पर हो गये थे, तुम मारने-मरने को उतारू थे, विवाद के लिए तैयार थे, सिद्ध करने के लिए तुमने पूरा आयोजन कर लिया था, शास्त्रार्थ तुम्हारे ओठो पर रहा सदा। यह सब शब्दो का ही जाल है। शब्द में कौन सही, कौन गलत! शब्द में तो सभी गलत, सभी शास्त्र गलत। यह खिलौना, वह खिलौना—कुछ चुनाव करने का है?

कौन-सा खिलौना यथार्थ ? सभी खिलौने खिलौने हैं। कोई खिलौना यथार्थ नहीं है। और पडित हैं कि लगे हैं शब्दो को घिसने मे।

शब्दो का बडा ऊहापोह है, बडा जाल है। शब्द से ही तुम जीते हो, क्योकि यथार्थ से तुम्हारे सभी सबध छूट गये है। और यथार्थ परम मौन है। यथार्थ के पास कोई भाषा नहीं है, या मौन ही एकमात्र भाषा है। जब कोई परमात्मा के पास आता है, मौन होने लगता है, जैसे-जैसे पास आता है, वैसे-वैसे गहन मौन उतरने लगता है, रोआ-रोआं शात हो जाता है; वाणी खो जाती हैं, मन थिर हो जाता है, भीतर की लौ अकप जलने लगती है, कोई कपन नही आता। भीतर के आकाश मे शब्द की बदली भी नही तैरती। तब तुम जानते हो।

नि:शब्द मे जाना जाता है। जिसे नि शब्द मे जाना है, उसे शब्द मे कैसे कहोगे? नि शब्द तो निराकार है। शब्द तो आकार है। नि शब्द मे तो तुमने वह जाना जो है। शब्द मे लाकर ही तो वह कहोगे, और शब्द के आते ही ससार आ गया।

चौथी कठिनाई मन रेखाबद्ध चलता है। मन लकीर का फकीर है। और मन हमेशा विरोध से बचता है। जहा-जहा विरोध पाता है, वहा वहा मन दो खड कर लेता है। जन्म को अलग कर लेता है, मृत्यु को अलग कर लेता है। क्योकि मन की समझ के बाहर है यह बात कि जन्म और मृत्यु दोनो एक हो सकते हैं। जन्म कहा जन्म, जीवन का दाता, मृत्यु, जीवन की विनाशक! तो मन कहता है, जन्म और मृत्यु एक-दूसरे के विपरीत हैं, एक-दूसरे के शत्रु हैं। जन्म को तो चाहता है मन, मृत्यु से बचना चाहता है। जन्म मे तो उत्सव मनाता है, मृत्यु मे रोता-पीटता है, दुखी दीन, जर्जर हो जाता है।

लेकिन जीवन में तो जन्म और मृत्यु जुडे हैं एक छोर जन्म है, दूसरा छोर मृत्यु है। वहां तो दिन और रात एक ही चीज के दो पहलू हैं। वहा तो सुबह और साझ एक ही सूरज की दो घटनायें है। वहा तो सुख और दुख अलग-अलग नही हैं।

जैसे ही कोई व्यक्ति परमात्मा के करीब आता है, वैसे ही सबसे बडी अडचन आती है, वह यह कि परमात्मा विरोधाभासी है, पेरॉडॉक्सीकल है। उसमे सब इकट्ठा है। होना भी चाहिए, क्योकि उससे विरोध मे क्या होगा? और उससे विरोध में कोई रहकर रहेगा कहा? और उसके विरोध मे होने का उपाय ही कहा है, जगह कहा है, ऊर्जा कहा है? परमात्मा मे तो जन्म और मृत्यु आलिंगन कर रहे है। मन जब यह देखता है, तो बिलकुल टूट जाता है। उसका सारा पुराना अनुभव, अब तक की बनाई हुई धारणाये सब क्षणभर मे बिखर जाती हैं। वहा तो रात और दिन एक ही घटना की दो पोशाकें है। वहां तो सुख और दुख एक ही

सिक्के के दो पहलू हैं। और अन्तिम अर्थों मे, जो कि बहुत कठिन है वहां तो संसार और मोक्ष एक ही घटना के दो नाम हैं। तब बडी अडचन हो जाती है।

मन ने बडी व्यवस्था से बाधा है, सब चीजो की सीमा बनाई है, कोटिया बनाई हैं यह ससार है निकृष्ट, त्याज्य, मोक्ष है उत्कृष्ट, पाने योग्य; ससार है छोडने योग्य, मोक्ष है पाने योग्य, ससार है ठुकराने योग्य, मोक्ष है अभीप्सा योग्य—ऐसी मन ने सब धारणाये बनाई हैं।

परमात्मा के जैसे-जैसे निकट तुम आओगे, तुम पाओगे, यहां परमात्मा मे ससार और मोक्ष एक ही घटना है। यहा बनानेवाला और बनाई गई चीजें दो नही हैं, यहा स्रष्टा और सृष्टि एक है। वहा तुम ऐसा न पाओगे कि यह वृक्ष अलग है परमात्मा से, तुम इस वृक्ष मे परमात्मा को ही हरा होते हुए पाओगे। तुम ऐसा न पाओगे कि यह चट्टान परमात्मा से भिन्न है, तुम इस चट्टान में परमात्मा को ही सोता हुआ पाओगे। तुम शत्रु मे भी देखोगे, वही है, मित्र में भी देखोगे, वही है। जन्म मे वही आता है, मृत्यु मे वही विदा होता है।

परमात्मा एक है, वहां सब विरोध लीन हो जाते हैं। जैसे सब नदिया सागर में गिर जाती है, ऐसा सब कुछ परमात्मा मे गिर जाता है। और तुम्हारे मन ने बडे इन्तजाम से जो कबूतरखाने बनाये थे, जिनमे जगह-जगह तुमने खंड कर दिये थे, चीजो को बाट दिया था, लेबिल लगा दिये थे—उसी लेबिल लगाने को तो तुम ज्ञान कहते हो—हर चीज का नाम चिपका दिया था, हर चीज के गुण लिख दिये थे यह जहर और यह अमृत—और अचानक परमात्मा मे जाकर तुम पाते हो, जहर अमृत है, अमृत जहर है, सब एक है, कुछ चुनाव योग्य नही है—सभी उससे है। बुरा और भला दोनो उसी से आते हैं। सत और शैतान दोनो उसी से पैदा होते हैं। राम और रावण दोनो उसी की लीला के अग हैं—राम ही नही, रावण भी, अन्यथा रावण कहा से आयेगा?

जैसे ही तुम परमात्मा के पास जाते हो, तुम्हारी कोटिया टूटती हैं, मन का सब ज्ञान उखड जाता है। परमात्मा भयकर आधी की तरह आता है, झकझोर डालता है तुम्हारे सब ज्ञान को, धूल-धूसरित कर देता है। परमात्मा महा अग्नि की तरह आता है, जला डालता है सब कचरे को, सब शब्दो को, सब सिद्धातो को, सब शास्त्रो को। परमात्मा ऐसा आता है कि तुम्हे बस नग्न और शून्य छोड जाता है। उस घडी मे तुम जो जानोगे, कैसे वापस कबूतरखानो मे रखोगे उसे? जिसने एक बार जान लिया, परमात्मा की एक झलक जिसको आ गई, फिर मन की सारी की सारी व्यवस्था व्यर्थ हो जाती है। उसी मन से बोलना है। उसी मन से कहना है।

इसलिए कबीर कहते हैं 'पारब्रह्म के तेज का, कैसा है उनमान।' कैसे कहें, क्या है उस परम ब्रह्म का तेज? कौन-सी उपमा दें? किन शब्दों का सहारा लें?

'कहिबे को सोभा नहीं, देखा ही परमान ॥' कबीर कहते हैं, कहने में शोभा नहीं है, बात बिगड़ जायेगी, जो भी कहेंगे वही अशोभन होगा।

'कहिबे को सोभा नहीं, देखा ही परमान।' बस एक ही प्रमाण है उसका, और वह है देख लेना। जिसने देख लिया, देख लिया, जिसने नहीं देखा, नहीं देखा। नहीं देखा है जिसने, उसके लिए देखनेवाला कोई भी प्रमाण नहीं दे सकता, समझा नहीं सकता।

इसलिए आस्तिक हमेशा नास्तिक से विवाद में हार जायेगा। लाख उपाय करो, आस्तिक जीत नहीं सकता। आस्तिक हारेगा विवाद में। विवाद में नास्तिक ही जीतेगा। उसका कारण है। क्योंकि नास्तिक उस जगत की बात कर रहा है जहां विवाद की सार्थकता है, जहा तर्क सगत है। आस्तिक अतर्क्य की बात कर रहा है, जहा तर्क असगत है। तो आस्तिक तो हारेगा ही। इसका यह मतलब नहीं है कि कोई आस्तिक नास्तिक से हारकर नास्तिक हो जायेगा। झूठा आस्तिक हारकर नास्तिक हो जायेगा, सच्चा आस्तिक हारकर भी और गहरा आस्तिक हो जायेगा, क्योंकि सच्चा आस्तिक हार और जीत जानता ही नहीं। वह हसेगा। वह नास्तिक के तर्क से नाराज न हो जायेगा, वह नास्तिक के तर्क से हसेगा। नास्तिक के प्रति उसे क्रोध न उठेगा, क्योंकि वह तो आस्तिक का लक्षण ही नहीं है, नास्तिक के प्रति महा करुणा उठेगी। वह नास्तिक को तर्क से काटकर सिद्ध करने की कोशिश भी न करेगा। अगर कुछ भी हो सकता है तो एक ही घटना कायम हो सकती है वह नास्तिक को प्रेम करेगा। क्योंकि जो शब्द से नहीं कहा जा सकता, अब उसको कहने का एक ही उपाय है वह है प्रेम। और जो तर्क से नहीं कहा जा सकता, अब उसको समझाने की एक ही विधि है वह करुणा है। और जिसको अब बताने का, विवाद से प्रमाण देने का कोई उपाय नहीं, उसका एक ही उपाय है कि वह खुद ही प्रमाण हो।

आस्तिक के पास प्रमाण नहीं होते, आस्तिक स्वय प्रमाण है। इसलिए अगर आस्तिक को समझना हो तो तर्क से तुम उसके पास पहुच ही न पाओगे। उसके पास तो पहुचने का रास्ता है, और वह रास्ता है सत्सग। वह रास्ता है उसके पास होना, ताकि उसका प्रेम तुम्हें छू सके, ताकि उससे उठती सुवास किसी दिन किसी अन-अपेक्षित क्षण में तुम्हारे नासापुटों में भर जाये। क्योंकि अन्यथा, कहता हू, अन-अपेक्षित क्षण, क्योंकि अन्यथा तो तुम बहुत सुरक्षित हो। तुमने सब सवे-

दनशीलता बंद कर रखी है। और आस्तिकता को जानने के लिए तो बड़ी नाजुक संवेदनशीलता चाहिए। वह फूल किसी और लोक का है। वह फूल अदृश्य है। उसकी सुवास अति सूक्ष्म है, महा सूक्ष्म है। अगर तुम संवेदनशील होओगे तो ही थोड़ी-सी झलक तुम्हे मिलेगी। रोशनी ऐसी नही है कि तुम्हारी आंखों को चकाचौंध से भर दे, उसकी रोशनी बडी शीतल है। अगर तुम आख बद करके बैठ सकोगे आस्तिक के पास, तो ही तुम उसकी रोशनी देख सकोगे, क्योकि रोशनी आखो से देखी जानेवाली रोशनी नही, उसकी रोशनी तो आख बद करके ध्यानस्थ दशा मे ही जानी जा सकती है।

'पारब्रह्म के तेज का, कैसा है उनमान। कहिवे की सोभा नहीं, देखा ही परमान ॥' कबीर कहते हैं, शोभा ही नही कहने की, कहना अशोभन है। जो कहा नही जा सकता, उसे कहकर जो प्रतिबिम्ब सुननेवालो के मन मे बनेगा, वह बड़ा अन्याय है, वह परमात्मा के साथ बडा अन्याय है। क्योकि सुननेवाले कोई प्रतिमा बना लेंगे मन मे, जिससे कि उस परमात्मा का कोई भी संबध नही, दूर का भी नाता-रिश्ता नही। वे कुछ और ही समझकर लौट जायेंगे। उनकी समझ एक तरह की ना-समझी होगी।

इसलिए ज्ञानी की सारी चेष्टा यह है कि कैसे तुम्हारी आखें खुल जाये, नही कि कैसे तुम तर्क के द्वारा तृप्त कर दिये जाओ। तर्क से तुम तृप्त भी हो जाओ तो वह तृप्ति वैसे ही होगी कि जैसे तुम प्यासे थे और पानी के संबध मे किसी ने बहुत तर्क से सिद्ध कर दिया कि पानी है, और उसने सारा पानी का विज्ञान समझा दिया कि पानी कैसे बनता है, उसने पानी का फारमूला, महामंत्र दे दिया एच टू ओ, उसने बता दिया कि उद्जन के दो कण, अक्षजन का एक कण—तीन कण से मिलकर पानी बनता है। सब बात ठीक है, लेकिन प्यास न बुझेगी। एच टू ओ से कही प्यास बुझी है? राम-राम जपने से भी न बुझेगी। वह भी एच टू ओ है। 'देखा ही परमान।' आंख चाहिए!

तो ज्ञानी के पास न तो तर्क खोजने जाना, न प्रमाण खोजने जाना, आख खोजने जाना।

'एक कहौं तो है नही'—अब कबीर अपनी दुविधा कहते हैं। तुम्हारी दुविधा है कि कैसे परमात्मा को जानें, ज्ञानी की दुविधा है कि कैसे परमात्मा को कहे। जान तो लिया ।

'एक कहौं तो है नही, दोय कहौं तो गारि।' कहते है कबीर, दो कहू तो गाली हो जायेगी, और एक कहू तो है नही।

दुविधा तुम समझ सकते हो, क्योंकि तुम कहोगे, सीधी-सी बात है : अगर दो कहना ठीक नही है तो एक कहने से काम चल जायेगा। यहीं अड़चन है। क्योंकि एक की भी सार्थकता तभी है जब दो होता हो। एक का क्या मतलब होगा अगर दो हो ही न? कम-से-कम दो को परिकल्पित करना पड़ेगा, तभी तो एक मे कोई अर्थ होगा। अगर तुमसे पूछा जाये कि दो, तीन, चार, पांच सारी सख्याए खो गई, सिर्फ एक सख्या बची—इसका क्या अर्थ होगा? क्या कहोगे तुम जब कहोगे एक? तुमसे कोई पूछ बैठेगा, मतलब? तो तुम्हें तत्क्षण दो को भीतर लाना पडेगा, तुम्हें कहना पडेगा, जो दो नही। लेकिन दो तो है ही नहीं। तो एक भी कहने मे कितना सार है? इसलिए तो हिंदुओ ने बडे श्रम के बाद 'अद्वैत' शब्द खोजा। यह दुविधा के भीतर बडी चेष्टा करनी पडी। तो न तो वे कहते हैं, ब्रह्म एक है, न वे कहते हैं, दो है। वे कहते हैं कि इतना ही समझ लो कि दो नही है। अद्वैत का अर्थ हुआ दो नही। तो हम साधारणत कहेगे, 'भले मानस, एक ही क्यो नही कह देते? ऐसा सिर के पीछे से घुमाकर कान क्यो पकडते हो? सीधे क्यो नही पकड लेते हो?' अडचन है एक कहने मे डर है, क्योकि एक मे अर्थ ही तब होता है, जब दो की सख्या सार्थक हो। और उस पारब्रह्म के अनुभव मे दो की कोई सम्भावना नही है। तो जहा दो ही नही है, वहा एक की क्या सार्थकता?

'एक कहौं तो है नही, दोय कहौ तो गारि।' और अगर दो कहू, तब तो गाली हो गई। इसलिए तो कहते हैं, 'कहिवे को सोभा नही।' क्योकि दो से बडा झूठ क्या होगा? उस परमात्मा मे दो है ही नही।

यह सारा अस्तित्व एक ही चेतना का सागर है। रूप अनेक, पर जो रूपायित है, वह एक। रग बहुत, पर जो रगा है, वह एक। नृत्य-गान बहुत, पर जो नाच रहा है, वह एक, जो गा रहा है वह एक। अनेकता परिधि पर है, और सुदर है अपने-आप मे। और जिस दिन तुम एक को पहचान लोगे उस दिन अनेकता मे भी उसकी ही पायल की झनकार सुनाई पडेगी, उस दिन हर फूल-पत्ती उसी की खबर लायेगी, हर पक्षी उसी का गीत गायेगा। उस क्षण जो भी हो रहा है, जहा भी हो रहा है, सभी उसका है। अचानक जैसे एक परदा उठ जाता है प्राणो से, सब पारदर्शी हो जाता है, और हर चीज के भीतर से वही खडा दिखाई देने लगता है।

पर अडचन है शब्दो मे।

'एक कहौं तो है नही, दोय कहौ तो गारि। है जैसा तैसा रहे, कहै कबीर बिचारि॥' और कबीर कहते हैं, बहुत विचारा, बहुत सोचा, बहुत उपाय बनाये, बहुत तरह से कोशिश की—अब इतना ही कहना ठीक है कि 'है जैसा तैसा रहे।'

जैसा है बस वैसा ही है। उसकी किसी से कोई उपमा नहीं हो सकती, कोई तुलना नहीं हो सकती। उसकी तरफ कही से भी कोई संकेत नहीं किया जा सकता, कोई अनुमान काम न करेगा।

हम जीवन में उपमा से ही समझते हैं। कोई आदमी कहता है कि मैंने एक बड़ा सुंदर फूल देखा जगल मे, वैसा फूल यहा नहीं होता–तो तुम पूछते हो, कुछ उपमा, वह किसी फूल जैसा है गुलाब जैसा, चमेली जैसा, चपा जैसा? तुम यह पूछ रहे हो कि कुछ तो इशारा दो ताकि मैं अनुमान कर सकूं कि कैसा है। कमल जैसा? आखिर किसी तो फूल जैसा होगा? कुछ तो तालमेल किसी फूल से होता होगा? अगर एक से न होता हो तो तुम ऐसा कहो कि गध गुलाब जैसी, रग चपा जैसा, रूप कमल जैसा–कुछ तो कहो, तो अदाज तो लगे।

लेकिन परमात्मा के सबध मे कोई उपमा नही, क्योंकि वह अकेला ही है। उस जैसा बस वही है। इसलिए कही से भी तो कोई द्वार नही मिलता कि संकेत किया जा सके।

'है जैसा तैसा रहे, कहै कबीर विचारि।' बस, वह अपने जैसा है। पर यह भी कोई कहना हुआ? यह तो बात वही की वही रही। कह दिया कि बस अपने जैसा –इससे सुननेवाले को क्या समझ पड़ा? जिसको बताते थे, उसका कौन-सा बोध बढ़ा? कुछ बात न बनी।

पश्चिम के एक बहुत बड़े विचारक, आधुनिक विचारक, विट्गसटीन ने एक वचन लिखा है। विट्गसटीन की किताबें इस सदी की महत्त्वपूर्ण से महत्त्वपूर्ण किताबो मे हैं। अगर दस महत्त्वपूर्ण किताबें इस सदी की चुनी जायें, तो विट्गसटीन की किताब उन दस मे एक होगी। विट्गसटीन कहता है कि 'दैट विच कैन नॉट बी सैड शुड नॉट बी सैड'–जो नही कहा जा सकता, कृपा करके उसको कहो ही मत। जो नहीं कहा जा सकता, वह नही कहा जा सकता–यह भी मत कहो। विट्गसटीन यह कह रहा है कि इस तरह की बातें कहने से तुम कह भी नही पाते, दूसरा समझ भी नहीं पाता और बड़ी उलझन खड़ी होती है। तो क्या कबीर, दादू और नानक, और क्राइस्ट, और बुद्ध, और कृष्ण कहना बद कर दें, विट्गसटीन की सलाह मान ले? माना कि इनके कहने से बड़ी उलझन पैदा होती है, लेकिन उस उलझन का कष्ट उठाने योग्य है। क्योंकि अगर वे बिलकुल ही चुप रह जायें, तो जो कहकर नहीं बताया जा सका, कह-कहकर भी जिसे तुम न समझ पाये, वह क्या बुद्धों के चुप रहने से तुम समझ जाओगे? चुप्पी तो तुम्हारे लिए बिलकुल ही अनजानी भाषा है। इससे तो तुम्हे भला भ्रांति होती हो, चुप्पी से तो भ्रांति तक

भी न होगी। चुप बैठे बुद्ध को तो तुम पहचान ही न पाओगे। और अगर बुद्ध चुप रह जाये, तो तुम्हारे इस लोक मे, कौन लायेगा उसकी खबर जिसकी खबर नही दी जा सकती ? तुम्हारे अधेरे मे कौन तुम्हारे हृदय को तीर मारेगा ? तुम्हारे अधेरे मे कौन तुम्हें जगायेगा कि एक यात्रा तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है ? तुम्हारे अधेरे में कौन तुम्हें चौंकायेगा कि यही जीवन नही है ? कौन तुम्हारी पीडा, दुख और सताप मे तुमसे कहेगा कि यही सब कुछ नहीं है, हम ऐसा लोक भी जानते हैं जहा कोई सताप नही है, कोई दुख नही, कोई पीडा नही। कौन तुम्हे खबर देगा मुक्ति की—तुम्हारे कारागृह मे ?

सच है, विट्गसटीन ठीक कहता है कि जो नही कहा जा सकता, वह न ही कहा जाये। लेकिन फिर भी उचित नही है। जो नही कहा जा सकता, न ही कभी कहा गया है, उसे कहना होगा, बार-बार कहना होगा। ना-समझी भी पैदा होती हो उससे, तो भी खतरा मोल लेना होगा, जोखिम उठानी पडेगी। क्योंकि हजार सुने, नौ सौ निन्यानबे कुछ भी न समझ पाये, पर किसी एक के हृदय में कोई तीर चुभ जाता है, अनकहे हुए के भी थोडी-सी झलक आ जाती है, एक नई आकाक्षा का जन्म हो जाता है। शुरू-शुरू मे बडी धुधली, कुछ भी साफ नहीं, जैसे सुबह का धुधलका छाया हो—लेकिन धीरे-धीरे जैसे-जैसे पैर सभलते हैं, वैसे वैसे धुधलका हटने लगता है, जैसे-जैसे आख सभलती है, देखते देखते-देखते जहा कुछ भी नही दिखाई पडा था, वहा उस अनन्त की प्रतिध्वनि सुनाई पडने लगती है।

सत असभव की कोशिश करते हैं, क्योंकि परमात्मा असम्भव है। परमात्मा से ज्यादा सरल कुछ भी नही, उससे ज्यादा असम्भव कुछ भी नही। वह चारो तरफ चौबीस घडी मौजूद है, और फिर भी तुम उसे छू नही पाते। सब तरफ से तुम्हे उसने घेरा हुआ है, फिर भी तुम्हे उसके स्पर्श का कोई पता नही चलता। तो माना कि सतो के वचन विज्ञान की कसौटी पर सही नही उतर सकते, उनके वचन बेबूझ रहेगे, अतर्क्य रहेगे। तर्क की कसौटी पर सतो के वचन कसे नही जा सकते, लेकिन इसमें कसूर सतो के वचन का नही है, तर्क की कसौटी का है।

एक बाउल फकीर हुआ, जिसकी कथा मुझे बडी प्रीतिकर रही है। कोई उससे पूछता है परमात्मा के सबध मे, तो बाउल फकीर इकतारा लिये रहते हैं। किसी ने पूछा है। जिसने पूछा है, वह पडित है, बडा बुद्धिमान है, शास्त्रो का ज्ञाता है। लेकिन बाउल फकीर उसे कुछ जवाब नही देता, अपना इकतारा छेड देता है। वह थोडी देर तो सुनता है, फिर कहता है, 'बद करो। मैं कुछ पूछने आया हू, इकतारा सुनने नहीं। बहुत इकतारे सुन लिये।' तो बाउल फकीर खडा हो जाता है।

नाचना शुरू कर देता है। पंडित के लिए यह बिलकुल बेबूझ है। वह कहता है, 'क्या तुम पागल हो?' बाउल फकीर का मतलब भी पागल फकीर होता है। बाउल फकीर का मतलब होता है बावला। 'क्या तुम बिलकुल पागल हो? मैं पूछता हू परमात्मा की—मैं पूछता हू पश्चिम की, तुम चलते हो पूरब। यह नाचने से क्या होगा?' तो उस फकीर ने एक गीत गाया, और उसने कहा कि तुम्हारी बातो से मुझे याद आती है "एक बार ऐसा हुआ कि एक सुनार फूलो की बगिया मे पहुच गया। भूल से ही पहुचा होगा, क्योकि सुनार धातु के साथ जीता है। मुर्दा सौन्दर्य मे उसका रस है—सोना, चादी, हीरे-जवाहरात! जिन्दा सौन्दर्य मे उसका कोई रस नही, जहाँ फूल खिलते हैं, क्योकि फूल सुबह खिलते हैं, साझ मुरझा जाते हैं, सोना सदा सम्हालकर रखा जा सकता है। हीरा हजारो साल तक सम्हाला जा सकता है। मुर्दा सौन्दर्य में उसका रस था। लेकिन एक बार भूल-चूक से बगिया मे पहुच गया। माली ने उसे अपने फूल दिखाये। जैसा कि मैं नाचा, जैसे कि मैंने इकतारा बजाया—मैंने तुम्हारे प्रश्नो के उत्तर दिये हैं। माली ने उसे फूलो के सबध मे समझाया, लेकिन उसने कहा कि नहीं, मैं कोई ऐसे माननेवाला नही हू। मैं सुनार हू, पारखी हू। उसने अपने खीसे से सोना कसने का पत्थर निकाला और फूलो को कस-कसकर देखने लगा। सोने के कसने के पत्थर पर फूल नहीं कसे जाते। और अगर फूल इसमे गलत साबित हुए, कसौटी मे न कसे गए, तो फूलो का कसूर नही है, कसौटी का कसूर है। उसने फूलो को कसा, पटक दिया, और कहा कि इनमे कोई भी न तो सोना है, न कोई चादी है।"

सत की वाणी अगर बेबूझ लगती है तो कसूर सत का नही है, तुम जिस मन से उसे कस रहे हो, उस मन का है। जीवन रहस्य है। सत क्या करे? उसकी वाणी मे रहस्य प्रगट है। उसकी वाणी वैसी ही है जैसा जीवन का रहस्य है। उसकी वाणी मे समाधान नही है, उसकी वाणी मे समाधि का स्वर है। समाधान का अर्थ है कि तुमने तर्क से समझा-बुझाकर कोई हल खोज लिया। संत ने कोई समाधान नही खोजा है, सत ने समाधि खोज ली। उसने रहस्य के साथ जीने का ढग खोज लिया। अब वह रहस्य को हल नही करना चाहता, वह रहस्य को जीता है। पहेली को हल नहीं करना चाहता, क्योकि वह समझ गया है कि पहेली में ही सौन्दर्य है; उसे हल करने में तो सब मर जायेगा। वह किसी पहेली को हल नहीं करना चाहता—न प्रेम की, न प्रार्थना की, न परमात्मा की। उसने तो एक तरकीब खोज ली कि अब वह नाचता है इस पहेली के साथ, इस रहस्य के साथ वह खुद भी रहस्यपूर्ण हो गया। उसने तारो जैसा सौन्दर्य उपलब्ध कर लिया।

उसने ओस-कणो जैसी, शबनम जैसी ताजगी उपलब्ध कर ली। उसने फूलों जैसी सुवास पा ली। वह पक्षियो जैसा उडने लगा है अनन्त के आकाश में। उसने रहस्य में तैरना और तिरना सीख लिया। अब वह रहस्य को हल नहीं करना चाहता।

रहस्य को हल करने की जरूरत भी नहीं है। रहस्य को हल करनेवाले मनुष्यता के शत्रु हैं, क्योंकि वे हर चीज को हल कर देते हैं। तुम जाओ एक मनसविद् के पास, पूछो कि प्रेम क्या है—वह हल कर देगा। वह बता देगा कि यह क्या है 'यह प्रकृति की चेष्टा है—संतति को पैदा करने की।' वैज्ञानिक के पास जाओ शरीरविद् के पास जाओ, वह कहेगा, "यह कुछ भी नही है, हारमोन्स हैं। शरीर मे स्त्री-पुरुष के हारमोन्स हैं, उन्ही का सब खेल है। तुम झझट में मत पडना।" तुम जाओ केमिस्ट के पास, वह केमिस्ट्री बतायेगा। वह कहेगा, "शरीर में ऐसे-ऐसे रस के पैदा होने के कारण प्रेम की भ्रान्ति पैदा होती है। प्रेम वगैरह कुछ है नही।"

ये सभी लोग हल करने बैठे हैं। ये सब हल कर दिये हैं। उनके हल के कारण जीवन से सब रहस्य खो गया है। अब सोच लो, कि जब तुम अपनी प्रेयसी को गले लगाओ, तब तुम्हे पता है कि 'हारमोन काम कर रहे हैं, और तुम नाहक मेहनत कर रहे हो। हारमोन तुम्हे चला रहे हैं। एक इन्जेक्शन हारमोन का और तुम्हारा सब यह प्रेम वगैरह बदल जायेगा।' विवाह करने जाओ और तुम्हे पता है कि 'कुछ है नही। ये बैण्ड-बाजे सब धोखा है। असल में जीवशास्त्र कहता है, प्रकृति अपने को पैदा करती रहना चाहती है, वह तुम्हे उपकरण की तरह उपयोग कर रही है। तुम तो मर जाओगे, तुम्हारे बच्चो को, तुम्हारे बच्चे मर जायेंगे, उनके बच्चो को पैदा कर रही है। प्रकृति जीवन को बचाये रखना चाहती है, तुमसे उसका कोई प्रयोजन नही है। तुम तो एक वाहन हो जीवन के। बैण्ड-बाजे बेकार बजा रहे हो। जीवन तुम पर चढ़ा है। प्रकृति तुम्हारे सिर पर बैठी है, वह तुम्हे चला रही है।'

अगर तुम प्रार्थना के लिए पूछने जाओ, तो भी वैज्ञानिक के पास उत्तर हैं। अगर तुम ध्यान के लिए पूछने जाओ, तो अब वैज्ञानिको ने यन्त्र खोज लिये हैं ध्यान के भी। खोपडी में इलेक्ट्रॉड लगाकर वे जांचकर बता देते हैं कि ध्यान हो रहा है कि नही हो रहा है। क्योंकि वे कहते हैं कि यह सब तो विद्युत-तरगो का खेल है। अलफा तरग अगर चल रही हो तो ध्यान है।

वैज्ञानिक हर चीज को हल करने मे लगा है। तुम थोडा सोचो, किसी दिन अगर वैज्ञानिक सफल हो गया, उसने सब हल कर दिया, फिर आत्मघात के अतिरिक्त

और क्या बच रहेगा? लेकिन वह आत्मघात भी न करने देगा। वह कहेगा, इसको भी हम हल किये देते हैं, कि इसका कारण क्या है।

धर्म की यात्रा रहस्य को हल करने की यात्रा नहीं है, रहस्य को जीने की यात्रा है। हल करे ना-समझ। जीवन का क्षण मिला है, एक महोत्सव में निमंत्रण मिला है, धर्म उसमें सम्मिलित हो जाना चाहता है। धर्म नाचना चाहता है चाद-तारो के साथ।

कबीर कहते हैं, कुछ कहा नहीं जा सकता उस परमात्मा के संबध मे, जो तुम्हारे प्रश्नो को हल कर दे। 'है जैसा तैसा रहे।' रहस्य है और रहस्य ही रहेगा, और तुम व्यर्थ हल करने मे समय मत गवाओ, तुम डुबकी लगाओ। तुम डूबो इस रहस्य में, नहाओ, नाच लो। अस्तित्व का यह क्षण उत्सव बना लो। इस उत्सव से तुम परमात्मा से और रहस्य से एक हो जाओगे। वही एक हो जाना समाधि है।

समाधान विज्ञान की खोज है, समाधि धर्म की। दोनो शब्द एक ही धातु से, एक ही मूल शब्द से बने हैं, लेकिन बडे दूर निकल गये हैं। विज्ञान कहता है, समाधान क्या है समस्या का, धर्म कहता है, समाधि। तुम समाधान खोजो ही मत। समाधान खोजा ही न जा सकेगा। रहस्य रहस्य ही रहेगा। तुम कितना ही जानते जाओ, और रहस्य के नये परदे उठते जाएगे। और वही हुआ है। रोज रहस्य के नये परदे उठते गये हैं, रहस्य चुका नही है। विज्ञान ने बहुत जान लिया और कुछ भी नही जाना।

अभी वैज्ञानिको की एक बहुत बडी परिषद कैनेडा मे बैठी और उस परिषद ने जो प्रस्ताव पास किये, उनमे एक प्रस्ताव बडा अनूठा है, जिसमे कि वैज्ञानिको ने समझदारी की थोडी-सी झलक दी है। पहला प्रस्ताव यह है कि लोग सोचते हैं कि हम बहुत जानते हैं; लेकिन हम जानते हैं कि हम कुछ भी नही जानते। यह बडी समझदारी की बात है। विज्ञान अगर किसी दिन इतना समझदार हो गया तो विज्ञान समर्पण कर देगा धर्म की यात्रा मे अपना भी।

'है जैसा तैसा रहै, कहै कबीर विचारि।'

'ज्यो तिल माहीं तेल है, चकमक माही आग।' जैसे चकमक मे आग छिपी है, और तुम्हे अगर चकमक रगडना न आता हो तो तुम बैठे रहोगे, चकमक सामने रखी रहेगी, और तुम्हारे घर मे अंधेरा भरा रहेगा। और सामने रखी थी आग, लेकिन रगडने की कला तुम्हे न आती थी।

धर्म है समाधि। योग है रगडने की कला। योग है चकमक को रगडकर आग को पैदा कर लेने की विधि। आग तो छिपी है। परमात्मा ऐसे ही छिपा है।

सब तरफ, जैसे तेल तिल मे छिपा है, जरा निचोड़ने की बात है, जैसे चकमक में आग छिपी है, जरा रगडने की बात है ।

'तेरा साईं तुज्झ में, जागि सकै तो जाग ।' कबीर कहते हैं, कहीं और जाना नहीं है। 'तेरा साईं तुज्झ मे, जागि सकै तो जाग'—बस करना इतना ही है कि तू जाग। साईं को नही खोजना है, जागना है। और भूलकर कहीं साईं को खोजने मत निकल जाना, बिना जागे, नहीं तो नींद मे बहुत भटकोगे, पहुचोगे कही नही, क्योंकि—'तेरा साईं तुज्झ मे'। जाते कहा हो खोजने ? जितनी दूर निकल जाओगे खोजने, उतनी ही उलझन मे पड जाओगे। परमात्मा को खोजना नही है, बस जागना है।

'तेरा साईं तुज्झ मे, जागि सकै तो जाग।'

'कस्तूरी कुडल बसै, मृग ढूढै वन माहि।'

आती है गध कस्तूरी की भीतर से। नाफा पक गया, कस्तूरी तैयार है। भागता है पागल होकर मृग। खोजता है, 'कहा से आती है यह गध ?' उसकी नाभि मे है कस्तूरी। पर मृग को कैसे पता चले ? मनुष्यो को भी पता नही चलता कि गध नाभि मे है।

तुम्हारे जीवन का स्रोत तुम्हारी नाभि है। तुम्हारे आनन्द का स्रोत भी तुम्हारी नाभि है। तुम्हारे अस्तित्व का केन्द्र तुम्हारी नाभि है। अगर तुम अपनी नाभि मे उतर जाओ, तो तुमने परमात्मा का द्वार पा लिया।

पश्चिम मे लोग मजाक करते हैं। पूरब के योगियो को कहते हैं, 'वे लोग, जो अपनी नाभि मे टकटकी लगाकर देखते रहते हैं।' वहा क्या रखा है ? वहीं सब कुछ रखा है।

तुम्हें शायद पता नही कि मा के गर्भ मे तुम नाभि से ही मा से जुडे थे। नाभि तुम्हारे जीवन का केन्द्र है। वही से मा की जीवन-ऊर्जा तुम्हारे जीवन मे प्रवाहित हो रही थी। फिर तुम तैयार हो गये, मा की जीवन-ऊर्जा की जरूरत न रही, तो नाल काट दी गई—तुम मा के गर्भ से बाहर आ गये। लेकिन तुम्हारी नाभि से एक अदृश्य नाल अभी भी परमात्मा से जुडी है। एक रजत-रेखा तुम्हे जोडे हुए है अस्तित्व से। तुम नाभि से ही जुडे हो। नाभि मे ही तुम्हारी जडे हैं। न केवल शरीर के अर्थों मे तुम नाभि से जुडे हो, आत्मा के अर्थों मे भी तुम नाभि से ही जुडे हो। जिन लोगो को कभी शरीर के बाहर जाने का अनुभव हुआ है—कई बार हो जाता है, कभी तो दुर्घटना मे हो जाता है कि कोई आदमी ट्रेन से गिर पडा और उस झटके मे उसकी आत्मा शरीर के बाहर निकल गई—तो जिन

लोगों को भी ऐसा अनुभव हुआ है दुर्घटना मे, या योग की साधना मे, या जान-बूझकर जो प्रयोग कर रहे थे शरीर के बाहर जाने का, उन सभी को एक बात दिखाई पडी है, और वह यह कि उनकी आत्मा कितनी ही दूर चली जाये, एक रजत-रेखा नाभि से जुडी ही रहती है। अगर वह टूट जाये तो फिर वापस शरीर मे लौटने का उपाय नही रह जाता। वह कितनी ही ऊचाई पर उड जाये, लेकिन वह रजत-रेखा बडी लोचपूर्ण है, वह खिचती जाती है। वह कोई पदार्थ नही है, वह सिर्फ शुद्ध विद्युत-ऊर्जा है, इसलिए शुभ्र चादी की भाति दिखाई पडती है।

तुम्हारी नाभि मे तुम्हारे जीवन का सारा राज छिपा है। इसलिए कबीर ने 'कस्तूरी कुडल बसै' यह प्रतीक चुना है। और घटना वही घट रही है जो मृग के साथ घटती है। मृग बिलकुल पागल हो जाता है, टकरा लेता है सिर को जगह-जगह, लहूलुहान हो जाता है। और इतनी मादक गध आती है, रुक भी नही सकता, खोजना चाहता है, कहा से गध आती है। जितना भागता है उतना ही व्याकुल होता है। और जितना भागता है उतनी ही जगह उसकी गध व्याप्त हो जाती है। उतना ही और भी दिग्भ्रम पैदा होने लगता है कि कहा से आ रही है, कि पूरब से कि पश्चिम से, कि दक्षिण से। क्या करे यह मृग? इस मृग को कैसे समझायें कि तू बैठ जा, आख बद कर ले, भीतर उतर—तेरे भीतर ही गध का राज छिपा है!

तुम भी आनद की तलाश मे कहा-कहा नही घूम लिये हो। कितने चाद-तारो पर तुम नही घूम लिये हो। कितनी पृथ्विया नही तुमने नाप डाली हैं। कितने जन्मो की लम्बी यात्रा है। हिन्दू कहते हैं, चौरासी करोड योनियो मे तुम एक ही चीज को खोज रहे हो कि गध कहा से आ रही है? आनद कहा से मिलेगा? जीवन का राज कहा छिपा है? परमात्मा कहा है?

और कबीर कहते हैं, 'कस्तूरी कुडल बसै। तेरा साईं तुज्झ मे, जागि सकै तो जाग।'

'ऐसे घट-घट राम हैं'—जैसे कस्तूरी कुडल के भीतर छिपी है—'ऐसे घट-घट राम हैं, दुनिया देखै नाहिं।'

'अछै पुरुष इक पेड है, निरजन वाकी डार। तिरदेवा साखा भए, पात भया ससार॥' कबीर कहते हैं कि वह जो अक्षय पुरुष है, वही इस सारे अस्तित्व का फैलाव है। यह सारा वृक्ष उसी का है। प्रतीक है कि अक्षय पुरुष जैसे एक अक्षय वट है सारा फैलाव एक वृक्ष की भाति है, डार-डार उसी अक्षय पुरुष की निर-जनता फैली है।

निरंजन का अर्थ होता है परम वैराग्य। निरजन का अर्थ होता है, जिसको कोई रग रग नहीं पाता, जो सब रगो में है, और अन-रगा रह जाता है। निरजन का अर्थ होता है · कमलवत्, है पानी मे और पानी छू नहीं पाता। उस अक्षय पुरुष का यह फैलाव है अस्तित्व—वृक्ष की भाति वही निरजन एक-एक डार में छिपा है।

'तिरदेवा साखा भये'—वही अक्षय पुरुष ब्रह्मा, विष्णु, महेश की शाखाओ मे विभाजित हो गया है। वही मारता है, वही जन्माता है, वही चलाता है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश उसके ही तीन रूप हैं, तीन चेहरे, पर भीतर छुपा पुरुष एक है।

'पात भया ससार'—और ये जो पत्ते हैं, यही ससार है। कबीर यह कह रहे हैं कि परमात्मा और ससार मे फासला नही है, ये एक ही चीज के दो ढग हैं। स्रष्टा और सृष्टि दो नही हैं। और पात पात में भी वही फैला है। तुम उसके ही पात हो। तुम्हारे पत्ते कितने ही अलग दिखाई पड रहे हो, तुम इस भ्रान्ति मे मत पडना कि तुम अलग हो। अलग तो तुम हो ही नही सकते। एक क्षण तुम जी नही सकते अलग होकर। अनन्त-अनन्त मार्गों से तुम उससे जुडे हो। प्रतिपल श्वास ले रहे हो श्वास काट दी जाये, एक द्वार टूट गया, एक सेतु मिट गया—कैसे जीओगे? सूरज की किरणे चली आ रही हैं, तुम्हारे रोए-रोए को जीवन के उत्ताप से भर रही हैं, सूरज ठण्डा हो जाये, तुम कैसे जीओगे? ये तो स्थूल बाते है। ऐसे ही सूक्ष्म तल से सब तरफ से परमात्मा तुम्हे सम्हाले हुए है जैसे वृक्ष को अदृश्य जडें सम्हाले होती हैं। और वृक्ष पत्ते-पत्ते की फिक्र कर रहा है। तो घबडाओ मत कि तुम पत्ते हो और ससार मे हो—ससार भी उसी का है। सृष्टि और स्रष्टा दो नहीं हैं, सृष्टि, स्रष्टा का ही फैलाव है।

'अछै पुरुष इक पेड है, निरजन वाकी डार। तिरदेवा साखा भए, पात भया ससार॥'

इसे बहुत गहनता से समझ लो, क्योकि विषाक्त करनेवाले लोगो ने बडी भ्रातिया फैला रखी हैं। वे कहते हैं, ससार पाप है। वे कहते हैं, ससार छोडने योग्य है। वे कहते हैं, भागो ससार से, अगर परमात्मा को पाना है। परमात्मा ससार के कण-कण मे छिपा है, और तथाकथित महात्मा समझाये जाते हैं कि भागो ससार से, अगर परमात्मा को पाना है। और अगर ससार मे वही छिपा है, तो तुम जहां भी भागोगे, तुम परमात्मा से ही भाग रहे हो। इसलिए मैं तुमसे कहता हूं, तुम जहा हो ठीक वहीं उससे मिलन होगा, इचभर भी यहां-वहां जाने की जरूरत नही है। दुकान पर बैठ-बैठे मिलन होगा। दफ्तर काम करते-करते मिलन होगा।

बगीचे में गड्ढा खोदते-खोदते मिलन होगा। घर को, गृहस्थी को सम्हालते-सम्हालते मिलन होगा, क्योंकि वही हर पत्ते मे छिपा है। ऐसी कोई जगह नहीं है जहां वह न हो।

रवीन्द्रनाथ ने एक बडी मधुर कविता लिखी है। लिखा है कि बुद्ध ज्ञानी हुए और वापस लौटे। रवीन्द्रनाथ के मन मे कहीं न कही बुद्ध का घर छोडकर जाना, कभी जचा नही। रवीन्द्रनाथ को कभी जचा नही। किसी कवि को कभी जच नही सकता। थोडा कठोर मालूम पडता है, थोडा काव्य-विरोधी मालूम पड़ता है, थोड़ा सौन्दर्य का विनाशक मालूम पडता है। और कवि के लिए तो सौन्दर्य ही सत्य है। यशोधरा को छोडकर भाग गये बुद्ध की प्रतिमा रवीन्द्रनाथ को कभी भायी नही। तो उन्होने बडी मीठी कविता लिखी है। वह कविता है लौट आये बुद्ध घर, ज्ञान को उपलब्ध होकर, यशोधरा ने पूछा, "एक ही बात मुझे पूछनी है और बारह वर्ष तक इसी बात को पूछने के लिए मैं प्रतीक्षा करती रही हू। अब आप आ गये हैं, ज्ञान को उपलब्ध होकर, अब मैं समझती हू कि समय आ गया है, मैं पूछ लू। पूछना मुझे यह है कि जो तुमने मुझे छोडकर वहा जगल मे पाया, क्या तुम उसे यही नही पा सकते थे ?"

रवीन्द्रनाथ ने बुद्ध को चुप छोड दिया है, उत्तर नही दिलवाया। पर रवीन्द्रनाथ का उत्तर साफ है, और चुप रह जाने मे भी उत्तर साफ है। अब तो बुद्ध भी जानते हैं कि उसे जो पाया है जगल मे, उसे यही पाया जा सकता था।

स्रष्टा छिपा है अपनी सृष्टि मे। यह सृष्टि ऐसी नही है कि जैसे एक मूर्तिकार मूर्ति को बनाता है, क्योंकि मूर्तिकार मूर्ति को बनाकर मूर्ति से अलग हो जाता है, या कवि कविता बनता है, कविता अलग हो जाती है, कवि अलग हो जाता है। कवि तो मर जायेगा, कविता बनी रहेगी। मूर्ति हजारो साल जी लेगी, मूर्तिकार तो चला जायेगा। दोनो अलग हो गये। नही, परमात्मा की यह सृष्टि कुछ और तरह की है। इसलिए हमने परमात्मा के प्रतीक की तरह नटराज को चुना है—नर्तक, मूर्तिकार नही, चित्रकार नही, कवि नही।

परमात्मा नर्तक है, क्योंकि नृत्य और नर्तक को अलग नहीं किया जा सकता। नर्तक चला गया, नृत्य भी गया। तुम नृत्य को नही बचा सकते अलग। तुम नर्तक और नृत्य को अलग कहा करोगे ? उनके बीच मे कोई फासला नही हो सकता। परमात्मा नर्तक की भाति अपनी सृष्टि से जुडा है, मूर्तिकार की भांति नही। यह सृष्टि उसका ही होना है। यह तुम्हे खयाल में आ जाये तो तुम व्यर्थ भागने के विचारी से बच जाओगे और तुम जहां हो वही खोज शुरू कर दोगे। तुम जिस

जगह खड़े हो, वहीं हीरा गड़ा है, कहीं और खोजने मत जाओ।

मैंने एक बड़ी अद्‍भुत कहानी सुनी है। एक यहूदी फकीर था। उसने रात सपना देखा। एक रात देखा, दूसरी रात देखा, तीसरी रात देखा—तब सपना सच मालूम होने लगा। सपना यह था कि जिस देश मे वह रहता था, उस देश की राजधानी मे एक पुल के पास एक बहुमूल्य खजाना गडा है। जब तीन बार, बार-बार देखा और सब चीज बिलकुल साफ हो गई, नक्शा भी साफ हो गया, एक एक चीज स्पष्ट हो गई, तो मजबूरी मे उसे यात्रा करनी पडी राजधानी की। वह राजधानी गया। लेकिन बडी मुश्किल मे पड गया, क्योंकि जहा धन गडा है पुल के किनारे, वहा चौबीस घटे पुलिस तैनात रहती है पुल की रक्षा के लिए। तो वह कैसे उसे खोदे? कब खोदे? वहा से कभी पुलिस हटती नही। जब दूसरे लोग पहरे पर आ जाते हैं, तब पहले लोग जाते हैं। चौबीस घटे सतत वहा पहरा है। तो वह राह खोजने के लिए बार-बार पुल पर गुजरता। एक पुलिसवाला उसे देखता रहा है। आखिर उसने कहा, 'सुन भाई, तू क्यो यहा बार-बार गुजरता है? आत्महत्या करनी है? पुल से कूदना है? क्या इरादा है? फकीर है तो दिखता भी ऐसा है कि उदास है और जिन्दगी से निराश है, शायद मौका देख रहा है कूद जाने का, या कोई और कारण है—बात क्या है? सदेह पैदा होता है। उस फकीर ने कहा, 'जब तुमने पूछ ही लिया तो मैं बता ही दू, क्योकि रास्ता भी नही दिखाई पडता कुछ करने का, तुमसे ही कह दू, शायद तुम्हारे काम पड जाये। मैंने सपना देखा, तीन बार देखा, सतत देखा और इतना साफ हो गया सपना कि मुझे भरोसा आ गया कि होना चाहिए। मैंने सपना देखा है कि तुम जहा खडे हो, यहा जमीन मे बडा खजाना गडा है।' वह सिपाही हसने लगा। उसने कहा, 'हद हो गई। सपना तो हमको भी तीन रात से आ रहा है, लेकिन यहा का नही आ रहा।' एक छोटे-से गांव का उसने नाम लिया। फकीर चौका, वह तो उसका गाव है। 'एक फकीर के घर में, और वह तो उसी फकीर का नाम है। और जहा वह फकीर बैठकर माला जपता रहता है वहा खजाना गडा है। उसने कहा, 'तीन रात से हमको भी आ रहा है। मगर सपना सपना है। ऐसे हम तुम्हारे जैसे झझटो मे नही पडते कि कभी यात्रा करे, उस गाव जाये। पागलपन मे मत पडो।'

फकीर भागा घर की तरफ कि यह तो हद हो गई। जहा बैठा था, खोजा—खजाना वहा था।

कहानी पता नही, सच है या झूठ, पर जीवन मे ऐसा ही है तुम जहां हो, खजाना वही गडा है। सपना, आयेगा—हिमालय चले जाओ, खजाना वहा है। सपना

आयेगा–मक्का-मदीना, काशी, गिरनार · कई तरह के सपने आयेंगे–उनसे बचना। तुम जहां हो, वहीं खजाना है। क्योंकि अगर तुम हिमालय पहुंच गये तो हिमालय मे जो बैठा है, वह तुमको बतायेगा कि हमको तो सपना आ रहा है कि पूना, कि खजाना वहा बट रहा है।

परमात्मा सब जगह है, इसलिए कही जाने की जरूरत नही है। तुम जहा हो, जैसे हो, और परमात्मा की उपलब्धि बेशर्त है, अनकडीशनल है। परमात्मा तुमसे यह भी नही कहता कि तुम ऐसा करो, तब मैं तुम्हे उपलब्ध होऊगा। क्योकि जब उसने ही तुम्हे बनाया है, तब इससे ज्यादा सुदर और क्या अपेक्षा हो सकती है? इसे थोडा सोचो। अगर परमात्मा ने ही तुम्हे गढा है, तो अब तुम इसमें और सुधार न कर पाओगे। मैंने किसी आदमी को सुधरते नही देखा। और मैं हजारो के साथ सलग्न हू और वे सब सुधार के लिए मेरे पास आते हैं; लेकिन मैंने कभी किसी आदमी को सुधरते नही देखा। इससे मैं निराश नही हू, इससे केवल एक सत्य की उद्घोषणा होती है कि परमात्मा ने तुम्हे बनाया है, अब तुम उसमे सुधार करने की कोशिश क्या करोगे? कोई सुधार नही सकता, परमात्मा से और ज्यादा सुधारने का उपाय भी नही है। जितना किया जा सकता था, वह कर ही चुका है। उसकी कोई शर्त नही है कि तुम ऐसे हो जाओ कि ब्रह्मचर्य ग्रहण करो, कि उपवास करो, कि यह करो कि वह करो, तब मैं तुम्हे उपलब्ध होऊगा। वह तुम्हे उपलब्ध ही है–प्रसाद की भाति। प्रसाद मे कोई शर्त थोड़े ही होती है। वह देने को राजी है। अडचन इतनी ही है कि तुम लेने को राजी नही हो। कोई शर्त नही है, सिर्फ तुम लेने को राजी नही हो। तुम इतनी अकड़ से भरे हो कि तुम लेनेवाले बनना ही नही चाहते–बस, इतनी ही कठिनाई है। और वह एक गहरी मजाक है।

और परमात्मा मजाक कर सकता है, यह बात मुझे बडा सुख देती है। क्योकि मैं किसी गुरु-गभीर परमात्मा मे भरोसा नही करता। परमात्मा गुरु-गभीर होता तो ससार हो ही नही सकता। परमात्मा निश्चित ही हलका और प्रसन्न, प्रफुल्ल, उत्सव–ऐसा कुछ है।

कहावत है अरब मे कि जब भी वह किसी को बनाकर ससार मे भेजता है तो उसके कान में कह देता है कि तुझसे बेहतर आदमी मैंने बनाया ही नही है। मगर सभी से वह यही कह देता है। और हर आदमी इसी को खयाल मे रखे भटकता है। यह एक गहरी मजाक है, और परमात्मा करता है, इससे दुनिया मे रस है।

जिस दिन तुम जागोगे, और जिस दिन तुम्हारी यह भ्राति छूट जायेगी, तुम समझ लोगे मजाक को–उसी दिन तुम विनम्र होकर झुक जाओगे। भेंट तैयार

है; जन्मों से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है। तुम्हारा झुकना भर काफी है। तुम लेने भर के लिए राजी हो जाओ, देनेवाला सदा से राजी है।

इस जिन्दगी में उलटा हो रहा है। यहां मांगनेवाला तैयार है, दाता कोई भी नही। उस दुनिया में ठीक इससे उलटा है। वहा दाता तैयार है, लेनेवाला कोई भी नहीं। बस, तुम अपनी झोली फैला दो। तुम अपने हृदय को खोलकर रख दो और कह दो परमात्मा से, 'जो तेरी मर्जी! जैसे तू रखे, वैसा रहेंगे। जैसा तू चलाये, वैसा चलेंगे। जैसा तू बनाये, वैसा बनेंगे।' इसे मैं सन्यास कहता हू। यह सन्यास की बडी अनूठी व्याख्या हो गई, क्योंकि जिसको तुम सन्यासी कहते हो, वह कहता है कि पच्चीस गलतियां हैं परमात्मा के बनाने मे, इनको सुधारूगा। उसने ऐसा क्यों किया, ऐसा क्यो किया? मैं सन्यास कहता हू उस घडी को, जब तुम सर्वांग रूप से परमात्मा को स्वीकार कर लेते हो कि 'मैं राजी हू तेरी रजा मे। तेरी मर्जी अब मेरी मर्जी। अब तू जहा बहाये, वहा मैं बहूगा। तू अंधेरे मे ले जाये, तो तैयार हू। तू ससार मे भेज दे, तो मैं राजी हू। तू मोक्ष में ले जाये तो मैं राजी हू। अब मेरी अपनी कोई आकाक्षा नही।' इस घडी का नाम संन्यास है। इस चित्त-दशा का नाम सन्यास है। और ऐसे अगर तुम तैयार हो, इसी क्षण परमात्मा मिल सकता है। क्योंकि सब जगह वही छिपा है। पात-पात पर उसके हस्ताक्षर हैं। और कबीर कहते हैं, जब तुम ऐसी हालत मे आ जाओगे तो क्या घटेगा?

'गगन गरजि बरसै अमी, बादल गहिर गभीर। चहु दिसि दमके दामिनी, भीजै दास कबीर॥' फिर सारा आकाश अमृत बरसाने लगता है। जब तुम राजी हो लेने को, तो दाता के अनन्त हाथ हैं। इसलिए तो हम परमात्मा के बहुत हाथ बनाते हैं, क्योंकि दो हाथ से देना भी क्या देना होगा? और परमात्मा दो हाथ से दे, बडा कृपण मालूम पडेगा। इसलिए हम अनन्त हाथ बनाते हैं। जब वह देता है तो अनत हाथों से देता है।

'गगन गरजि बरसै अमी'—सारा गगन गरज रहा है, अमृत बरस रहा है। बादल गहन अमृत को लेकर घने हो गये हैं। चारो तरफ बिजली चमक रही है। चारो तरफ रोशनी ही रोशनी का सागर है। और 'भीजे दास कबीर' और दास कबीर इस अमृत मे नाच रहा है, भीग रहा है, इस अमृत को भी पी रहा है, इस अमृत के साथ एक होता जा रहा है।

गगन सदा तैयार है गरजने को, बरसने को। बादल सदा से तुम्हारे सिर पर मंडराते रहे हैं, बिजलियां चमकने को बिलकुल तत्पर खडी हैं, मगर दास कबीर

राजी नहीं हैं। बस दास कबीर राजी हो जाये, दास हो जाये—राजी हो गया।

तुम मालिक बने बैठे हो। अहंकार ने सिंहासन पकड़ रखा है—अकड़े हो। तुम्हारी अकड़ के कारण रोशनी तुम्हारे भीतर प्रवेश नहीं कर पाती है। अमृत भी बरसता है तो भी तुम्हें छू नहीं पाता। तुम्हारी अकड़ भयंकर है। जो अपनी अकड़ से भरे हैं, वे पहाड़ों की तरह हैं, वर्षा तो होगी, लेकिन पानी सब ढल जायेगा, बह जायेगा। जो दास हो रहे, वे झीलों की भांति हैं, गड्ढों की भांति हैं, खाली हैं, शून्य हैं—अमृत से भर जाएंगे।

जरा भी देर नहीं है उसकी तरफ से; अगर देर है तो तुम्हारी तरफ से। और कब तक प्रतीक्षा करनी है? हो जाओ खड़े आकाश के नीचे। बन जाओ दास कबीर। नाचो अहोभाव से! जो उसने दिया है, उसके लिए धन्यवाद दो! और जैसे ही तुमने उसके लिए धन्यवाद दिया, जो उसने दिया है, कि हजारों हाथ से अमृत बरसना शुरू हो जाता है! फिर वह तुम्हें बहुत देता है। क्योंकि, अनुगृहीत की ही उपलब्धि है। अनुग्रह ही उसकी तरफ जाने का मार्ग है।

ये सब प्रतीक हैं। इन प्रतीकों के भीतर छिपा हुआ इशारा है, उस इशारे को याद रखना

'कस्तूरी कुंडल बसै।'

★ ★ ★